बच्चन : व्यक्तित्व और कवित्व

(बच्चन के व्यक्तित्व और कवित्व की सर्वप्रथम अभिनव समीक्षा)

जीवन प्रकाश जोशी

सन्मार्ग प्रकाशन,
१६, यू० बी० बंग्लो रोड, दिल्ली-७

प्रथम संस्करण १९६८

पन्द्रह रुपए

प्रकाशक सन्मार्ग प्रकाशन
१६ यू० बी० बैंग्लो रोड, दिल्ली ७

मुद्रक शुक्ला प्रिंटिंग एजेन्सी द्वारा
प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स दिल्ली।

श्रद्धेय बच्चन जी को
सादर समर्पित
—जीवन

भूमिका

खडी बोली के कवि वर्ग और काव्य व्यूह की वतमान आलोचना के विपुल-विपम भडार मे कविवर बच्चन और उनके काव्य के विषय मे आकार-प्रकार की दृष्टि से क्योकि यह पहली पुस्तक है, इसलिए थोडा सा इसके विषय मे कहूँगा।—

पुस्तक के प्रथम तीन लेखो म मैंने बच्चन जी के व्यक्तित्व को उभारने का लक्ष्य रखा है। उनका व्यक्तित्व *जगत गति और जीवन के प्रति अटूट आसक्ति* के परिणाम-स्वरूप निर्मित हुआ है। मैंने उनके व्यक्तित्व के विश्लेषण मे इसका ध्यान रखा है। विषय एव शिल्प विधान की दृष्टि से बच्चन जी की बाईस काव्य-कृतियो की स्वतत्र समीक्षा की गई है। मेरे समीक्षक की दृष्टि का आधार इन कृतियो का मनोवैज्ञानिक पक्ष रहा है। इसके साथ ही मैंने आलोच्य सृजन के साहित्यिक ऐतिहासिक सदर्भों-मूल्यो परिवेशो को भी पकड से परे नही रखा है। एक गीतकार कवि के रूप मे बच्चन जी का काव्य सृजन जितना महत्वपूर्ण है उतना ही महत्वपूर्ण खडी बोली कविता के विकास की ऐतिहासिक दृष्टि से भी है। स्व० माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओ मे छायावादी काव्य भाषा से अलग जो मुहावरा मुखर हुआ, स्व० नवीन जी की रचनाओ मे जो भाव-स्वर लोक भूमि की ओर अग्रसर हुआ, भगवतीचरण वर्मा के स्वर मे जो मस्ती मदिरा तथा मानववाद का राग जागा महादेवी वर्मा के गीतो मे आत्म-परकता के अतल से जो पीडन उमडा बच्चन ने सर्वप्रथम इस सबको पचाकर और भाव शिल्प स्वर की सभी पूर्व अतियो से सहसा पिड छुडाकर एक ऐसा सहज, समाहार एव समन्वयपूर्ण स्वर-साधा जिसके कारण गीत-काव्य के सृजन का विकास अपनी पूर्णता मे जैसे थम गया। अन यह सोचना सही है कि खडी बोली के गीतकार कवियो मे बच्चन जी का उदय धूमकेतु की तरह हुआ और व्यक्तित्व ध्रुव की तरह अचल हो गया।

बच्चन-काव्य की समीक्षा करते समय मेरा ध्यान और ध्येय यही बना रहा कि कही श्रद्धा समीक्षा पर हावी न हो जाय, कि कही सत्य पर पूर्वाग्रह या दुराग्रह अपना दुष्ट साया न डाले। अर्थात्, बच्चन काव्य की समीक्षा की शर्त सिर्फ ईमानदारी हो और उस पर कही दाग़ न लगे।

चूंकि प्रस्तुत समीक्षा मैंने कवि की मौलिक काव्य कृतियों को आधार बनाकर की है अत एक जागरूक पाठक की हैसियत से मैंने अपनी प्रतिक्रियाओं को प्रस्तुत किया है। जहाँ कहीं आवश्यक हुआ काव्य के सामान्य सिद्धांतों को भी शामिल किया है। *पर ऐसा अधिक नहीं है। एक जन-कवि और उसके काव्य पर शास्त्रीय समीक्षा* के सिद्धांत अधिक प्रामाणिक सिद्ध नहीं होते। प्राध्यापकीय समीक्षा की बात और है।

बच्चन-काव्य व्यक्ति-जीवन की अनुभूतियों का अविकल अनुवाद है। इस कवि का काव्य केवल शब्दों का पुरस्कार नहीं है जीवन का पुरस्कार है। अत उसे समझने *के लिए व्यक्ति जीवन के विकासवान सहज रूप को समझना अनिवार्य है। युग आयु* काल के साथ बच्चन के कवि ने जिस प्रकृत जीवन को भोगा और जिया है उसके सत्य की यहाँ सूक्ष्म ध्वनि है। उसे अनिवार्यत स्पष्ट करने के लिए मैंने कुछ तथ्य कई बार कहे हैं। कुछ बात होती हैं जो दोहराकर ही महत्वपूर्ण सिद्ध होती हैं। हम जीवन का बहुतांश आवृत्तियों मे भी जीते है।

इस पुस्तक के शेष लेखों में बच्चन-काव्य के मूल तत्वों का विश्लेषण किया गया है और तत्सम्बन्ध मे जो भ्रांतियाँ फैली हुई हैं उनका यथा सम्भव निराकरण किया *गया है।* बच्चन काव्य म ध्वनित दुखवाद मधुवाद (हालावाद) तथा अस्तित्ववाद (व्यक्तिवाद) विषयों का भी समीचीन विश्लेषण किया गया है। बच्चन काव्य मे य विषय व्यक्ति जीवन की अनेक मन स्थितियाँ तथा मानसिक प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति करते हैं। स्थल स्थल पर इनके ध्वन्यार्थ पर प्रकाश डाला गया है।

खड़ी बोली काव्य भाषा के निर्माण म बच्चन का महान योगदान है। अत बच्चन की काव्य भाषा और उसकी शक्ति का तात्विक विवेचन भी किया गया है।

अंत म प्रश्न पत्रोत्तर द्वारा बच्चन जी के जीवन तथा रचना साक्ष्य को प्रस्तुत *किया गया है।* इससे बच्चन जी के पाठकों तथा शोधकर्ताओं को निश्चय ही कुछ लाभ होगा।

पुस्तक क लेखन प्रकाशन के समय मेरी पत्नी उषा जोशी द्वारा मुझे जो मनोबल मिलता रहा उसके लिए क्या कहूँ? नितांत अपन को धन्यवाद दिया जाना अपने को *ही लज्जित करना है।*

आकाशवाणी
नई दिल्ली।
१५ ८ १९६८

—जीवनप्रकाश जोशी

विषय-सूची

फूल-सा कोमल : काँटे-सा तीखा
बच्चन का व्यक्तित्व

फूल-सा कोमल : कांटे-सा तीखा

बच्चन का व्यक्तित्व

सन् ४६ की एक शाम ! मुहल्ला सुदामापुरी, जिला अलीगढ के एक मकान की साधारण बैठक। तिल चावली दाढी वाले मुल्ला जी और बेत की तरह छरहरे, कानो को छूती हुई रोबीली मूंछे और गम्भीर मुख मडल से रिमझिमाते बादल की तरह मुसकान बिखेरते हुए स्व० प० जमना प्रसाद जोशी, यानी मेरे पिता ! भवें चढी हुई, शब्दो मे आश्चर्य, लहजे मे किसी अनहोनी-सी बात के लिए सराहना का भाव व्यक्त करते हुए मुल्ला जी से पिता जी कह रहे हैं—

क्या कहूँ खाँ साहब, कमाल ! सारी जिन्दगी मुशायरो की सनक मे रही ! शायरो के अजीबोगरीब कलाम इन कानो ने रात रात भर सुने ! गालिब, मीर, इक़बाल की नज्मो के सहारे जिन्दगी के कडवे-मीठे लमहो को मजे मे बिताया। वाह शायरी भी क्या है ! अरे हाँ खा साहब, मैं आपको बताना चाहता था कि हिन्दी जुबान मे भी कमाल की शायरी हो सकती है। अभी हाल म एक कवि सम्मेलन मे मुझे एक पडित जी ले गये थे। और क्या बताऊँ खाँ साहब, उस शायर, मेरा मतलब है उस कवि की अदा और अन्दाज था। घुंघराले-से बाल, चमकता, खूबसूरत चेहरा और उसका एक खास तरन्नुम ! शराब की कविता सुनाई थी उसने। ······

और पिता जी के यह शब्द मैं आँगन मे पतग जोडता चुपचाप सुन रहा था।

मुल्ला जी ने अपनी दाढी खुजाई;—कुछ गहरे सोचते हुए से उन्होंने पूछा—

शायर का नाम ···· तखल्लुस ?

कुछ याद करते हुए से पिता जी ने अचकचाकर कहा—लोग बचूआ ' बचूआ कवि चिल्ला रहे थे। हाँ, उसकी शायरी का नाम मुझे जरूर याद है—मधुशाला! ...

× × ×

लगभग बाईस वर्ष पहले पिताजी और मुल्ला जी के बीच चली यह बातचीत कुछ ऐसी ही थी। हो सकता है शब्दो मे हेर फेर हो गया हो। वैसे मेरी स्मृति काफी सीधी है। तो इस प्रकार मेरे दिमाग में बचूआ कवि की यानि कवि बच्चन की एक बारीक रेखा नौजवानी मे ही खिच गई थी। बाप ने तारीफ की, बेटे के मन मे उसका सस्कार-सा बन गया। बस इतना ही !

× × ×

मैट्रिक मे आया। तुलसी, सूर तो पढने ही थे। स्व० मैथिलीशरण गुप्त और 'दिनकर' जी का पाठ भी पढा। यह सन् ४८ की बात है। मुझे तब कविता या साहित्य

वर्मा की 'आधुनिक कवि' मे सकलित कविताए पढी । इधर पजाब विश्वविद्यालय से प्रभाकर की परीक्षा की तैयारी की तो कोर्स-बुक मे बच्चन जी की 'आत्म-परिचय' और 'पूर्व चलने के बटोही' कविताएँ मुझे बहुत अच्छी लगी । यहाँ तक आकर मैं प्राचीन और आधुनिक कवियो की कविताओ का सामान्य अर्थ पकडने लगा था । लेकिन मैं कविता मे जिस बात को चाहता था और आज भी चाहता हूँ वह है अनुभूति की सच्चाई । बच्चन की कविताओ मे मुझे यह मिलती थी । अत सन् ५०-५१ तक बच्चन के काव्य के प्रति मेरा आकर्षण तीव्र हो गया । मैं उनके काव्य-पाठन के प्रति शायद कुछ क्रेज़ी-सा हो गया था ।

एक बार पहली तारीख को मुझे तनखा मिली । मैं बच्चन जी की सारी किताबें खरीद लाने के लिए उसी दिन सहारनपुर से मेरठ भागा । पुस्तक विक्रेता से केवल मधुशाला, मधुबाला, एकांत सगीत, सतरगिनी और निशा निमन्त्रण पुस्तके मिली । पर 'मिलन यामिनी' न मिली । और उसके न मिलने की निराशा लेकर मैं कुछ इसी तरह लौटा जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका के दरवाजे से यह जानकर लौटता है कि वह तो वहाँ से कही चली गई है ।

× × ×

सन् '४६ मे मैंने किन्ही सम्मानित नेता के देहरादून कालेज मे पधारने के अवसर पर बोलने के लिये अपनी पहली कविता लिखी थी जिसकी अब मुझे पहली पक्ति ही याद है—

भगवन, हम छात्रो की पुकार !—

और इस के बाद मैं बराबर कविताएँ लिखता रहा । बच्चन जी की शब्द-शैली और सरलता का मुझपर गहरा प्रभाव पडता गया । सन '५३ मे मैंने रतजगे के रोग मे डेढ सौ से ऊपर कविताएँ लिखी । लेकिन इन कविताओ को सुन्दर अक्षरो मे लिखकर सग्रह रूप मे देने के लालच से मैंने गन्ना सोसायटी के एक कर्मचारी के हाथो सग्रह सौंपकर उसे गँवा दिया । उसके उपरात मैंने सन् '५४ मे प्रकाशित 'हृदया-वेश' की कविताएँ लिखी । खैर...

इस बीच बच्चन जी के विषय मे बहुत् कुछ जानने के लिये मैं कितना उत्सुक रहा यह बता नही सकता । बच्चन जी का फोटो मैंने पहली बार धर्मयुग मे देखा था जबकि वे भारत से विदेश के लिये रवाना होने वाले थे । और यह जानकर मैं कितना खुश हुआ था कि बच्चन जी का एक काल्पनिक, सुन्दर-सा चित्र जो मेरे मन ने खीचा था वह धर्मयुग के प्रत्यक्ष चित्र से बहुत-कुछ मिलता-जुलता था । सोचता हूँ, आनुभूतिक कल्पना सच्चाई से दूर की चीज तो नही है !

× × ×

बच्चन जी के हस्ताक्षर बहुत प्रसिद्ध हैं । अग्रेजी अक्षरो की दृष्टि से वे 'गुड'-से लगते हैं । कलात्मक दृष्टि से वे मोती की उस छोटी-सी लडी लगते हैं जिसका पहला दाना कुछ बडा हो । कुछ इसी प्रकार के आकर्षण की बात है कि बच्चन जी के हस्ताक्षर करने को जी चाहता है । मैंने बहुत-से लडके-लडकियो को उनके हस्ताक्षर बनाने भी देखा है ।

एक दिन घर पर उनके हस्ताक्षर के बारे में उन से ही बातचीत चली। मैंने कहा—बच्चन जी, लोग आपके हस्ताक्षर पर बहुत लट्टू हैं!

वे बोले—'हूँ।'

मैंने बात को और शै दी—लोग आपके हस्ताक्षर बनाते भी हैं। वे तपाक से बोले—'चिन्ता नहीं, मैं चैक पर अंग्रेज़ी में दस्तख़त करता हूँ।'

मैंने कहा—मैं तो आपके हस्ताक्षर ज्यों के त्यों बनता हूँ। कहने लगे 'बनाओ...'

और मैंने फौरन कलम लिया और "बच्चन" लिख दिया। फुर्ती से चश्मे की कमानी को ऊपर-नीचे कर बच्चन जी बोले—

'जोशी, तुम तो बड़े जालसाज़ मालूम होते हो।'

मैं भी चुप न रहा, नहले पर दहला दिया—आपके दस्तख़त बनाकर अपनी कविताएँ बेचूँगा। इस पर बड़े आत्म विश्वास के साथ, हँसते हुए वे बोले—'जोशी, कविता के बल पर ही बच्चन के हस्ताक्षर मूल्य रखते हैं।'

× × ×

बच्चन जी से मेरा पत्र व्यवहार, नवम्बर सन् १९५६ से शुरू हुआ था। वैसे उनका पहला पत्र मुझे *'वीणा'* नामक सहारनपुर से प्रकाशित मासिक पत्रिका के सिलसिले में मिला था। इसके बाद उनका पत्र मैंने अपनी एक शिष्या शशिबाला जैन के पास भी देखा था। यह पत्र मेरी ही शरारत के कारण शशि को मिला था। इस पत्र को पढ़कर बच्चन के व्यक्तित्व के बारे में मेरे मन में दो प्रतिक्रियाएं हुईं—

पहली यह कि यह कवि स्वभाव का बहुत सरल है। दूसरी यह कि यह कवि रोमांटिक रुचि का है। और आगे जब मैंने 'मिलन यामिनी' में इस कविता को ध्यान से पढ़ा कि—

'प्यार, जवानी, जीवन इनका
जादू मैंने सब दिन माना'—

तो मुझे अपनी इस प्रतिक्रिया की पुष्टि मिली की कवि बच्चन मूलतः धड़कते हुए हृदय का कवि है। और फिर कुछ समय में ही एक लम्बे पत्र व्यवहार से मुझे बच्चन जी के सहज व्यक्तित्व का बोध हुआ। (बच्चन जी के लगभग दो सौ महत्वपूर्ण पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं)।

× × ×

पत्रों द्वारा जो बात चली वह तो चली ही पर बच्चन जी से मिलने की मेरे मन में जो बहुत दिनों से प्रबल इच्छा थी उसका अवसर आया दिसम्बर सन् '५६ के पहले पखवाड़े की किसी तारीख़ को। इससे पहले भाई संतोष कुमार जैन सहारनपुर से दिल्ली पहुँचे और बच्चन जी से मिले। दिल्ली से लौटकर जब वे आए तो उनसे मेरी बातचीत हुई। उन्होंने बताया कि वे बच्चन जी से टेलीफून करके मिले थे। उन्होंने कहा कि ज्यों ही नम्बर डायल किया कि एक गम्भीर-सी ध्वनि सुनाई दी—'बच्चन बोल रहा हूं।'

सतोष जी ने बताया कि उस ध्वनि मे कवि होने का पता नही चलता था । कोई कठोर ग्राफीसर बोल रहा है, ऐसा लगता था । फिर वे समय लेकर बच्चन जी से मिले । मिलते ही बच्चन जी ने पहला प्रश्न किया, 'सहारनपुर मे आप जोशी जी को जानते हैं ?'

सन्तोष जी ने कहा—'जी, खूब जानता हूँ । हम मित्र हैं ।'

'आप क्या करते हैं ?'... और इसी तरह की बच्चन जी ने बातें बडी साधारण की । सन्तोष जी ने अन्त मे कहा—'कुल मिलाकर बच्चन जी मुझे रूखे-से लगे ।'

और कुछ दिन बाद श्री ठाकुर दत्त शर्मा 'पथिक' दिल्ली गये तो मुझे बीच मे डालकर वे भी बच्चन जी से मिले । उन दिनो पथिक जी मुझसे कुछ नाराज थे । नाराजी मे तो जो कहा जाये कम । पथिक जी से मिलते ही बच्चन जी ने पूछा—

'आप सहारनपुर के हैं, जोशी जी को तो जानते होंगे ?'

पथिक जी ने कहा 'बच्चन जी, जोशी जी को मैं खूब जानता हूँ ।' अपने आप ही बच्चन जी ने कहा—'हाँ, वे बिचारे सकट मे हैं ।' पथिक जी ने कहा—'सकट-वकट तो कुछ नही बच्चन जी, अच्छी खासी नौकरी कर रहे हैं । मगर वे जरा जल्दी बिगड जाते हैं । 'बास' की बर्दाश्त बिल्कुल नही करते ।'

पथिक जी कुछ आगे और कहते कि बच्चन जी बोले, 'पथिक जी, वे बर्दाश्त कर ही नही सकते । प्रतिभा पराभूत होने के लिये नही होती ।'

यह सब बातें सुलह हो जाने पर पथिक जी ने बडे ढग से मुझे बताई थी । और जब मैंने यह सब कुछ जाना जो मुझे आगे बच्चन जी की 'दोस्ती के सदमे' कविता पढकर दोस्तो की कडवी सच्चाई का अहसास हुआ ।

सन्तोष जी और पथिक जी के बाद बच्चन जी से मिलने का मेरा नम्बर आया । दिसम्बर मे दिल्ली मे बेदर्द जाडा पडता है । अपना दकयानूसी बन्द गले का कोट और मोहरी सपाट पैंट पहनकर मैं दिल्ली आया । ठीक बारह बजे दोपहर स्टेशन पर उतरा । नम्बर मेरे पास था ही । बच्चन जी को फोन किया । एक भारी आवाज सुनी, 'बच्चन बोल रहा हूँ ।'

मैंने काँपती-सी आवाज मे कहा—सहारनपुर वाला जीवन प्रकाश जोशी...आपसे मिलने आया हूँ ।

बच्चन जी ने खुशी जाहिर करते हुए कहा—'अच्छा, आप आ गये ।' तो आ जाइये । और देखिये, सेंट्रल सकेंट्रीएट की बस मे बैठिये । नम्बर है १४ । नार्थ-ब्लाक मे दाहिनी तरफ के विंग मे ऊपर की मजिल पर मेरा कमरा है । आप रिसेपशनिस्ट से मेरे बारे मे कहिये । मैं उसे पास बनाने के लिये कह दूँगा ।'...ठीक एक बजे, यानी लच टाइम मे मैंने बच्चन जी के कमरे का दरवाजा देखा । चपरासी ने भीतर मेरी चिट दी । भीतर घुसा तो मैंने देखा—मझला कद, गेहुआ रग, तना अग, घुघराले, उठे-उठे-से बाल, दर्पण-सा माथा, ऐनक के अन्दर चमचमाती, छोटी मछलियो सी आँखें, चिकना चेहरा, खुशनुमा होठ—यह बच्चन जी थे । वे मुझे देखते ही एकदम उठ बैठे और

कुछ झुककर मेरी तरफ उन्होंने अपना हाथ बढा दिया। मैंने सकुचाकर हाथ मिलाया। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, 'अरे, मैं तो सोचता था आप कम्यूनिस्ट टाइप के रूखे उलझे बालों वाले चिढ चिढे से व्यक्ति होंगे। लेकिन आप तो बडे अच्छे नवयुवक हैं। मैं अपनी कल्पना की झुठाई पर क्या कहूँ ?'

मैंने विनम्रतापूर्वक कहा—लेकिन बच्चन जी, मैंने जो आपके व्यक्तित्व के बारे मे कल्पना की थी आप तो मुझे उससे अधिक अच्छे लगे। और उस समय बच्चन जी मे मैंने देखी एक बालसुलभ भावुकता। और मैंने सोचा, अपने बाल-सुलभ गुण के अनुरूप इनका नाम ठीक ही तो है—बच्चन! तभी बच्चन जी ने दराज़ मे से एक सेब निकाला, छीला, काटा और मेरी तरफ बढा दिया। पूछा, 'आप काफी पियेंगे या चाय ?'

काफी पीने की मुझमे अभी हिम्मत नही थी। एकदम कह दिया—चाय! बच्चन जी ने तुरन्त टेलीफोन किया। तुरत बैरा चाय और बिस्कट की ट्रे रख गया। बच्चन जी ने चाय बनाई और प्याला मेरी ओर बढा दिया। बिस्कुट खाते, चाय पीते बात-चीत चली! बच्चन जी ने पूछा, 'आप पहाडी हैं न ? घर मे कौन-कौन है ? सहारन-पुर मे कब से हैं ? नौकरी कितने समय से कर रहे हैं ? शादी हो गई है या'......?

प्रश्न सभी घरेलू थे। काव्य-साहित्य के बारे मे बच्चन जी ने अपनी तरफ से कोई बात नही की। मैं समझ गया कि बच्चन जी साधारण जीवन की बातो मे ही सारा समय लगा देगें। और मुझे थी साहित्य चर्चा चलाने की धुन। नई मुसलमानी अल्ला अल्ला पुकारे। मैं नया, नवयुवक साहित्यकार बना था। इसलिये मेरी प्रबल इच्छा थी कि बच्चन जी जैसे प्रतिष्ठित कवि से कुछ साहित्यिक बातें करूँ और फिर दोस्तो मे डींगे मारूँ। मैंने अपनी तरफ से ही कहा—'आप के बारे 'मजूषा' मे मैंने एक लेख लिखा है। 'ग्रन्थ' भी साथ लाया हू। सुनेंगे ?

बच्चन जी चुटकी भी खूब लेना जानते है। मेरी बात को वे झट ताड गये। कुछ शरारती मुद्रा बनाकर बोले, 'हाँ, हाँ' जरूर सुनूंगा। अपने बारे मे लिखे लेख को क्यो नही सुनूंगा।' तुलसीदास जी की पक्ति मे विनोदपूर्वक कुछ परिवर्तन करते हुए वे बोले, 'निज प्रशस्ति केहि लाग न नीका ? यह तो मेरा सौभाग्य है। हा सुनाइये।'

और मैंने पहले से ही निबध के लिये पुस्तक मे एक अँगुली लगा रखी थी। बस, मैं तूफान मेल की रफ्तार से लेख पढने लगा। बच्चन जी एकदम गम्भीर होकर ध्यान से लेख सुनने लगे। लेख समाप्त हुआ। मैंने सास लेकर पूछा—बच्चन जी, कैसा लगा ? मुक्त भाव से वे बोले,—'जिस जीवन धरातल पर खडे होकर मैंने अपने गीत लिखे हैं तुमने वहाँ पहुचने की सफल कोशिश की है। मैंने कविता को जीवन की सच्चाई से अलग कभी नहीं देखा।' यह कहकर उनकी मुखमुद्रा पर एक अजीब छाया-प्रकाश का आभास होने लगा। कुछ देर चुप रहकर मैंने उन्हे 'मजूषा' की एक प्रति भेंट की। फौरन बच्चन जी उठे और अलमारी से एक पुस्तक निकालकर लाये। उस पर मेरा नाम लिखा, प्रथम उपहार अकित किया और वह पुस्तक मुझे दे दी। यह उनकी [illegible] प्रसिद्ध कृति 'मधुशाला' थी जो आज भी मेरे और बच्चन जी के प्रथम मिलन की

मधुर स्मृति सजोये है ।

× × ×

यो पिछले बारह वर्षो से बराबर मैं बच्चन जी के सीधे सम्पर्क मे रहा हूँ । बारह वर्ष किसी विशेष प्रकार के व्यक्ति को समझने के लिये कम नही होते । और उस अवस्था मे जबकि सम्पर्क कुछ भाव और विचारमय भी हो । वैसे व्यक्ति विशेष को बाहर भीतर से पूर्णत समझ लेने का दावा तो शायद कोई नही कर सकता । स्वय व्यक्ति ही अपने को ईमानदारी से कितना समझता है ? पर इस नासमझी मे वह महान रचना भी करता है और आविष्कार भी । समझने का प्रयास भी पूर्णत समझ लेने के झूठे दावे से कही अच्छा कहा जाना चाहिये । मैंने बच्चन जी को इन बारह वर्षो मे स्वाभाव-सस्कार की दृष्टि से जैसा देखा-समझा है वही बता रहा हूँ—न कम न अधिक !

× × ×

बच्चन जी के व्यक्तित्व मे मैंने महानता नाम की कोई चीज़ नही देखी । मैंने तो उनमे उसी प्रकार के भाव-स्वभाव सस्कार वे लक्षणो-उपलक्षणो को दबते-उभरते देखा है जिनको मैं अपने निकट के व्यवहारिक व्यक्तियो मे देखता हू । और हो सकता है लोग मुझमे भी उन्हे पाते हो, आप मे, सबमे भी ! लेकिन बच्चन जी के व्यक्तित्व की एक खासियत मैंने यह देखी है कि वहा कही ऐसा कुछ नही है जो असलियत के पीछे खूँखार बनावट को शै दे रहा हो ।

यह बिल्कुल सच है कि बच्चन का व्यक्तित्व नम्रता और अक्खड़ता के ताने-बाने से निर्मित है । उनके स्वभाव मे स्वाभिमान इतने ऊँचे कद का नजर आता है कि उनसे मिलकर कुछ की यह भी धारणा होती है, हो सकती है, कि उन्हे बहुत अहकार है । इसके साथ ही जो उनके निकट और निकटतर आते चले जाते है वे यह भी महसूस करते जाते हैं कि उनमे सरलता भी इतनी है कि जो केवल स्नेह के दो आखरो के मोल पर आसानी से उपलब्ध हो सकती है—

···तुम हृदय का द्वार खोलो,
और जिह्वा, कठ, तालू के नहीं
तुम प्राण के दो बोल बोलो ,
(आरती और अगारे गीत ७२)

बच्चन बहुत अक्खड हैं । वे टूट सकते हैं । पर झुक नही सकते—

झुकी हुई अभिमानी गर्दन,
बधे हाथ, नत-निष्प्रभ लोचन !
यह मनुष्य का चित्र नहीं हैं,
पशु का है, रे कायर !
प्रार्थना मतकर, मतकर, मतकर ! (एकात सगीत गीत ६२)

या— स्वर्ग भी मुझको अस्वीकार,

जहा कुठित हो मेरा मान !
या— मैं वहा झुककर जहां झुकना गलत है
स्वग ले सकता नहीं हू ।
(आरती और अगारे गीत ८५)

मुझे लगा है कि बच्चन जी ने इन पक्तियो की रचना में अपने अक्खड स्वभाव का ज्वलत सकेत दे दिया है। कवित्व म व्यक्ति क जीवन-चरित्र का साकेतिक परिचय जिस व्यापकता और सत्यता से बच्चन ने दिया है वह कम से-कम खडी बोली काव्य के लिय नया है। उनके काव्य से मैं इस तरह के अनेक उदाहरण दे सकता हूँ। लकिन यहा एक सच्ची घटना याद आ गई। लालकिले के उस कवि सम्मेलन क बारे म बहुत स लोग जानते होंगे जब कि कविवर महबूब को काव्य पाठ करने से रोक देने क लिये बच्चन जी ने हजारो की सख्या म इकट्ठे लोगो का तीव्र विरोध पूरे आध घण्टे तक धैयपूवक सहा और अत तक उन्होने महबूब को यह कहते हुए कविता पाठ नही करने दिया कि— सयोजक बनाया अव्यक्त होन के नाते इस समय में महबूब साहब को कविता पाठ नही करने दूगा। अन्त म बच्चन जी की बात ही जनता ने मानी। श्री मेघराज मुकुल न कविता पाठ किया। उस समय जनता का विरोध इतना प्रबल था कि कुछ भी अनहोना हो सकता था। लेकिन बच्चन जी की अक्खडता वहा देखने की चीज थी।

बात यह है कि जग जीवन स जूझने वाला और सकल्प मड व्यक्तित्व कभी साधारण नही हुआ करता। उसम एक सहज अक्खडता आ जाती है जो आलोचना की चीज नहा बल्कि जीवन म घटाने की चीज है। जो आलोचक व्यक्ति की इस अक्खडता को निन्दनीय कहते है व या तो अन्याय करते हैं या अपनी ही कुँठा और हीनता से ग्रस्त होते हैं। बच्चन की अक्खडता क बारे म अधिकाश आलोचनाएँ इसी सत्य को सिद्ध करती जान पडती हैं। मेरे विचार से हम किसी व्यक्ति के बारे मे सत्याभास को महत्व न देकर सत्य को महत्व देने की सहृदयता और शक्ति दिखलानी चाहिए। सत्य जो जीवन सापेक्ष हो जो राग-द्वेष स मुक्त हो।

इस अक्खडता क साथ ही बच्चन क व्यक्तित्व म मैंने सहज विनम्रता भी देखी हैं। और मेरा मत है कि बच्चन का सहज स्वभाव विनम्रता से ही अधिक पोषित है। अक्खडता तो उसकी ऊपरी सतह है—कठोर जैसे मगरमच्छ की पीठ। बच्चन का कवि मन की निष्कपटता को जिस प्रकार व्यक्त करता है उसे पढकर कौन होगा जो गद्गद म होगा ?— आरती और अंगारे क ६८वें गीत को अनेक बार पढकर मुझे मन की समर्पण-परक का शक्ति मिली है—

'दे मन का उपहार सभी को ले चल मन का भार अकेले
लहराया है दिल तो लसका जा मधुवन म मैदानों में
बहुत बड़े वरदान छिपे हैं तान, तराना मुसकाना म
पथराया ह जी तो मुड का सून मर नारव पानी म
दे मन का उपहार सभी को, ले चल मन का भार अकेले।

उनकी अनेक कविताओ मे उनके विनम्र और अक्खड व्यक्तित्व की स्पष्ट झाकी मिलती हैं। यहाँ व्यजना व्यापक है। यह व्यजना व्यक्तित्व की सही पहचान है, जिसे समझकर और उसे व्यक्तित्व मे अनुभव करके किसे अपने पर नाज न होगा?—

वज्र बनाई छाती मैंने
चोट करे तो घन शरमाए,
भीतर-भीतर जान रहा हू
जहा कुसुम लेकर तुम आए
और दिया रख उसके ऊपर
टूक-टूक हो बिखर पड़ेगी।

और ये भी कि—

हो सभी के हेतु सुखकर,
हो अगर मेरा उदय भी!

× × ×

बच्चन कठिनाई के समय अपनी शक्ति भर काम आते है। मुझे याद है कि श्री शिवदत्त तिवारी के नाती धर्मेश की पढाई के लिए कई हजार के सरकारी ऋण-पत्र पर एक जामिन के रूप म बच्चन जी ने इस तरह दस्तखत कर दिये थे जैसे वह कर्ज अपने ही लिये ले रहे हो। किसी का सकट दूर करने के लिये वे टेलीफोन से लेकर पैदल चलने तक कुछ करने कहने से मुँह नही मोडते। यह दूसरी बात है कि तिकडम के अभाव मे सफलता न मिले। बच्चन उखाड-पछाड और तोड-फोड की शक्ति से वचित हैं। यहाँ वे हार जाते हैं।

बच्चन के व्यक्तित्व मे कही पर कुछ विरोधाभासवत् भी अनुभव होता है। लेकिन मूलत वह जीवन की परिवर्तित होती हुई आयु और स्थितियो का परिणाम कहा जा सकता है। अब बच्चन के स्वभाव मे शैशव का सारल्य है, यौवन की तरलता-तपिश-तुर्शी भी है और बुढापे की गुरुता-गम्भीरता तो है ही। बच्चन के सस्कारो म रूढियो के प्रति विद्रोह है, नवीनता के प्रति आस्था और आत्मार्पण भी। और इस सबके ऊपर उनमे प्राचीन, पावन सस्कारो के प्रति एक ऐसी सूक्ष्म आस्था भी है जो भारतीयता की रीढ है और जो उन्हे 'सियराममय' दुहराते रहने को उकसाती है।

बच्चन को सुरुचि से सहज लगाव है। उन्हे गाधी जी की वह लँगोटी भी सुरुचि या डेकरमयुक्त लगती है जो एकदम धुली चिट्टी रहती थी। मै जानता हूँ अगर उन्हें नेहरू जी की सुरुचि अनुकरणीय लगती है तो शास्त्री जी की सरलता भी प्यारी है। बच्चन सुरुचि और सरलता को जीवन और व्यक्तित्व मे साथ-साथ बनाये रखने के हिमायती हैं। जिसमे इन दोनो मे से केवल एक है और दूसरी का अभाव है, निश्चय ही बच्चन जी उसके आलोचक हो सकते हैं—फिर चाहे वह नेहरू जी हो या शास्त्रीजी।

और कुल मिलाकर बच्चन का व्यक्तित्व एक वृत्त है जिसे हम यदि जीवन को

सहज दृष्टि से देखें तभी उसे सही-सही जान समझ सकते हैं। व्यक्तित्व का वृत रेखागणित का वृत्त नही है, यह हमे नहीं भूलना चाहिये। न केवल बच्चन के बल्कि किसी भी विशिष्ट व्यक्ति के विश्लेषण के व्यक्तित्व के लिये हमे जीवन की व्यापक व सहज दृष्टि रखना अनिवार्य हो जाता है।

बच्चन के स्वभाव-सस्कार के बारे मे—उनके व्यक्तित्व के बारे मे—इसमे अधिक मुझे कुछ नही कहना है। फिर कहू कि बच्चन के व्यक्तित्व मे महानता नाम की कोई चीज नही है। उनके व्यक्तित्व की विशेषता है, उनकी सरलता। वही बच्चन के काव्य, उनके कर्म और उनके स्वभाव की यानी सम्पूर्ण जीवन की निधि है। बच्चन जी की इस सरलता को मै मानवीयता की बहुत बडी निधि मानता हूँ। आप अभी छ पैसे का कार्ड लिखकर उन्हे भेज देखिये। कल-परसो जब आपको उनका हस्तलिखित पत्र मिल जाय तो मुझे याद ही कर लीजियेगा।

वच्चन : निकट से

बच्चन : निकट से

२०-२५ वर्ष पुराना एक बक्स खोला। बक्स में पिताजी (स्व० जमना प्रसाद जोशी) की एक मैली-सी डायरी मिली। इस डायरी में उर्दू, अंग्रेजी, ब्रज तथा खड़ी-बोली की कविताओं के कुछ अंश लिखे मिले। उनमें से एक यह कि—

'सब मिट जाएं बना रहेगा सुन्दर साक़ी, यम काला
सूखें सब रस, बने रहेंगे किन्तु, हलाहल औ' हाला
धूमधाम औ' चहल-पहल के स्थान सभी सुनसान बने
जगा करेगा अविरल मरघट जगा करेगी मधुशाला'

बच्चन जी के प्रेमी उनकी 'मधुशाला' से खूब परिचित हैं। यह अंश उसी का है। (संख्या २२)। याद आया, पिताजी की डायरी के इन अंश को पढ़कर आज से कोई २० वर्ष पहले मैंने मधुशाला कहीं से तलाश-भाग कर पढ़ी थी। और सन् '५६ में जब मैं अपनी दीदी (चन्द्रकला पाण्डे) के साथ बच्चन जी से दूसरी बार मिला था तब मैंने उनसे कहा था—आपकी मधुशाला में "हाला" के साथ "हलाहल" भी जुड़ा है, तो वे तुरन्त बोले—'हां, इसी तरह जैसे मेरी अनुभूति में कल्पना और जीवन में मरण भी सम्मिलित है।' बताने की आवश्यकता नहीं कि यह बात बच्चन जी की हर पुस्तक के 'लेखक परिचय' में छपी रहती। पर मैं सोच रहा हूं कि छापे के शब्दों को पढ़कर हम उनकी तह में छिपे सत्य को कितना समझते हैं, फ़ील करते हैं? लेकिन बच्चन जी के काव्य-जीवन में शब्द कितने विराट् सत्य के जीवन्त प्रतीक बनकर प्रतिध्वनित हुए हैं! और तब तो कहूं कि निश्चय ही 'बच्चन जी हिन्दी के उन थोड़े-से कवियों में हैं जिनका जीवन और साहित्य बहुत दूर तक समानान्तर चलता रहा है।' 'प्रारम्भिक रचनाएँ' से लेकर 'बहुत दिन बीते' कृतियों के बीच का पथ युग-जीवन से संघर्ष करते चलते हुए उन कवि-व्यक्ति के पदचिन्हों से पूरित है जिस पथ पर हम सब को भी चलना होता है, चलते आ रहे हैं, चल रहे हैं और चलते जाएँगे। उम्र के रथ के सारथी को अपने इशारे पर चलाने का दावा भला कौन करेगा?

तो पहला प्रसंग :

विदेश मन्त्रालय के आफ़िस में बच्चन जी कुर्सी पर जमे बैठे हैं। कुछ घुंघराले से बाल, चश्मे के शीशों के भीतर चमचमाती मछली-सी आंखें, भावुकता-सा चेहरा—और मैं ज्योंही परदा उठाकर कमरे में घुसा हूँ तो देखी पहले उनके चेहरे पर कुछ शरारत-सी, फिर कुछ करुणा-सी और फिर एकदम कठोरता-सी। क्षण भर में उनके चेहरे पर मानसिक भावों के इतने रंग उभरे-उतरे और फिर गर्दन ऊंची करके बोले-

'जोशी, तुम्हारी मन स्थिति को मैं जानता हूँ। पर तुम्हे—

यह गुरुभार उठाना होगा, इस पथ से ही जाना होगा—

मैं तुम्हारा भविष्य इसी मे देखता हूँ। एम० ए० करो, डाक्टर बनो—और तुम बनोगे भी। तुम आज से ही यूनिवर्सिटी जाना शुरू कर दो। दुनिया तुम्हे यूनिवर्सिटी छोडने के लिए कह दे, पर मैं तुम्हे कभी नही कहूगा। समझे बच्चा! और तुम यह बिल्कुल भूल जाओ कि तुमने इतने मोटे मोटे पोथे लिखे हैं। मैं तुम्हे बताऊँ कि मैंने भी तुम्हारी ही तरह एम० ए० किया था। पर तब मैं तुमसे अधिक प्रसिद्ध था। तुम यह सोचो कि मैं अब एक विद्यार्थी हू। अपने शिक्षकों की बात ध्यान से सुनो। अपने आत्मसम्मान को उनके आगे बिछा दो। वे समझदार होगे तो खुद ही तुम मे हीनता न आने देंगे।' बच्चन जी के यह कहने से मुझमे एक नया उत्साह आ गया। मन की गाठ-सी खुल गई। सच बात तो यह है कि मैं हीनता का शिकार हो गया था। १५-२० दिन से यूनिवर्सिटी जाना छोड दिया था। और अपने एक मित्र कैलाशभास्कर को डर के मारे सिखा-पढाकर बच्चन जी के पास भेजा था कि वे मुझे यूनिवर्सिटी छोडने पर राजी हो जाँय। पर यहाँ तो पासा ही पलट गया। और ऐसा पलटा कि अब शायद मे जल्द ही 'डाक्टर' भी बन जाऊँ।

× × ×

डाक्टरेट लेने के प्रसग मे एक घटना और याद आई। हिन्दी के एक मूर्धन्य कवि को किसी विश्वविद्यालय ने सम्मानार्थ 'डाक्टर' की उपाधि से अलकृत किया। बच्चन जी जब घरेलू 'मूड' मे बात करते है तब वे बहुत ही सहज और सरल लगते हैं। तब तो यह भी ध्यान रखना मुश्किल होता है कि वे इतने महान कवि हैं। पर मैं आदमी से मिलने वक्त, उसकी बातो से उसके भीतरी कनेक्शनो को छूने के प्रति भी जरा सजग रहता हू। जब कभी बच्चन जी से मिलता हू तो बहुत ही सजग होता हू। क्योकि मैं जानता हू कि तब उनका कवि उनके व्यक्ति के पीछे छिप जाता है। पर वह उनकी जुबान पर अपनी जादू की चुटकी भी डालता रहता है। हाँ, तो बात उन कवि-डाक्टर महोदय की चल रही थी। तब बच्चन जी इगलैंड की भूमि पर बैठकर येट्स पर डाक्टरेट लेकर आये थे। बडी बात थी। दिल मे नया जोश था, दिमाग मे नया दब-दबा था। व्यक्ति के लिए ऐसा स्वाभाविक है। मेरी बात पर बोले—'जोशी, श्रम से सम्मान मिले, तभी मुझे वरदान लगता है। दान से मिला सम्मान मुझे तो नही सुहाता।' यह कहकर एक क्षण वे कुछ एठे-अँकडे और दूसरे ही क्षण कुछ-ऊँची आवाज मे बोले—

'मिला नहीं जो स्वेद बहाकर, निज लोहू से भीग-नहाकर,
वर्जित उसको, जिसे ध्यान है, जग मे कहलाए नर,
प्रार्थना मतकर, मतकर, मतकर।

(एकान्त संगीत)

× × ×

बच्चन जी से मिलकर लोगो को प्राय शिकायत करते भी मैंने सुना है। बात यह

है कि बच्चन जी स्वभाव और शब्दो मे बिल्कुल निश्छल हैं—एकदम साफ और सपाट ! उनकी आवाज अभिधा, है । व्यवहार मे लक्षणा व्यजना से तो उन्हे वैसे भी सख्त नफरत है । राजनीति के हथकडे वे नही जानते—वह कि उनसे प्राय वे हार जाते हैं । मेरे पास इसके अनेक सबूत हैं, पर अभी नही बताऊँगा । वे 'राजसभा' के सदस्य हैं । पर कौन नही जानता यह सदस्यता राजनीति ने नही उनके साहित्य ने उन्हे भेंट कराई है । राजनीति का 'रग' उन पर मुश्किल से चढता है । चढता भी है तो व्यग के व्याज से वह उसे कीचड समझ कर उतार देते हैं । 'बुद्ध और नाचघर' और उसके बाद की कृतियो मे ऐसा ही कुछ है ।

सूत्र रूप मे बच्चन जी के कवि और व्यक्ति को एक करके देखने का मतलब है उनके व्यक्तित्व को एकदम सही समझना । उनके व्यक्तित्व को सही सही समझने का मतलब है मध्यवर्गीय जीवन मानस के घात प्रतिघातो की प्रतिध्वनियो का सहभोक्ता होना । यही उनके व्यक्तित्व और कवित्व की 'मास्टर की' है ।

× × ×

२७ नवम्बर ६७ की बात है । मैं उनकी षष्ठिपूर्ति पर सवेरे ही सवेरे उनके घर पहुँच गया । उन्होंने पत्र देकर बुलाया भी था । वहा अज्ञेय, नरेन्द्रशर्मा, श्रीकात वर्मा अजित कुमार, रमानाथ अवस्थी और बहुत से अतिथि आए हुए थे । इस अवसर पर छपी अपनी नई कृति 'बहुत दिन बीते' को वह मुझे सस्नेह देना चाहते थे । स्मृति और मौके की बात से चूकते हुए बच्चन जी को मैंने कभी नही देखा । इस विषय मे मैंने और स्थलो पर भी रोशनी डाली है । खैर ! भीडभाड बहुत थी । मैंने सोचा, आज पुस्तक देने वाली बात टली । आज बच्चन जी को भला कहाँ याद होगा कि मुझे भी पुस्तक देनी है । फिर, इतने लोग सामने ? यह सोचकर ज्यो ही मैं चलने को हुआ कि बच्चन जी तुरन्त बोले—'जोशी, ठहरो !' झट से अपनी पुस्तको वाले कमरे मे गए और एक पुस्तक यह लिखकर 'प्रिय उषा और जीवन प्रकाश को सस्नेह—बच्चन, २७-११-६७' मुझे दे दी ।

मैं उस समय किन भावो विचारो मे डूबता-उतराता चला गया, इसे बताने की जरूरत नही है ।

× × ×

ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जिनको याद करते वक्त मेरी आँखो मे और हृदय मे बच्चनजी का स्नेहमय, सरल (और कभी-कभी कठोर भी) व्यक्तित्व उभर उठता है । पर पिछले १२ वर्षों की घटनाओ को यहा दुहराने का न मेरे पास समय है, न क्षमता है, न स्थान है । पर मैं समझता हू कि बच्चन जी के व्यक्ति और कवि को समझने के लिए उनकी प्रत्येक रचना उनकी प्रतिध्वनित एक तस्वीर जैसी है । मैंने तो जीवन मे सघर्ष पथ पर आगे बढने के लिए उनके काव्य-जीवन से जितनी प्रेरणा और शक्ति पाई है शायद उतनी मुझे कहीं किसी भी मूल्य पर न मिलती, कितनी भी आत्मीयता से न मिलती । मेरा विश्वास है कि जीवन का मूल्य देने वाले उसके महत्व को पाने से वचित भी नही

रहते।

श्रौर ग्रन्त मे मैं सोचता हूँ कि बच्चन जी जैसा स्वाभिमानी, सघर्षशील श्रौर यशस्वी कोई कवि-व्यक्ति क्या कभी श्रपने बारे मे ऐसा भी सहज रूप मे सोच श्रौर लिख सकता है ?—

नाम से भी घय ध्वनिकर—
मैं निए मधु-पात्र, मधु मानव विशेषण—
ग्रल्प, ग्रतिलघु—
नाम ग्रति-परिचय—ग्रवज्ञापूर्ण बच्चन ।' (दो चट्टानें)

श्रौर इस दृष्टि से मैं समझता हूँ कि ग्रनत कवि की महानता ग्रवदन मे नहीं, उसके व्यक्तित्व के विघटन विसर्जन मे है, ग्रहम् के टूटन मे है। बच्चन जी का कवि उमर के इकसठवें पडाव पर पहुँचकर ग्रपने महाप्राण व्यक्तित्व का सहज विसर्जन कर रहा है। उम्र का जब, जैसा तकाजा रहा, इस कवि ने उसे सहज भाव से, सहज स्वर मे पूरा किया। यह एक बडी साधना है, एक पृथक उपलब्धि है। कवि की 'यात्रात' ('बहुत दिन बीते' सग्रह की ग्रतिम कविता) कविता की ध्वनि मे, मैं जानना चाहता हूँ कि हममे से किस व्यक्ति की जीवन-यात्रा की ग्रपरिहार्य सघर्ष ध्वनि समाहित नही है ? इस सच्चाई से हममे से कौन बेखबर है—

'कुछ नही सामान मेरे साथ
खाली हाथ
सासो की लगामे।
कौन ग्राशा
कौन सा विश्वास
पागल कौन-सी जिद
खीचती लाई यहाँ तक
जानता बिल्कुल नही मैं।'

(बहुत दिन बीते)

वैसे 'जानकर ग्रनजान बनना' (बुद्ध ग्रौर नाचघर) भी कम महत्वपूर्ण नहीं। पर मैं यह भी जानता हू कि बच्चन जी के काव्य मे जीवन की इस 'ग्रज्ञेयता' को जानने का मूल्यवान मसाला है। ग्राप चाहें तो उनके काव्य को इस परिप्रेक्ष्य मे ग्राज ही पढकर देखें।

●

वच्चन : कुछ संस्मरण

क्रमः

जब बच्चन जी ने झाड़ू लगाई

पहली बार जब बच्चन जी मेरी दीदी चन्द्रकला पांडे के घर आए तो आने के कुछ देर बाद ही उनकी इच्छा छत देखने की हुई। लेकिन ज्यो-ज्यो हम लोगो ने उन्हे छत दिखाने की बात पर टालमटोल की त्यो त्यो वे उसे देखने के लिए उतावले हो उठे। नौबत यहाँ तक आ गई कि खुद जीना तलाश करने के उतावलेपन मे एक बार वे पाकशाला का मुआयना कर आए और एक बार शौचगृह की भी सैर कर आए। तब मिला जीना।

पीछे पीछे मैं और घर के बच्चे नीता, नीरजा, यामिनी और मिम्मी लगे हुए थे। छत पर पहुँचते ही बच्चन जी ने ठिठक कर नाक भौ सिकोडी और बोले, 'इतनी गन्दी छत! झाड़ू क्यो नही लगाते?' फिर इधर-उधर देखा तो कोने मे कोई घिसी-पिटी झाड़ू दीख पडी। बच्चो से बोले—'बच्चो, छत की झाड अभी मेरे सामने लगाओ।' उनकी बात सुनकर नटखट बच्चे शरमाते इठलाते वहाँ से भाग लिये। यह देखकर बच्चन जी फुर्ती से चले और कोने मे से झाड़ू उठाकर छत साफ करने लगे। झाड वे इस कमाल से लगा रहे थे कि मुझे बेहद आश्चर्य हो रहा था। मैं हक्का-बक्का-सा खडा था। थोडी देर मे छत इतनी साफ हो गई कि कही एक तिनका भी नजर नही आ रहा था। जब वे झाड़ू लगा कर खडे हुए तो मैंने कहा—बच्चन जी, मैंने तो आपकी यही पक्ति पढ़ी थी कि 'मैं कलम और बन्दूक चलाता हूँ दोनो' पर—

तपाक से बच्चन जी ने कहा—'कवि को सब काम करने चाहिये।'

बंटी भैया और मैं

उन दिनो बच्चन जी बहुत बीमार पडे थे। 'प्लूरिसी' से परेशानी बेहद बढ गई थी। रोज सवेरे इन्जेक्शन लगते थे।

उस दिन सवेरे डाक्टर उन्हें इन्जेक्शन देकर गया था। मैं उनके पास ही बैठा था। पास ही बंटी भैया भी खडे थे। बच्चन जी पूरी आस्तीन की कमीज पहने थे जिसे इन्जेक्शन लगाने के लिए ऊपर तक चढाया गया था।

इन्जेक्शन लगने के बाद मेरी हार्दिक इच्छा यह थी कि मैं आस्तीन के बटन लगा देता। लेकिन ज्यो ही मैं बटन लगाने को हुआ कि सभ्यता के नाते बंटी भैया ने लपक कर काज मे बटन लगाना शुरू किया। मैं रह गया। तभी बच्चन जी ने एक दम अपना हाथ मेरी तरफ बढाते हुए कहा—'बंटी, तुम नही, बटन जीवन लगाएगा।'

और उस वक्त मेरे मन को जो महसूस हुआ उसे बताने वाले शब्द अब तक मुझे नहीं मिले।

बस की भीड़

तेजी जी की कडी हिदायत थी कि मैं बच्चन जी को बस से न ले जाकर टैक्सी से ले जाऊँ। लेकिन बच्चन जी बस से ही जाना चाहते थे।

तेजी जी की बडी हिदायत पर बच्चन जी ने किसी देश के प्रधानमन्त्री की मिसाल देकर कहा 'अगर मैं बस से जाऊँगा तो कौन विचित्र बात होगी?' इस पर तेजी जी ने नहले पर दहला दिया—'जिस दिन भारत का प्रधानमन्त्री (मतलब नेहरू जी से था) बस से चलने लगेगा उस दिन बच्चन को भी बस से जाने के लिए मैं नहीं रोकूँगी।' इस पर बच्चन जी हँस दिये और मैं भी।

हम दोनो ज्यो ही बस स्टैण्ड तक आए कि एक दम ठिठक कर बच्चन जी बोले—'जोशी, तुम्हे जाना है तो तुम टैक्सी से जा सकते हो। मैं तो बस मे बैठकर ही चलूँगा।' मैंने आनाकानी की तो वे व्यग से बोले, 'जोशी मालदार आदमी हैं। पर मैं टैक्सी मे पैसे फिजूल खर्च करना नही चाहता।' मैंने जोर देकर कहा—पर तेजी जी ने जो कहा है उसका क्या होगा? वे बोले, 'मेरी पत्नी शाही तबियत वाली है। पर मैं तो गरीब रहा हू। स्वभाव-सस्कार से मैं अब भी गरीब हू। जोशी, पैसा जहाँ तक हो बचाना चाहिये।' लेकिन मैं फिर भी बस मे बैठने का अनुरोध कर रहा था। इतने मे ही नौ नम्बर की बस आई। बच्चन जी फुर्ती से उसम घुस गए। लेकिन बस मे चढ़ते समय तेजी जी के डर से मेरा मन धुकुर-पुकुर कर रहा था।

मियाँ बीवी राजी... ..

फरवरी सन १९६३ की बात है। एक दिन श्रीमान हरिदामोदर धुलेकर, श्री के० डी० गोयल और कुमारी ऊषा धुलेकर आकाशवाणी दिल्ली पर मुझसे आकर मिले। मेरे विवाह सम्बन्ध की बात चली। लडकी के पिता जी ने कहा—'जोशी जी, ये कन्या है। रिश्ता मजूर कर लें तो हम पर कृपा होगी।' कन्या मुझे जची। लेकिन विवाह की जैसी सीधी स्वीकृति देने की मुझमे हिम्मत न हुई। जीवन भर के सग का गम्भीर प्रश्न था। मैंने कहा—आप ऐसा करिये कि बच्चन जी से मिलिये। वे जैसा कहेगे उसी के अनुसार कुछ विचार हो सकेगा। चाहें तो आप उनका टेलीफून नम्बर लेकर पहले उनसे बात-चीत करने के लिए समा ले लें।

श्री धुलेकर जी ने उसी समय बच्चन जी को डायल किया। बात चलते ही बच्चन जी ने कहा—'लडकी को मैं पहले देखना चाहूँगा। आप लोग शाम को दफ्तर के [illegible] जी को साथ जरूर लेते आए।'

शाम को हम लोग बच्चन जी के घर पहुँचे। श्रीमान घुलेकर जी, उनकी कन्या कुमारी उषा, श्रीगोयल, श्री बृजराजकिशन सिन्हा, श्रीमती रमासिन्हा, श्री रमेशचन्द्र पांडे (मेरे बहनोई), और मैं भी साथ था। बच्चन जी ने बडे उत्साह से सभी का स्वागत किया। फिर बात चलने से पहले एक बार बच्चन जी ने कुमारी उषा को अनुभवी निगाह से जमकर देखा और बोले—कहिये, ये जोशी हैं, तुम्हें पसन्द हैं? उषा ने कह ही तो दिया—'हाँ मुझे पसन्द हैं।' बच्चन जी ने चुटकी ली—'सेलेक्शन के मामले मे लडकी को ऐसा ही होना चाहिये। और जोशी, तुम?' मैंने कहा—ठीक है। बच्चन जी तपाक से बोले—'मिया-बीबी राजी तो क्या करेगा काजी?' इस पर सभी का ठहाका गूंजा। फिर कुछ रुककर बच्चन जी ने कहा—'लेकिन शादी मन्त्र मण्डप द्वारा होगी। कहिये?' घुलेकर जी ने कहा—'जैसी आपकी इच्छा होगी वही होगा।' बच्चन जी बोले—'चाहे कुछ भी हो, मुझे मन्त्र-मण्डप द्वारा सम्पन्न हुए विवाह पर बडी आस्था है। सस्कारो की पवित्रता के बिना कोई बडा काम नही होता।'

इसके बाद टीके और विवाह की तारीखें तै हो गई। बच्चन जी टीके और विवाह के दिन सवेरे ही हमारे यहा आ गए और दिन भर कार्रवाई का सचालन उत्साह और सूझ-बूझ से करते रहे। और मुझे फेरो के समय यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ कि मन्त्रों के उच्चारण और सस्कार विधि मे बच्चन जी ने इस तरह भाग लिया कि उस समय वे सभी को कवि से अधिक पण्डित प्रतीत हो रहे थे। असल पण्डित जी तो उन्हे दबी-दबी नजर से देखे जा रहे थे।

कवियों में बदनाम कवि

एक दिन काव्य-चर्चा करते-करते बच्चन जी बहुत 'मूड' मे आ गये थे। मैंने मौका पाकर कहा—

बच्चन जी, आपने भी छायावादी मच पर उतर कर ऐसी धूम मचायी कि जनता मे धाक ही जमा दी।

'हू!' और यह कहकर पहले बच्चन जी ने कुछ शरारती मुद्रा बनायी और फिर हसकर कहने लगे—'छल्लेदार बाल बनाए, बनठन कर जब छायावादी कवि मच पर नाज-नखरे से अपनी कविताऐं सुनाते थे तो मुझे भी तुकबदी करने की शरारत सूझती थी।

तुम जानते हो, ज्यादा बदनाम आदमी भी लोगो मे मशहूर हो जाता है। ऐसे ही मैं भी कवियो मे बदनाम कवि बनकर मशहूर हो गया।

पत जी और जनगीता

दिल्ली म श्री रामचन्द्र टडन के यहाँ पत जी ठहरे हुए थे । पत जी के दर्शनों के लिए म बच्चन जी के साथ पहुचा । सवेरे का समय था । चाय नाश्ते के लिए टेबिल तयार थी । सब बठकर चाय नाश्ता करने लगे तो पत जी ने बात सुनाई—

बच्चन तुम्हारी जनगीता के बारे म तो लोग तरह-तरह की बात करते हैं। चौंक कर बच्चन जी ने पूछा—क्या ?

पत जी ने कहा—यही कि जनगीता म भाषा सम्बन्धी अनेक भूल है ।

बच्चन जी बोले—वे मूख हैं। पत जी ने बात को और बल देकर कहा—वे मूख नहीं विद्वान लोग हैं।

बच्चन जी बोले इससे क्या फक पडता है ? पत जी आज तक मेरे प्रति न्याय कब हुआ ? मैं ने मेरा काम काम किये जाना है। फसला कुछ भी किया जाय।

इस पर पत जी ने बड़ी गम्भीरता से कहा—जनगीता तो म ने भी पढी है —और इससे आगे पत जी कुछ कह कि बच्चन जी बोले—

पत जी आप अवधी के अधिकारी विद्वान तो नहीं हैं। अवधी मेरी भाषा है। जो कुछ कहना है व मुझ से बात करके देख ।

सौम्य मन म पत जी ने कहा—बच्चन मुझ पर नाराज क्या होते हो ? जो लोगों ने कहा वही मने तुमसे कह दिया । अच्छा मुझे वह गीत सुनाओ—साथी सो न कर कुछ बात । सच बडी मधुर रचना है। और बच्चन जी मधुर मधुर लय म धीरे धीरे गीत गुनगुनाने लगे । जसे अभी कोई ज्वार आया हो और गया हो । अार पाद्यगात की कोई मधुर लय छोड गया हो ।

दोस्ती का अधिकार

प्रणय पत्रिका' कृति पर दिनकर जी ने आकाशवाणी से आलोचना प्रसारित की जिसमे प्रणयपत्रिका के कवि का प्रणय सम्बन्धी कुछ तीखी आलोचना था ।

इधर बच्चन जी ने एक लेख लिखा जिसमे दिनकर जी के राष्ट्रीय काव्य की सराहना की थी और उनकी प्रसिद्ध हिमालय शीर्षक कविता की पद दलित इसे करना प छ पहन र मेरा सिर उतार —पक्तियो द्वारा कवि की प्रशस्ति की थी । यह निबन्ध नय-पुरान झरोखे पुस्तक म सग्रहीत है ।

इ [illegible] आलोचना बच्चन जी से कहा [illegible] दिनकर ने तो प्रणय-पत्रिका की इतनी कट आलोचना की आप उनकी कविता की

प्रशंसा के पुल बांधते हैं।'

इस पर बच्चन जी ने कहा—'भाई, दिनकर मेरा दोस्त है। दोस्त दोस्त के लिये जो चाहे कह सकता है। लेकिन मुझे ये अच्छा नही लगता कि कोई पीठ पीछे किसी की चुगली या आलोचना करे। मैं किसी की बुराई सुनने या करने के पक्ष मे नही हू। समझ गए आप ?'

वाइस चांसलर की नाराजगी

बच्चन जी का आदेश कि मैं पी० एच० डी करू। लेकिन आकाशवाणी की नौकरी करते हुए कौन विश्वविद्यालय उसका अवसर देगा, यह प्रश्न हमेशा आडे आता रहा।

दिनकर जी भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति बने तो आशा बधी कि चलो शायद अब पी० एच० डी० करने का मौका मिल जाय।

इत्तफाक की बात कि एक दिन शाम के वक्त जब बच्चन जी के साथ मैं लान पर बैठा हुआ था कि अकस्मात दिनकर जी पधारे। मैंने मौका पाकर बच्चन जी से पूछा—अपने बारे मे बात करू ?

बच्चन जी बोले—'क्या हर्ज है, करलो ?'

इन्ही दिनो मेरा एक निबन्ध सग्रह प्रकाशित हुआ था जिसे मैंने पत जी और दिनकर जी को समर्पित किया है। निबध सग्रह के समपर्ण के बारे म मैंने दिनकर जी से चर्चा की तो (शायद) मूड में आकर वे बोले—'जोशी, आकाशवाणी पर ही जमे हो ?' मैंने कहा, हा दिनकर जी, जमा क्या हू, जमा रहा हू अपने को। पर अब पी० एच० डी० करना चाहता हू। अगर आप अपने विश्वविद्यालय से कुछ सुविधा दिला दें तो बडी कृपा होगी।

वे बोले—'विषय ?'

'छायावाद के उत्तरार्ध के गीतकार कवियो का विषय और शिल्पविधान'—मैंने कहा। इस विषय पर दिनकर जी ने मुझ से कुछ इस तरह के प्रश्न पूछे जिनका उत्तर हो सकता है मैंने उनकी धारणा के अनुकूल न दिया हो। तभी एकदम ऊँची आवाज मे वे बोले—

'अरे, जानना है रिसर्च किसे कहते है ?'

पता नही किस झक मे मेरे मुँह से निकल गया—दिनकर जी, मैं बी० ए० पास नही हू। मैंने दिल्ली विश्वविद्यालय से उच्च द्वितीय श्रेणी लेकर एम० ए० पास किया है।...

शायद बात कुछ और होती कि सहसा बच्चन जी ने कहा—'जोशी, तुमसे एक वाइसचांसलर नाराज़ हो गया है। अब तुम उसके विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० नहीं कर सकते। अच्छा, कहीं और कोशिश कर सकते हो।

काला फ्राक

बिटिया 'शुभा' के जन्म के बाद पहली बार मैं और उषा जब बच्चन जी से आशीर्वाद लेने उनके घर गए तो शुभा को देखते ही बच्चन जी गदगद् हो गए। पर हम पर बरस पड़े। बोले, 'शुभा को काला फ्राक क्यों पहनाया है?' मैंने देखा, बच्चन जी मेरी तरफ ज़रा कड़ी नज़र से देख रहे हैं। मैंने धीरे से कहा—उषा ने पहनाया है। अब उन्होंने उषा की तरफ देखा। फिर बोले, 'इसे काला फ्राक आगे कभी मत पहनाना। हमारे यहां इसे अशुभ मानते हैं। इसे तो फूलोंवाले कपड़े पहनाया करो।' यह कहकर उन्होंने तेजी जी की तरफ कुछ रहस्यभरी दृष्टि डाली। मैं उसका अर्थ न समझ सका। फिर बोले—'तेजी, देखो, कोई फूलवाला कपड़ा हो तो शुभा को दो। लेकिन कुछ सोचकर तेजी जी ने कुछ न कहा। बच्चन जी भी चुप हो गए।

जाते समय तेजी जी ने ग्यारह रुपए शुभा के हाथ से छुलाकर उषा को दे दिये। तभी बच्चन जी बोले—'उषा, अब कभी काला फ्राक मत पहनाना, समझी।' तेजी जी ने स्नेह से कहा— लड़की बड़ी सुन्दर मिली है तुम्हें।' बच्चन जी बोले—'लड़की नहीं कन्या।'

फिर मैं बच्चन जी से मिलता तो प्रायः पूछ लिया करते थे—'शुभा को उषा काला फ्राक तो नहीं पहनाती?

पूर्व जन्म का कर्ज

एक दिन मैंने कुछ दुखी होकर कहा—बच्चन जी, मैं जब भी आपसे मिलता हूँ कुछ न कुछ लेने की बात ही करता हूँ। इस कर्ज को कैसे चुकता करूँगा? यह सुनकर बच्चन जी ने स्नेह से मेरे कंधों पर अपनी हथेलियां रख दीं और कहा—

'किसे पता है पूर्व जन्म में मैंने तुमसे कोई कर्ज लिया हो जो मुझे अब चुकता करना पड़ रहा है। जोशी, हम जिसके लिये जो कुछ कर सकते हैं हम कर देना चाहिये।'

चरण स्पर्श वर्जित

बच्चन जी का हार्निया का ऑपरेशन हो चुका था। वे घर आ चुके थे। हम लोग (मै, उषा जोशी श्रीमती रमा सिन्हा, और श्री सिन्हा) उन्हे देखने गये थे। हमसे पहले वहाँ श्री रमानाथ अवस्थी मौजूद थे।

जाते वक्त बच्चन जी के चरण स्पर्श करने को ज्यो अवस्थी जी ज़रा झुके कि झटके के साथ पैर सिकोडते हुए बच्चन जी बोले—

'अवस्थी, सोते हुए के पैर छूना हमारे यहाँ शास्त्र-वर्जित है। समझे बच्चा ! जाओ, अब ऐसी भूल मत करना।'

बनवारी और मोजे

एक दिन मैं और उमाशंकर सतीश बड़े सवेरे बच्चन जी से मिलने उनके घर पहुँचे गये। तब वे डिप्लोमेटिक इन्क्लेव मे रहते थे।

घर पर पहुँच कर पता चला कि बच्चन जी अभी शेव बनाने मे लगे हैं। हम दोनो बाहर के कमरे मे बैठकर इन्तजार करने लगे। नौ बजे के करीब नौकर हमारे लिये चाय-बिस्कुट लाया और चलते-चलते कह गया—'साहब कोई १०-१५ मिनट मे आ रहे हैं।'

चन्द मिनटो मे हमारी उत्सुकता को कुछ थपकी-सी मिली जब भीतर से सुनने मे आया—'अरे, साहब के लिये फौरन मोजे निकालो'। यह तेजी जी का स्वर था। फिर एक झिडकी सुनाई दी—

'बनवारी, हमने तुम से कितनी बार कहा है कि साहब को······रग के मौजे दिया करो।'

तभी बच्चन जी की गम्भीर आवाज आई—'तेजी, तुमने छोटो पर हमेशा नाराज ही होना सीखा है। नही, हम वही मोजें, पहनेंगे। बनवारी वही मोजे ले आओ।'

थाली की जूठन

एक दिन बच्चन जी और मैंने साथ-साथ खाना खाया। बच्चन जी ने थाली बिल्कुल साफ कर दी। मैं थाली मे जूठन छोड कर ज्यो ही उठने लगा कि झपट कर उन्होने मेरी बाँह पकड ली और बिठलाते हुए कहा, 'ये क्या ? थाली मे जो है उसे खाओ। और आगे के लिये ख्याल रखना कि थाली मे जूठन कभी न रहे। जोशी, अन्न की उपेक्षा कभी नही होनी चाहिये।

बावर्ची की छुट्टी

एक दिन हमारे घर बच्चन जी खाना खा रहे थे। खाना साधारण था। लेकिन बच्चन जी को बहुत स्वादिष्ट लग रहा था। उसके लिये वे श्रीमती रमा सिन्हा की प्रशंसा कर रहे थे। तभी रमा जी ने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा—'बच्चन जी जोशी जी के हाथो मे बडा रस है। आप इनका बनाया हुआ खाना खायेंगे तो मेरी तारीफ करना बिल्कुल भूल जायेंगे।'

फौरन बच्चन जी बोले 'हू !' अच्छी बात है तो किसी दिन जोशी मेरे यहाँ आकर खाना बनाये। उस दिन मैं बावर्ची की छुट्टी कर दूंगा।

नाम की मजूरी

टेलीफोन पर किसी ने बच्चन जी से इस बात की मजूरी माँगी कि वे उनका नाम किसी समारोह की अध्यक्षता के लिये छापें।

तुरन्त बच्चन जी बोले, 'हा-हा, मुझे कोई आपत्ति नही है। सुनिये, आप हर अच्छी बात के लिये मेरा नाम मेरी मजूरी के बिना ही छाप सकते हैं। लेकिन देखिये, वही ऐसी जगह मेरा नाम न छपे जिससे आपको और मुझे कोई परेशानी पैदा हो जाये। समझ गये ?'

जीवन-यात्रा का मधुमय-विषमय पथ
'तेरा हार' से 'बहुत दिन बीते' तक

जीवन-यात्रा का मधुमय-विषमय पथ
'तेरा हार' से 'बहुत दिन बीते' तक

गीतो के पथ पर चलते हुए जिसने रुदन मे अट्टहास किया है, नयनो से विरह के, दर्द के तथा अभावो के परवश आसुओ के निर्झर बहाये हैं, जीवन मे सुख-सपनो का अनन्य अनुराग, प्राणो मे निष्ठुर जग की धधकती हुई आग और तृषित कठ मे असीम अतृप्ति के विफल राग की स्पष्ट अनुभूति को जिसने 'कवि का सत्य' समझ कर मोहक प्रकृति के मधुवन मे, सूने मरघट की ठडी राख मे, धुंधले अतीत के मौन खण्डहरो मे, कठोर वर्तमान के भीषण दुर्ग मे और स्वप्निल भविष्य के कल्पित भवन मे अपनी सरल अभिव्यक्तियो को यथार्थ की तूलिका से चित्राकित किया है, जिसने यौवन वासना की फेनिल मदिरा के नशे मे काल जीवन का हलाहल इठलाते पी लिया है, स्थूल प्यार की एकटक मनुहार मे जिसने जड प्रकृति के अग प्रत्यग की मासल शोभा को रागात्मक बना दिया है और एक कुशल चित्रकार की भाति जिसने काव्य की कला को जनरुचि की गीत-सवेदना मे साकार करने का मानो सकल्प ही ले लिया है, व्यष्टि की रक्षा के लिए जिसकी आत्मा ने सतत सघर्ष के नारे बुलन्द किए हैं, उपेक्षित मानवता के समर्थन मे समाज की दुष्ट आलोचनाओ, उसके क्रूर नीति नियमो और अनुशासनो की शृखलाएँ तोडने की चुनौती जगाई है, जिसने अपने व्यक्तित्व और कविकर्म का आदर्श ही यह स्थापित किया कि—

बन कर आग नहीं पैठा जो, कब उसको स्वीकार किया है,
बन कर राग नहीं निकला जो कब उसका इजहार किया है—

वह है अग्रेजी-साहित्य का मर्मज्ञ, पारगत विद्वान और हिन्दी का प्राणवत गीतिकार डा० हरिवशराय बच्चन।

चेहरे पर भावुकता, वेशभूषा मे सुरुचि और सादगी और स्वभाव मे एक साधारण, सभ्य नागरिक की छाप, 'बच्चन' का अपना व्यक्तित्व है। एक बड़े कवि या विद्वान होने का अभिमान जैसा प्राय आज के कवियो या लेखको म देखने को मिलता है वच्चन मे नही है। फिर यह कि एक पोस्टकार्ड मे बच्चन की हार्दिक भावनाएँ आप घर बैठे खरीद लीजिए। *यही उसके सीधे-सादे व्यक्तित्व और सरल स्वभाव की* बडी विशेषता है।

× × ×

पिछले तीन-चार दशको मे काव्य के वादो का जितना उतार-चढाव हम देखते हैं उतना पिछले हजार वर्ष के काव्य मे देखने को नही मिलता। खडी बोली कविता के

विगत साढ़े तीन दशक सच कहा जाय तो मूल्यांकन पुनर्मूल्यांकन अवमूल्यांकन में ही व्यय हो गये। हाँ इसमें अधिकाधिक लाभ 'कोस' के कवियों और उन प्राध्यापकों को हुआ जो वर्तमान आलोचना क्षेत्र में अपने को भरत भामह की कोटि में समझते हैं। छायावाद रहस्यवाद राष्ट्रीयतावाद प्रगतिवाद प्रयोगवाद 'नई कविता' वाद और न जाने 'कौन सा वाद' ? आदि की दुकड़ियों में इन साढ़े तीन दशकों का काव्य बँटा हुआ है। उनके कवि-नेताओं एवं 'आलोचक-नेताओं' का नाम देना क्या जरूरी है ? पर विचारणीय यह है कि 'बच्चन' नाम के साठ वर्षीय कवि को जिसका सृजन भी इन साढ़े तीन दशकों के सृजन के साथ कंधे से कंधा मिलाये रहा है इन सब वादों में कहाँ फिट किया जाय ? इन वादों का कोई भी महाकवि या आलोचक तो उसे अपनी बिरादरी में शरीक नहीं करता। और लीजिये 'हालावाद' का खंडन मैं करता हूँ। (देखें लेख मधुकाव्य) फिर ? मगर 'फिट' कोई क्या करेगा ? फिट तो वह अपने आप ही होना आया है हो गया है। यों कहें कि वादों का कोई भी खूँटा इस कवि को बाँधने में असमर्थ रहा है। इस कवि ने इन साढ़े तीन दशकों में जो लिखा है वह वस्तुतः इहलोक युग जीवन और आयु के गुणात्मक परिवर्तन के तत्वों को आत्मसात करके लिखा है। अतः इन तत्वों को हम काव्य के किसी एक वाद में सीमित कर ही नहीं सकते। उनका महत्व तो तभी समझा जा सकता है जब कि हम 'वादों' से ऊपर काव्य को जीवन की दृष्टि से देखें। बच्चन का काव्य और कवि इसी जीवन की इहलोकोन्मुखी दृष्टि का स्वागत करता है। मैं इसी तत्व की ओर फिर फिर इंगित करता रहा हूँ।

बच्चन सच्चे अर्थों में गीतकार हैं। मधुशाला की रुबाइयाँ जिस तन्मयता के साथ वह मधुर कंठ से गाते हैं और जिस भाव विभोर दशा में उसे रसिक जन सुनते हैं इस कारण वे कवि सम्मेलनों में जनता के 'अपने' कवि के रूप में लगने लगते हैं। वास्तव में बच्चन की लोकप्रियता का मूल कारण उनके भाव वाणी कंठ और व्यक्तित्व के अटूट समन्वय में कूट-कूट कर भरा है।

× × ×

बच्चन के काव्य के प्रति अब तक हिंदी के तथाकथित आलोचकों की उपेक्षा बनी रही है। और जहाँ कहीं यदि उन आलोचकों ने बच्चन के काव्य की आलोचना की भी है तो वहाँ या तो बच्चन को हालावादी तथा भौतिकवादी कवि बतला कर उनके काव्य को क्षणिक उत्तेजना से पूर्ण माना है या फिर उग्र जी या खैयाम के काव्य से प्रभावित गीतकार। परन्तु ऐसी आलोचना बच्चन के अब तक के भाव भाषागत काव्य विकास के प्रति न्यायोचित फैसला देने में समर्थ नहीं कही जा सकती। यह कहना सोलह आने सच होगा कि खड़ी बोली गीति काव्य को बच्चन की देन बहुत मूल्यवान है। बच्चन ने जिस समय गीत-क्षेत्र में कदम उठाये थे उस काल की काव्य धारा भौतिक जीवन के भावपक्ष के संसार से परे किसी छायालोक के लिए वरदान थी जिसका पयपान हो रहा था रहस्यवाद के अनन्त सागर के तल में जहाँ न इस जीवन का सौंदर्यारोपण था न दुख-सुख की आँखमिचौनी और न ही जीवन

मे जीने रहने की सघर्षमयी ज्वाला। पन्तजी की 'ग्रन्थि' तथा प्रसाद जी की 'आँसू' जैसी भौतिक भोग से पराजित हुई भावनाओं को काव्य मे व्यक्त करने वाली कृतियाँ तत्कालीन तरुण एव उदीयमान रसिको तथा कवियो को जीवन के सघर्षमय वातावरण से पलायन कर जाने का मसिया सुना रही थी। सच कहा जाये तो छायावादी और रहस्यवादी काव्य धारा मे जीवन की घोर सघर्षमयी उस भूख की सर्वथा उपेक्षा है जो यथार्थ जीवन की स्वाभाविक वस्तु कही जा सकती है। मानव अपने ऐहिक जीवन की सब माँगो को सतुष्ट करके ही अशरीरी सौदर्य की ओर दौड लगा सकता है। परन्तु नित्य प्रति के घात प्रतिघातो की सृष्टि मे बसने वाले मानव को तो पहले ऐन्द्रिय सन्तुष्टि एव भौतिक सुख भोग की आकाक्षा ही प्रधान बनी रहती है। इस सुख भोग की भावना को आदर्श, सस्कृति, धर्म तथा पावन पूजात्मक सस्कारो की नकाब मे छिपाकर कुछ और भले ही बतलाया जाय परन्तु प्रत्यक्ष जीवन से उसकी सर्वथा उपेक्षा करना कदापि सम्भव नही है। 'बच्चन' ने छायावादी रहस्यवादी काव्यधारा की प्रतिक्रिया मे भौतिक सौंदर्याकिषण और जैविक सुखभोग की लालसा को अपने काव्य की मूल अनुभूति म पचाकर उसे सरल भाषा एव यथार्थ अर्थों मे प्रकट किया। 'बच्चन' की कविता ने अपने युग की छायावादी और रहस्यवादी काव्यधारा मे बहने वाले काव्य रसिको के हृदय को सहसा रोककर और उन्हें जीवन सरोवर के निकट लाकर सगीत की वीणा पर सुमधुर गीत गाने को विवश किया। रहस्यवाद और छायावाद के सूक्ष्म कह जाने वाले काव्य धरातल पर जो कवि उस समय अपने निजी *प्रणय-मिलन की आँखमिचौनी खेल रहे थे 'बच्चन' ने उनकी ओर से जनरुचि का ध्यान* खीच कर सीधे, सच्चे और सरल काव्य की 'सवेदना' पर आकर्षित किया। यहाँ जैसे सन्त कवि का युग प्रतिनिधित्व शृगारिक कवि ने ले लिया। नि सन्देह ऐसा करने मे बच्चन ने रूढि मर्यादाओ को तोडा, भारतीय सस्कृति को झकझोरा एव नग्न यथार्थ का चित्रण भी किया। परन्तु यह सब तत्कालीन युगाकाँक्षा की दृष्टि से एकदम अवाँछनीय भी नहीं कहा जा सकता। क्योकि बच्चन ने हिन्दी गीत-काव्य मे इस ढग से एक नई क्राँति उपस्थित की—वह क्राँति थी परोक्ष से प्रत्यक्ष की क्राँति, रहस्य से स्पष्ट की क्राँति, अज्ञात करुणा से ज्ञात सवेदना की क्राँति एव अस्पष्ट गीतो से स्पष्ट गीतो की क्राँति। कुछ ही समय मे इस क्राँति का जनव्यापी प्रभाव पडे बिना न रह सका। फलस्वरूप जहाँ एक ओर रहस्यवादी और छायावादी कवियो की अगुली पर गिनी जाने वाली सख्या रह गई वहाँ जन जीवन की आशा निराशा, रूप सौंदर्य, वासना उन्माद सम्बन्धी गीतकारो की फसल-सी उग आई। आधुनिक युग के अधिकाश गीतिकारो की भावनाओ एव अभिव्यजनाओ म बच्चन की स्वर-साधना, शब्द साधना, अनुभूति सवेदना एव अभिव्यक्ति कौशल का प्रभाव है—यह बात निर्विवाद कही जा सकती है। सक्षेप मे बच्चन की काव्य-कीर्ति कठमुल्ले आलोचको की निगाहो मे अवश्य खटकती रही परन्तु उनकी जीवनमय काव्य-धारा का प्रवाह अपनी अनहद गति से बराबर बना रहा। एक लम्बी काव्य अवधि पारकर भी 'बच्चन' के गीत जीवन के यथार्थ, दुख-सुख मिश्रित सवेदना के स्वरो से विशृखल नहीं हुए, यह असाधारण साहस, प्रतिभा और साधना

की बात कही जाएगी। 'बच्चन' ने कभी जग की कटु उपेक्षा और प्रवाद की चिन्ता भी नहीं की। कवि के ही शब्दों में—

'जग दे मुझ पर फैसला उसे जैसा भाये
लेकिन मैं तो बेरोक सफर में जीवन के
इस एक और पहलू से होकर निकल चला।'

× × ×

बच्चन के कवि ने मुख्यत काल क्रम की दो ऐतिहासिक स्थितियों को लिया है। वहीं कि उसने उनसे दांत किटकिटा कर संघर्ष किया है। और यह भी कि वही कुछ क्षण कण ऐसे भी भोगे हैं जिन पर उसका एकान्त अधिकार रहा है। जहाँ वह अभिसार प्यार के राग रस-रति-रंग में डूबा-उतराया है। पहली स्थिति तो वह थी जब वह एक नवयुवक था। और चेतना की आँखें खुलते ही उसने देखा था कि जग जैसा वह चाहता है वैसा तो नहीं है। वहाँ वर्जनाएँ हैं, पाखण्ड हैं, पारलौकिक पचड़े हैं, आडम्बर है, मुक्ति पाने के प्रति यन्त्रणा और यातना है, झूठे आदर्श हैं, निरर्थक आन्दोलन हैं और मन्दिर-मस्जिद की दीवारें हैं। शासन की गुलामी, मध्यकाल की धार्मिक-सामाजिक विषमताएँ और राजनैतिक-साम्प्रदायिक कशमकश, जीवन की निराशा, साहित्य में छायावादी (रूमानी) सम्मोहन और हाड़मास के अनुभूति-संकुल पिंड की एकदम उपेक्षा है। स्वतन्त्रता से पूर्व बच्चन काव्य में कालक्रम की मुख्यत इन्हीं ऐतिहासिक स्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया जन्य प्रतिध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। पर अपनी शक्ति-सीमा के कारण निश्चय ही यह कवि अपने सृजन का कोई महान पक्ष उद्घाटित नहीं कर सका। किन्तु अनिवार्यत इतिहास के निर्माण में अथवा क्रान्तियों के कारनामों में केवल 'महान' का ही तो महत्व नहीं होता। उनका भी होता है जो ईमानदारी से अपनी व्यक्ति-शक्ति को समकालीनता के लिये लगातार सदा जनता जनार्दन के साथ जीते हैं। जनता उनसे किसी-न किसी रूप में मनोबल या उत्साह पाती है। फिर यही लोग तो एक दिन कार्य पूरा होने पर 'महान' की कोटि में माने जाते हैं। क्या ईसा, गांधी, तुलसी और ग़ालिब ऐसे नहीं थे? काल की कसौटी अद्भुत होती है? खैर!

स्वतन्त्रता के उपरान्त बच्चन-काव्य में इतिहास की दूसरी स्थिति व्यक्त हुई है। इसकी अभिव्यञ्जना कवि ने तब की है जब वह प्रौढ़ है, वृद्ध है। राजनीति, समाज एवं विश्व-जीवनगत मूल्यों-सदर्भों में एक विराट् परिवर्तन-सा आ चला है। विज्ञान ने कला बोध, युग बोध और आत्म-बोध में आणविक क्रांति फूँक दी है। विज्ञान ने ज्ञानेन्द्रियों के प्रतिबिम्बों प्रतिमानों को भुठलाकर नयों की खोज सामने रख दी है, सौंदर्यात्मक चेतना के अधिकाधिक मूल्य बदलते जा रहे हैं .... चाँद का आकर्षण और से और हो गया है। भौतिक विज्ञान में अभिभूत इस ऐतिहासिक स्थिति और परिप्रेक्ष्य में बच्चन का कवि जागरूक होकर जी रहा है जिसकी अभिव्यक्ति उसके इधर काव्य में हुई है। पर हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि बच्चन का कवि इन ऐतिहासिक परिस्थितियों, संदर्भों और परिप्रेक्ष्यों का दास बनकर जिया है या जी रहा है। वह सदा सजग

रहा है। स्थल-स्थल पर उसने व्यक्ति की आत्मरक्षा के लिये युगीन ऐतिहासिक विषम सदर्भों, परिवेशो एव परिस्थितियो पर वाणी के भीषण प्रहार किये हैं और जीव की इहलोक-उन्मुख पिपासा की हिमायत ली है। कलाकार को उसने सदा बड़ा माना है। कला प्रतिभा को उसने समस्त सामयिक, राजनीतिक एव ऐतिहासिक मूल्यो से ऊँचा ठहराया है। और यही वह अपने युग के साथ होकर भी उससे आगे जीता जा रहा है जिसका सम्यक और स्वस्थ विश्लेषण तथा मूल्यांकन-महत्वांकन अभी होना है। बच्चन की सारी रचनाओ मे उनके व्यक्तित्व की छाप है। अत उनकी 'जग दे मुझ पर फैसला उसे जैसा भाए' गर्वोक्ति अर्थपूर्ण है।

× × ×

जो लोग बच्चन को हालावादी कवि कहने-समझने का भ्रम अब भी लादे हुए हैं उन्हे स्मरण रखना चाहिए कि हालावादी काव्य का प्रचार करना बच्चन का लक्ष्य कभी नही रहा। इस विषय मे मैं 'मधुकाव्य' शीर्षक लेख मे यथासभव कहूँगा।

प्रारम्भिक रचनाएँ (भाग १-२)

कवि की आरम्भिक रचनाओ से ही प्रकृति-सौंदर्य एव भौतिक सुख दुख के उद्गारो मे एक सूक्ष्म सामजस्य स्थापित हुआ प्रतीत होता है। 'गीतविहग' (भाग दो) कविता का प्रस्तुत पद्यांश इसी ओर इगित कर रहा है कि—

हृदय के आंगण मे सुविशाल भावना तरु की फैली डाल,
उसी के प्रणय नीड मे पाल रहा मैं सुविहग बाल!
डाल ही मैं जीवन का सार मूर्ख लेते दल का आधार,
जगत के कितने सजग विचार खा गया फल का काल

यहाँ महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्रारम्भिक रचनाओ से ही कवि के स्वरो मे छायावादी कल्पनिकता दम तोडती जाती है और जीवन का स्वर प्रबल होता जाता है। बदली वाणी की भगिमा इन अशो मे देखें—

जीवन का तो चिन्ह यही है सोकर फिर जग जाना
क्या अनंत निद्रा में सोना नहीं मृत्यु का आना

× × ×

किसको जीवन अच्छा लगता किसको प्रिय न मरण होता
यदि न जगत में सबका कोई अपना आकर्षण होता

बच्चन की प्रारम्भिक रचनाओ का मूल स्वर प्रकृत है। वह प्रकृत काव्य (रीयलिस्टिक पोयट्री) है। यद्यपि यहाँ अनेक कविताए ऐसी भी है जिन्हे आदर्शात्मक अथवा कलात्मक काव्य (आइडियेलिस्टिक-आर्टिस्टिक पोयट्री) के खाने मे रखा जा सकता

है। लेकिन इन कविताओं का मूल्य घटता हुआ है।

'प्रारम्भिक रचनाएँ' (प्रथम भाग) की कविताओं को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि प्रेम, प्रकृति, यौवन, जीवन और जगत विषयक अभिव्यक्ति करने के लिये लालायित है—

प्यार किसी को करना लेकिन कहकर उसे बताना क्या
देकर हृदय हृदय पाने की आशा व्यर्थ लगाना क्या
(आदर्श प्रेम)

× × ×

याद नहीं है मुझे तुझे देखा पहले या प्यार किया
(मधुर स्मृति)

बच्चन के काव्य-विकास के परिप्रेक्ष्य में यह विशेष तथ्य हाथ आता है कि जग-जीवन के हास-रुदन या सुख-दुख के प्रति इस कवि का दृष्टिकोण अत्यधिक सहज भाव-स्वर में व्यक्त हुआ है—यथा,

मैं हँसता पर मेरे हँसने में क्या आश्चर्य होता
अगर न उस हँसने से पहले फूट-फूट कर मैं रोता
('यदि' कविता)

विषय और शिल्प की सूक्ष्मता को जाँचने-परखने की दृष्टि से ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक रचनाओं में छायावादी संस्कार की रूमानियत के रंग हल्के पड़ते जाते हैं, ढहते जाते हैं। उत्तरार्द्ध का यह कवि कविता सम्बन्ध अपना सजग दृष्टिकोण व्यक्त करता है—

मुझ से अलग न मेरा गान, वह सौरभ में पुष्प समान
टूट न पाए इस सगाई का कभी सुकोमल तार

और इस आदर्श को ध्यान में रखकर ही वह प्रकृति, मानवीय प्रेम, नियति, तथा जग-जीवन की सीधी, सरल अभिव्यंजना का पथ पकड़ लेता है। जिस काव्य-भाषा का यहाँ प्रयोग किया गया है वह जैसे कवि की आगे विकसित काव्य-भाषा की 'सीढ़-नर्सरी' है।

प्रारम्भिक रचनाएँ (दूसरा भाग) की अधिकांश कविताएँ बच्चन के भावी काव्य-विकास (भाव-शिल्प की दृष्टि से) की सभी दिशाओं को दर्शाने वाली दूरबीनें हैं।

इस तरह की प्रथम कविता को पढ़ते ही गाँधी जी के प्रति प्रेम व्यक्त होता है। यह प्रेम आगे 'सूत की माला' और 'खादी के फूल' में संग्रहीत कविताओं में प्रतिपादित हुआ लगता है। 'रस-नग' शीर्षक कविता को पढ़कर प्रसाद जी के 'आँसू' की याद आ जाती है। 'गीत-विहग' और 'गान-ध्वान' कविताओं में पंत जी की भावशैली का स्मरण हो आता है। 'मातृ-मन्दिर' और 'पाँचजन्य' आदि कविताओं में कवि का राष्ट्र-प्रेम शिशु-स्वरों में किलकारता है जो गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना का ही तुतलाता-सा स्वर प्रतीत होता है। आगे यही समर्थ होकर 'धार के इधर-उधर' तथा अन्य संग्रहों

की कुछ कविताओं में ध्वनित हुआ है। उसकी प्रौढ व परिपक्व ध्वनि 'जब नारी के बालो को खींचा जाता है' 'चेतावनी' शीर्षक कविता में सुनाई पडती है। लेकिन बच्चन का यह स्वर जन-मन में अधिक नही गूँजा। 'दिनकर' का स्वर अधिक बुलंद रहा। यों बच्चन के भाव शिल्प विकास की दृष्टि से प्रारम्भिक रचनाएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं।

× × ×

आगे मधुशाला और मधुबाला कृतियाँ वस्तुत हालावादी काव्य की उपज कही जा सकती है, यद्यपि इनमे भी जीवन के भोगवादी पक्ष की चरम आसक्ति का भाव ही प्रधान है। खैयाम की क्षणिक आसक्ति मे घोर विरक्ति वाली व्यंजना स्फुट रूप मे ही इतस्तत हुई है।—यथा,

कितनी आई और गई पी इस मदिरालय मे हाला
अब तक टूट चुकी है कितने मादक प्यालों की माला
कितने साकी अपना-अपना काम खतम कर दूर गए
कितने पीने वाले आए किन्तु वही है मधुशाला

× × ×

जितनी दिल की गहराई हो उतना गहरा है प्याला
जितनी मन की मादकता हो उतनी मादक है हाला
जितना ही जो रसिक उसे है उतनी रसमय मधुशाला

इस विषय मे मैंने अपने 'मंजूषा' वाले लेख मे आज से कोई १२ वर्ष पहले बच्चन के पाठको का ध्यान आकर्षित किया था।

× × ×

• ······ और मधुकलश तथा हलाहल मे हालावाद प्रधान नहा है। वहाँ तो कवि का (मूलत व्यक्ति का) सामाजिक विषमताओं के परिवेश मे आत्म सघर्ष, उसके अस्तित्व का अटूटत्व और भौतिक सुखवाद का सबल स्वर ही मूलत मुखरित हुआ है। उदाहरण के लिये—

तीर पर कैसे रुकूँ मैं आज लहरो मे निमन्त्रण ··
हो युवक डूबे भले ही है कभी डूबा न यौवन

या— (मधुकलश)

क्या किया मैंने नही जो कर चुका ससार अब तक
वृद्ध जग को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी

या— (मधुकलश)

झेलने को इस बडे तूफान के झोंके झकोरे
मानवी सम्पूर्ण साहस वक्ष बीच सजो रहा हूँ

या— (मधुकलश)

पहुँच तेरे अधरो के पास हलाहल काँप रहा है देख
मृत्यु के मुख के ऊपर दौड गई है सहसा भय की रेख

> मरण या भय के अन्दर व्याप्त हुआ निर्भय तो विष निरतत्व
> स्वय ही जाने को है सिद्ध हलाहल से तेरा अमरत्व······

आदि उद्गार इस सत्य को पुष्ट करते है।

'मधुकलश 'और' हलाहल' सम्बन्धी लेख मे आगे इसकी स्वतन्त्र समीक्षा की गई है। अत यहाँ अधिक कहना असगत होगा।

दूसरा मोड़

मधुशाला और मधुबाला के गीतो के सृजन से बच्चन की मानसिक-यात्रा का एक दूसरा मोड़ प्रारम्भ होता है। मधु की एक नई मस्तीयुक्त भाव-भूमि पर पाँव रखकर बच्चन ने अपने गीतो मे भावना, कल्पना, प्रकृति चित्रण तथा मानवीय सुख-दुख सवेदित रागात्मक अनुभूतियो को व्यक्त किया।—

> *यह चाद उदित होकर नभ मे कुछ ताप मिटाता जीवन का*
> लहरा लहरा यह शाखाएँ कुछ शोक भुला देती मन का
> कल मुर्झाने वाली कलियाँ हस कर कहती है मग्न रहो
> बुलबुल तरु की फुनगी पर से सन्देश सुनाती यौवन का
> तुम देकर मदिरा के प्याले मेरा मन बहला देती हो
> उस पार मुझे बहलाने का उपचार न जाने क्या होगा
> इस पार प्रिये मधु है, तुम हो उस पार न जाने क्या होगा

यही से बच्चन के गीतो का व्यष्टिपरक स्वर जन जन के मन को उद्वेलित करता है—

Cursed be the social wants that sin against the strength of youth Cursed be the social lies that wraper from living truth.

अर्थात्—धिक्कार है समाज की उस सकुचितता को जो हमारे यौवन को मिटाने का पाप करती है। धिक्कार है समाज के उस मिथ्यात्व को जो हमे जीवित सत्य से अलग करता है।

बच्चन ने अपने गीतो मे यौवन के उन्माद एव उसकी आशा-निराशा को इसी यथार्थ स्थिति के अनुसार व्यक्त किया है। उनके काव्य का "जीवित सत्य" उनके हर गीत मे बोली पाता है। अन यहाँ समष्टि से व्यष्टि का घोर सघर्ष प्रकट होता है और काव्य की लोक-कल्याण भावना का उसमे किंचित आभास नही होता। परन्तु प्रत्येक देश के काव्य-साहित्य मे, और इतना ही नही प्रत्येक कवि की अधिकाश रचनाओ मे यह सघर्ष प्रधानता से प्रकट होता है। मेरा विचार है कि

गीति-काव्य व्यष्टि के अन्तर-बाह्य सवर्षों के कारण मुखर हुआ एक हार्दिक विस्फोट ही है। जब कवि को बाहरी ससार मे अपनी वासना की सतुष्टि नही हो पाती तो सभवत उसके सवेदनशील और स्वाभिमानी हृदय मे उसे पाने की एक होड की ज्वाला-सी जाग जाती । उस स्थिति मे वह अपने दृष्य अभाव के विभिन्न मनोभावो, कल्पनाओ और अभिव्यक्तियो मे साकार करने की अनवरत चेष्टा म जुट जाता है। इस 'जुट जाने' मे उसकी सम्पूर्ण गीत-साधना की सफलता और हार्दिकता की सृष्टि बनती है। साधारण व्यक्ति और एक कवि मे यही सूक्ष्म अन्तर है कि साधारण व्यक्ति अपनी इच्छा की सन्तुष्टि या असन्तुष्टि का भाव अन्तर्भूत नही कर सकता। इसलिए उसका राग और विराग व्यष्टिगत है, साधारणीकृत नही। और एक कवि वैसा करने मे पूर्णत सफल हो जाता है। अत एक दृष्य सौन्दर्य से अधिक रोमाचकारी और एक दीन भिखारी से अधिक करुणामयी सजीव अवस्था का चित्रण हम कवि की कृति मे सहज ही पा लेने है और उससे अपने हृदय का रागात्मक सम्बन्ध जुडा हुआ पाते है। अत कवि की व्यष्टिमयी अनुभूतियो मे भी एक अन्तरव्यापकता होती है जो अन्य हृदयो मे अपनापन लेकर विचरती है। यही भेद है कि 'बच्चन' की रचनाओ मे ऐसी बात हम आधुनिक सभी कवियो से अधिक मात्रा मे पाते हैं। देखिए—

'सृष्टि के आरम्भ मे मैंने उषा के गाल चूमे,
तरुण रवि के मध्य वाले दीप्त भाल विशाल चूमे,
प्रथम सन्ध्या के अरुण दृग चूमकर मैंने सुनाए,
तारिका कलि से सुसज्जित नव निशा के बाल चूमे।
वायु के रसमय अधर पहले सके छू होठ मेरे,
मृत्तिका की पुतलियों से आज क्या अभिसार मेरा।
कह रहा जग वासनामय तो हो रहा उद्गार मेरा।'

(मधुकलश)

स्वभावत कवि को ऐसी दशा मे बाह्य मिथ्या आदर्श और जर्जर मर्यादायें भी सहन नही हो पाती—

कल छिडी होगी खतम कल प्रेम की मेरी कहानी,
कौन हूँ मैं जो रहेगी विश्व में मेरी निशानी,
क्या किया मैंने नहीं जो कर चुका संसार अबतक
वृद्ध जग को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी ?
मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधू समझता
शत्रु मेरा बन गया है छल रहित व्यवहार मेरा।

ऐसी उद्भावनाओ से यह साफ प्रकट होता है कि बच्चन ने सीधे-सादे ढग से अपने गीतो को दिशा पकडी हैं जिनमे गूढ प्रतीक व्यजना, रहस्यार्पण और असीम रूप-सौंदर्य के पान की पिपासा न होकर इसी ससार की आशा-निराशा, प्रेम घृणा और

प्यास-तृप्ति की अनूठी 'अभिधामूलक अभिव्यंजना' है ।

कविवर पंत ने बच्चन को अपनी 'मधुज्वाल' कृति समर्पित करते हुए लिखा है—

"घुमड़ रहा था ऊपर गरज जगत संघर्षण
उमड़ रहा था नीचे जीवन वारिधि क्रन्दन
अमृत हृदय में, गरल कंठ में, मधु अधरों में ले
आए तुम वीणाधर कर में जन मन मादन
मधुर तिक्त जीवन का मधुकर पान निरन्तर
मथ डाला हर्षोद्वेगों से मानव अंतर ।
तुमने भावों लहरियों पर जादू के स्वर से
स्वर्गिक स्वप्नों की रहस्य ज्वाला सुलगाकर ?"

पंत जी की इन पंक्तियों में बच्चन के सुख-नीडों में गाते गीतों के विहगों का कलरव, मधु मोहक स्वर-लहरी, यौवन का इन्द्रधनुषी आकर्षण, सुख दुख की तीखी संवेदना, क्रूर जग के निर्मम घात प्रतिघात तथा कवि के अमृत-गरलमय जीवन तथा व्यक्तित्व का सूक्ष्म परिचय मिलता है ।

और अब तक, जब कि कवि ने अनेक भाव बोधमई नई कृतियों की रचना कर डाली है उसे हालावादी कवि कहना समझना उसके काव्य या आत्मदान के प्रति हठधर्मी की बात कही जायगी । बच्चन ने काव्य के क्षेत्र में जिन नवीन भंगिमाओं की सृष्टि की है अपने ढंग की वह निराली है। इस पर भी विशेषता यह है कि जहाँ निराला और पंत जैसे श्रेष्ठ कवि प्रायः आध्यात्म या प्रकृति के भावक्षेत्र से युग-प्रगति का मोड़ लेते समय अपने काव्य-लक्ष्य से कुछ दूर से हो गये है (इस सम्बन्ध में पंत जी की 'ग्राम्या' और निराला जी की 'कुकुरमुत्ता' कृति विशेषतः पठनीय है) वहाँ बच्चन ने अपने व्यक्तित्व को कभी नहीं भुलाया । हाँ, वह मोड़ों को प्रायः भूलते गये (जो बीत गई सो बात गई !) जिसके कारण उनके काव्य में मनोभावों को प्रायः एक ही तरह बार-बार दोहराने की भूल हुई कही जा सकती है । इस सम्बन्ध में एक ओर निशा निमंत्रण, एकांत संगीत और आकुल अंतर के गीत लिए जा सकते हैं दूसरी ओर मिलन यामिनी और प्रणय पत्रिका के गीत लिये जा सकते हैं । और सतरंगिनी इनकी बीच की कड़ी है । इन कृतियों के बहुत से गीतों में भाव-साम्य है । परन्तु यह निश्चय है कि बच्चन कभी हालावादी कवि नहीं रहे । उनका मूल स्वर हालावादी न होकर स्वच्छंदतावादी है जो व्यष्टि के सुख दुख से प्रेरित है ।

बच्चन जी के सम्पूर्ण काव्य को बहुत संतुलित दृष्टि से देखकर मेरी धारणा है कि उनका काव्य व्यापक दृष्टि से व्यक्ति-जीवन के आयु-कालों में बाँटा जा सकता है—विशेषतः यौवन काल और प्रौढ़ काल में । बच्चन जी का कवि आयु के अनुसार अभिव्यक्त हुआ है । उनकी प्रखर रचना जैसे स्वयं बोलती है कि उसका कवि कितना बड़ा है, कि उसकी सहज मन स्थिति कैसी है । १४ नवम्बर सन् ६५ के धर्मयुग में मैंने जब बच्चन जी की 'क्यों जीता हूँ' कविता पढ़ी तो मुझे

अपनी स्थापना पर सन्तोष होना स्वाभाविक है—

आधे से ज्यादा जीवन
जी चुकने पर मैं सोच रहा हूँ—
क्यों जीता हूँ ?
लेकिन एक सवाल अहं
इससे भी ज्यादा,
क्यों मैं ऐसा सोच रहा हूँ ?
सम्भवतः इसलिये
कि जीवन कर्म नहीं है अब
चिन्तन है,
काव्य नहीं है अब
दर्शन है।
जबकि परीक्षाएँ देनी थीं
विजय प्राप्त करनी थी
अजया के मन तन पर
सुन्दरता की ओर ललकना
और ढलकना
स्वाभाविक था,
जबकि शत्रु की चुनौतियां
बढ़कर लेनी थीं,
जबकि हृदय के बाढ़-बवंडर
औ' दिमाग के बड़वानल को
शब्द-बद्ध करना था,
छंदों मे गाना था,
तब तो मैंने कभी न सोचा
क्यों जीता हूँ ?
क्यों पागल-सा
जीवन का कटु-मधु पीता हूँ ?
आज दब गया है बड़वानल,
और बवण्डर शांत हो गया,
बाढ़ हट गयी,
उम्र घट गयी,
सपने-सा लगता बीता है
आज बड़ा रीता रीता है
कल शायद इससे ज्यादा हो,

अब तख्ते के तले
उमर खैयाम नहीं है
जन-गीता है।

क्या ये कविता एक कम साठ वर्ष की आयु के कवि की नहीं लगती ? अतः कुल मिलाकर बच्चन के कवि द्वारा छोटे मुँह से बड़े बोल नहीं निकले और न बड़े मुँह से छोटे बोल ही निकले हैं।

× × ×

यह धारणा सच कही जा सकती है कि बच्चन के काव्य में कुछ विदेशी कवियों की प्रतिध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। उदाहरण के लिये मिलन-यामिनी के एक गीत में आया है—

'आहें उठती, आँसू झड़ते,
सपने पीले पड़ते लेकिन
जीवन में पतझर आने से
जीवन का अंत नहीं होता ?

और तुलना के लिये महाकवि गेटे का यह कथन पठनीय है—

"सिद्धान्त पीले पड़ जाते हैं पर जीवन वृक्ष सदा हरा-भरा बना रहता है"

इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

पर काव्य के क्षेत्र में प्रभाव बुरा नहीं कहा जा सकता। नकल घातक है। बच्चन ने स्वयं यट्स कवि के प्रभाव की चर्चा की है। 'आरती और अंगारे' कृति की आरतीपरक कविताओं में इस प्रभाव वाले तथ्य की व्यापक पुष्टि मिलती है। पर इसका आशय यह नहीं कि किसी कलाकार में यह प्रभाव वाली बात मिलना उसके काव्य की उपेक्षा या मूल्यहीनता का प्रमाण है। यों तो प्रत्येक साहित्यकार अपने पूर्ववर्ती अथवा समकालीन विशिष्ट वरिष्ठ साहित्यकार से अपनी मनोरुचि के अनुसार प्रभावित होता ही है। वाल्मीकि किससे हुए हैं ? महाकवि तुलसी भी अपने पूर्ववर्ती 'निगमागम सम्मत' वाले प्रभाव से प्रभावित थे। प्रभाव बड़े कवियों की रचनाओं में कहीं न कहीं कुछ प्रतिध्वनित हो ही जाता है। पर कला का मूल्य है मौलिकता में, चुनाव में, अभिव्यक्ति की नवीनता में। 'बच्चन' के गीतों में अनुभूति उनकी सर्वथा अपनी है, शुद्ध है। इंग्लैंड प्रवासकाल में लिखे गये एक गीत की यह पंक्तियां देखिये—

"बौरे आमों पर बौराये भौंर न आये
कैसे समझूँ मधुऋतु आई ! (प्रणयपत्रिका)

तथा ऐसे ही अन्य कई गीतों में अपने देश (भारत) का प्राकृतिक प्रेम तथा अनुराग का भाव मौलिक व रुचिकर ढंग से अभिव्यंजित हुआ है।

× × ×

कवि की पूर्व रचित 'सूत की माला', 'खादी के फूल' तथा 'बंगाल का काल' नामक तीनों कृतियों में कहीं-कहीं सच्ची क्रान्तिकारी और मानवतावादी विचारधारा का प्रकाशन हुआ है—

नया पुराने का। असल मे बच्चन के काव्य का उत्तरोत्तर विकास हुआ है जिसे हम युग-जीवन और व्यक्ति वय के क्रम से काटकर नही समझ सकते। इस दृष्टि से बच्चन की काव्य साधना का मानचित्र इतना विशाल है कि उसमे शिल्प-क्षण-शोध-बोध युग-यथार्थ एव व्यक्तिनिष्ठता देखना-समझना बुद्धि का निष्फल प्रयास सिद्ध होगा। 'नयी कविता' की प्रज्ञा और उसके प्रतिमानो का तो उस परम्परा से व्यापक विरोध है जो व्यक्ति-यश, व्यक्ति-समाज और जग-जीवन को चिरजीवी बनाए रखती है और जिसे हम रुढि या पुरातनता का निर्मोक कह कर कभी झुठला नही सकते क्योकि उससे मानवीय इतिहास के ज्वलत सत्यो का अटूट नाता है तथा राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो तथा सघर्षो की चेतना आज भी इस परम्परा के प्राणो मे चिंगारी सी सुलगी हुई है। अत बच्चन के मुक्तछदी काव्य को आलोचकीय पूर्वाग्रह अथवा वक्तव्या अथवा दुराग्रहो की आड लेकर घिसे पिटे या घटे हुए मूल्यो की कविता कहना-समझना या तो अन्याय होगा या अनाडीपन। वैसे इस युग मे जो हो जाय सो थोडा! लेकिन समर्थ सृजन पर इसका कोई प्रभाव नही पडा करता।

× × ×

कवि की 'सूत की माला' तथा खादी के फूल' मे सग्रहीत गाँधी जी के बारे मे श्रद्धाजलिपरक कविताओ म (कुछो को छोडकर) मुझे अधिकाश कविताए इतनी दुर्बल लगती हैं कि *बच्चन की मानने मे भी हिचक होती है। क्योकि* इनमे एकदम तुकबन्दी है, बिखराव है और शब्द 'ऐरे-गैरे नत्थू खैरे'-से नजर आते हैं। इन दोनो कृतियो के गीतो को पढते हुए सबसे अधिक अखरने वाली बात है तुकबन्दियो के लिए अति अनगढ अनात्मक शब्दो का प्रयोग। ऐसा लगता है कि 'गाँधी जी की निर्मम हत्या पर' कवि कविताए लिखकर जल्दी से जल्दी प्रकाशित कराने की फिक्र मे है। एक महापुरुष की मृत्यु पर कवि की महात्वाकांक्षा उसके सृजन पर किस कदर हावी हो जाती है—आलोच्य कृतिया को पढकर कुछ ऐसा ही लगता है। वैसे इन गीतो मे अभिव्यजना का सौन्दर्य कहीं-कहीं व्यग और उसके वैचित्र्य के द्वारा उभरा है। गाधी जी के महाप्राणतत्व पर आस्था की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है—

अपनी गौरव से अकित हो नभ के लेखे,
क्या लिए देवताओं ने ही यश के ठेके,
अवतार स्वर्ग का ही पृथ्वी ने जाना है,
पृथ्वी का अभ्युत्थान स्वर्ग भी तो देखे!

किन्तु कुल मिलाकर समर्थ कवियो मे बच्चन के गाधी जी की हत्या पर लिखे गीत प्रथम कोटि के नहीं हैं।

× × ×

वैसे तो बच्चन के सभी गीतो मे सहजता और सवेदना है, पर श्रेष्ठतम गीत उनकी मधुबाला, मधुकलश, निशा निमत्रण, एकान्त सगीत, सतरगिनी, मिलन-यामिनी और प्रणय-पत्रिका कृतियों मे सग्रहीत है। सश्लिष्टत इन कृतियो के गीतों की इन

विशेषताओं को ध्यान में रख लेना आवश्यक है—

१ प्राकृतिक वातावरण का चित्रण—बच्चन के गीतों में अनुभूति प्रधान है, कल्पना कम। किन्तु अनुभूति प्रकृति के सहज दृश्यों से युक्त वातावरण में विचरकर अधिक मनोरम बन गयी है। यद्यपि अलंकरण विधान की दृष्टि से बच्चन का प्रकृति चित्रण किसी विशिष्टता का आभास नहीं देता किन्तु पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति ने बच्चन की मांसल अनुभूति को अभिव्यक्ति के नूतन आयाम प्रदान किये हैं।

२ अंतर्जगत का यथार्थ चित्रण—व्यक्ति के मानसिक उल्लास विषाद की अकृत्रिम अभिव्यंजना बच्चन के गीतों की अपनी विशेषता है। अन्त वहाँ कुंठा और विकृतियों को व्यक्त करने का ऐसा भावावेग नहीं है, जैसा विशेषत अचल के गीतों में देखने को मिलता है तो यह ठीक है कि शृंगारवर्णन में अचल के गीत अधिक मार्मिक एव तरल हैं।

३ भाषा शैली—बच्चन के पास विशाल शब्दसमूह है। अपने गीतों में उन्होंने कई जनपदीय बोलियों के शब्दों का समाहार किया है। उर्दू-हिन्दी मिश्रित पदावली का सफल प्रयोग करने वाले मात्र वही हिन्दी के समर्थ कवि हैं। इनस्तत उन्होंने अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी किया है। कविता में मुहावरों का जितना सफल प्रयोग बच्चन ने किया है सम्भवत खड़ी बोली के किसी दूसरे कवि ने नहीं किया। इसी कारण उनके अनलङ्कृत गीत भी अलङ्कृत गीतों की अपेक्षा अधिक मर्मस्पर्शी लगते हैं।

और इन विशेषताओं की पुष्टि बच्चन जी के इस कथन से होती है—

'मेरी समझ में कविता ऐसी होनी चाहिए जो न तो अपने गुण-शक्ति से पाठक को दबा दे और न ऐसा ही हो कि उसे कवि की प्रशसा में उछाल दे। जहाँ वह ऐसी है वहाँ उसमें न दैवी विदग्धता है और न दानवी उच्छृखलता, उसमें वहाँ मानवी सुख-दुख जनित भावमयता भर है। कविता सचमुच पाठक और कवि के हृदय को जोड़ने वाला साधन है—या एक मानव हृदय को दूसरे मानव हृदय के साथ। जहा वह इससे कम या ज्यादा है वहाँ वह अपनी सीमा से बाहर है और उतनी ही कम कविता है।

('सोपान' सकलन)

और इस परिप्रेक्ष्य में यदि बच्चन की सम्पूर्ण गीत कृतियों को पढा जाय तो उनमें शायद ही कहीं कुछ असगत अथवा 'धार के इधर-उधर' होगा। 'आकुल अन्तर' की इन दो पंक्तियों में कवि ने गीत-सृजन का जैसे रहस्य खोल दिया है—

× × ×

भावनाओं का मधुर आधार सासों से विनिर्मित
गीत कवि उर का नहीं उपहार उतनी विरचना है।

निशा निमंत्रण

खड़ी बोली के गीत संग्रहों में 'निशा निमंत्रण' गीत संग्रह का अपना एक अलग अस्तित्व और महत्व है। अस्तित्व है इस बात में कि वह साँझ से लेकर विरह-विषाद भरी एवं भयंकर काली रात का सवेरे होने तक का १०० गीतों वाला महागीत है। अपनी प्रथम पत्नी श्यामा के मरणोपरान्त कवि ने इस कृति के गीतों की रचना की। निशा निमंत्रण के पीछे नियति की निर्ममता का भयंकर प्रहार और उसके कारण उठा मर्मभेदी चीत्कार ध्वनित होता है। पत्नी के प्रति विरह-विषाद के यथार्थ को गीतों में रूपायित करने में कवि ने अनूठी सफलता पाई है। कई कारणों से मैं 'निशा निमंत्रण' के गीतों को रूमानी प्रणय गीतों की कोटि से पृथक मानता हूं। इन गीतों में न 'आँसू' का प्लेटोनिक प्रणय' है, न महादेवी के गीतों जैसा 'रहस्यमय प्रणय' है और न अंचल, नरेन्द्र शर्मा तथा के नेपाली गीतों का जैसा उद्दाम आवेग प्रवेगों से आलोडित तथा अतृप्ति की आग से झुलसा क्षयग्रस्त-सा प्रणयराग है। 'निशा निमंत्रण' के गीतों में पत्नी के प्रति विरह वेदना के मुखरण में कवि ने नियति, प्रकृति, जग-जीवन, मरण तथा इन सबके ऊपर मानवतावाद का राग मुखरित किया है जिससे इस कृति का रोमांस मात्र रोमांस न रहकर जीवन के जिए जाने वाले सन्दर्भों का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। निशा निमंत्रण मात्र विरह विषाद के गीतों का संग्रह ही नहीं है अपितु एक असहाय, अकेले, विधुर मानव की मानसिक प्रतिक्रिया के फल-स्वरूप उतरे शब्द चित्रों का सजीव 'एलबम है। निशा निमंत्रण के कई गीतों में शुद्ध मानवतावादी स्वर है। किन्तु विशेषता यह है कि यह स्वर कल्पना और आदर्श पोषित या प्रेरित न होकर यथार्थ पोषित या प्रेरित है। भाव एवं शिल्प के समन्वय एवं रूप-विधान की दृष्टि से मैं निशा निमंत्रण के अधिकांश गीतों को अमर मानता हूं। निशा-निमंत्रण के गीतों में स्थल-स्थल पर ऐसी मार्मिक उक्तियाँ आती हैं कि मन में तिरछी होकर गढ़ जाती हैं—यथा,

> अतुल प्यार का अतुल घृणा में मैंने परिवर्तन देखा है,
>
> × × ×
>
> है चिता की राख कर में मांगती सिन्दूर दुनिया,
>
> × × ×
>
> मरुथल में मृगजल के पीछे दौड़ मिटी सब तेरी आशा
>
> छोटे से जीवन से की है तूने बड़ी बड़ी प्रत्याशा
>
> × × ×
>
> चिता निकट भी पहुँच सकूं मैं अपने पैरों पैरों चलकर
>
> × × ×
>
> जैसे जग रहता आया है उसी तरह से रहना होगा।

प्रकारान्तर से कहूं तो निशा निमंत्रण एक ऐसे व्यक्ति या मानव की भावमय सृष्टि है जिसने अपने जीवन के सबसे सुन्दर और सुखद सपनों का शव न चाहते हुए भी चिता

पर रख कर फूंक दिया। दुर्भाग्य और नियति ने उसके साथ इतनी बड़ी साज़िश की। पर वह शिकायत किससे करे? और कवि की शिकायत भी क्या हो सकती है? उसके पास तो वेदना है। बस, पत्नी की मृत्यु ने कवि बच्चन की वेदना की ज्वाला को भड़का दिया। एक चिता बाहर जली, एक चिता अन्तर मे भी धधक उठी। कवि सिहरा, नयन डबडबाये और नेत्र उठाए तो उसने देखी अपनी निराश जिन्दगी की पहली, एक उदास शाम···· फिर देखा उस मे दिन भर के थके-हारे पखेरुओं का अपने सुखद् बसेरे की ओर उत्सुकता से लौटते जाना—

> दिन जल्दी जल्दी ढलता है,
> हो जाय न पथ मे रात कहीं, मंजिल भी तो है दूर नहीं,
> यह सोच थका दिन का पथी भी जल्दी जल्दी चलता है!
> बच्चे प्रत्याशा मे होंगे, नीडो से झांक रहे होंगे,
> यह ध्यान परो मे चिड़ियो के भरता कितनी चचलता है।

किन्तु बेचारा एकाकी, उदास कवि क्या करे—

> मुझसे मिलने को कौन विकल, मैं होऊं किसके हित चचल?
> यह प्रश्न शिथिल करता पद को, भरता उर मे विह्वलता है!

ढलती हुई सांझ मे थके पथी की मंजिल पर पहुँचने के लिए तेज चाल, नीडो से झांकते पक्षि शावको की स्मृति मे उडती चिड़ियो के परो मे अकथनीय चचलता परन्तु अन्त मे इस उत्सुकतामय नैसर्गिक वातावरण म कवि के मानस म किसी को भी अपना न जानकर उसके पैरो से उलझती हुई विकलता! उक्त गीत मे यह सब कुछ एक सजीव चित्र की भाति पाठक के मानसिक-पटल पर उतर आता है। इस प्रकार मानसिक स्थिति एव प्रकृति के वातावरण के सयोगात्मक अनेक मार्मिक मासल चित्रो की सृष्टि निशा-निमत्रण के सौ गीतो मे दृष्टव्य है। इस सन्दर्भ मे यह कहना सगत होगा कि बच्चन के श्रेष्ठ गीतो मे जहा भावो की अन्विति कहीं खडित नहीं होती वहीं उनके गीतो के अतरो की 'टेक' की पक्तियो का भाव-शिल्पगत सौंदर्य भी अनूठा होता है। जिस प्रकार रुबाई की अतिम पक्ति जान होती है उसी प्रकार बच्चन के गीतो के अतरो की अतिम पक्तियां होती हैं। बच्चन की ध्रुवपक्ति अनायास मन के किसी उद्गार को एक विशेष 'मूड' मे स्थापित करती है जिसमे सहज स्वरो की सगति और भावानुरूप लय-ताल की स्थापना होती है। आगे के तीन-चार अन्तरो मे उसी भाव को सबके लिये मर्मस्पर्शी या मर्मभेदी बनाने के निमित्त प्रकृति के सहज दृश्यो को सरल पदावली मे अकित किया जाता है। एक आत्म-तल्लीनता, एक आतरिक स्थिति का विवर्त (रूपान्तर) इन गीतो मे कहीं धु धला नहीं पडता। इन समस्त विशेषताओं का पूर्णत समाहार निशा-निमत्रण के गीतो मे हुआ है। आगे मिलन-यामिनी तथा प्रणय-पत्रिका के गीत भी भाव शिल्प की इस ऊँची उपलब्धि के शिखर कहे जा सकते हैं।

निसन्देह प्रकृति के नित्य अनुभूत होने वाले समोहक वातावरण मे कवि की अनुभूति तथा वेदना, सहवेदना एव सवेदना का जितना हृदयस्पर्शी चित्रण निशा निमत्रण के गीतो मे मिलता है उतना खड़ी बोली के किसी एक गीत सग्रह के गीतो मे देखने को

नहीं मिलता। उदाहरण के लिए एक विरही के दिल और नीरभरे बादल की स्थिति का साम्य और वैषम्य इन पंक्तियों में देखिये—

> आज मुझसे बोल, बादल !
> तम भरा तू, तम भरा मैं, गम भरा तू, गम भरा मैं,
> आज तू अपने हृदय से हृदय मेरा तोल, बादल !......
> आग तुझमें, आग मुझमें, राग तुझमें, राग मुझमें ।

पर, इस साम्यता के साथ ही एक विरही के दुखी दिल और बरसने वाले बादल में कितना दुखद् वैषम्य भी है—

> क्षार, जल मैं, तू मधुर जल,
> व्यर्थ मेरे अश्रु, तेरी बूँद है अनमोल, बादल !

तात्पर्य यह है कि निशा निमन्त्रण के प्रकृति चित्रण में छायावादी वायवी मानवीकरण न होकर मांसल मानवीकरण है। यह विशेषता बच्चन के गीतों को रूमानियत और यथार्थ की संधि पर गूंजने का पूर्ण अवकाश प्रदान करती है। अतएव इन गीतों को पढ़ते हुए पाठक अपने ही जीवन के सुख दुख की संधि से उठते हुए स्वरों का स्वाद लेने लगता है।

और हाँ, अतीत के मधुर हास-रास रूप-रंग रस की याद तथा वर्तमान की कटुतम *निर्मम स्थिति, नियति तथा इस जग की व्यक्ति के प्रति क्रूरता किस संवेदनशील हृदय* को नहीं सताती ? और तब कवि के जीवन की यथार्थ अभिव्यंजना की कड़वी हिचकी का स्वाद यों फूटा—

> स्वप्नों ही ने मुझको लूटा स्वप्नों का, हा, मोह न छूटा,

पर अतीत कब लौटता है ? जो मिट गया सो मिट गया। पर याद की हिचकियों का नाद न गूँजे, क्या यह जीवन के प्रति बेइमानी नहीं है ? जीवन के प्रति प्रतिबद्धता का अर्थ यह भी है कि कठिन अतीत की याद और उसके वर्तमान विषाद की अभिव्यक्ति करना और भविष्य की मंगलाशा की ध्वनि खोजना—

> बीते दिन कब आने वाले !
> *मेरी वाणी का मधुमय स्वर विश्व सुनेगा कान लगाकर,*
> दूर गए पर मेरे उर की धड़कन को सुनपानेवाले !
> विश्व करेगा मेरा आदर हाथ बढ़ाकर, शीश नवाकर,
> पर न खुलेंगे नेत्र प्रतीक्षा में जो रहते थे मतवाले !
> मुझमें है देवत्व जहाँ पर झुक जायेगा लोक वहाँ पर
> पर न मिलेंगे मेरी दुर्बलता को अब दुलराने वाले ?

और इस प्रकार की व्यक्तिवादी असन्तोष तथा निराशामयी ध्वनियाँ भी अधिकांश गीतों में गूँजती हैं—

> जहाँ प्यार बरसा था तुझपर, वहाँ दया की भिक्षा लेकर
> जीने की *लज्जा को कैसे सहता है, मानी मन तेरा !*
> मधुप, नहीं अब मधुवन तेरा !

सम्भवत यह सही है कि कवि की इस निराशा के प्रति समाज की उदासीनता रही हो। किन्तु सभी गीतो के लिए ऐसी बात सच नही कही जा सकती। सच तो यह है कि ऐसे गीतो मे कवि-व्यक्ति जीवन की दुर्दमनीय पीडा को तथा मन मे सोडे के पानी की तरह उबलते हुए सत्य को मुखरित करके कुछ राहत पाता है—

राग सदा ऊपर को उठता, आसू नीचे झर जाते हैं।

× × ×

रो तू अक्षर अक्षर मे ही, रो तू गीतो के स्वर मे ही,
शांत किसी दुखिया का मन हो जिनको सूनेपन मे गाकर !
क्यों रोता है जड तकियों पर !

एक सन्देह उठता है कि क्या इस प्रकार के व्यक्तिवादी गीतो से पाठको का आतरिक सम्बन्ध जुड सकता है ? मेरे विचार से सुख दुख की अनुभूति समान होती है। उसे हम खडो मे या व्यक्तियो की इकाइयो मे नही बाँट सकते। व्यक्ति व्यक्ति के जीवन की घटनाएँ, उसके सघर्ष, उसकी जय-पराजय, आशा निराशा, प्राप्ति अप्राप्ति और प्रेम-घृणा के दायरे अलग हो सकते हैं, किन्तु उनकी मानसिक प्रतिक्रिया से प्रसूत सुख-दुख की अनुभूति समान होती है। बच्चन के गीत निश्चय ही व्यक्तिवादी स्वरो से युक्त हैं। किन्तु उनम बच्चन के जीवन की स्थूल घटनाएं व्यक्ति के मूल सुख दुख की सहज अभिव्यक्ति मे रूपायित हो गई हैं। अत उन पर तो अब स्वय कवि बच्चन तक का अधिकार नही है। वह तो व्यक्ति का विश्व को दिया गया अतिम उपहार है, आत्मदान है—

लें तृषित जग होठ तेरे लोचनो का नीर मेरे !
मिल न पाया प्यार जिनको आज उनको प्यार मेरा !
विश्व को उपहार मेरा !

यहाँ कहाँ है व्यक्ति का ऐसा व्यक्तिवाद जिसे हेय कहा जा सकता है ?

सक्षेप मे, निशा निमन्त्रण के गीतो मे एक व्यक्ति को केन्द्र मानकर उसके जीवन-साथी के असमय, अशुभ अवसान का रागमय चित्रण किया गया है। पर इस राग का आधार मासल प्रणय की रूमानियत न होकर जीवन के सुख-दुख के भिन्न-भिन्न पहलू हैं। और इन पहलुओ मे जिये जाने वाले जीवन का जो जड सत्य है उसे अनुभूति के ताप से तरल बनाकर मुखरित किया गया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—

साथी, साथ न देगा दुख भी !
काल छीनने दुख आता है, जब दुख भी प्रिय हो जाता है,
नहीं चाहते जब हम दुख के बदले मे लेना चिर सुख भी ! ...
जिस परवशता का कर अनुभव, अश्रु बहाना पडता नीरव,
उसी विवशता से दुनिया मे होना पडता है हँसमुख भी ...
भिन्न दुखों से, भिन्न सुखों से होता है जीवन का रुख भी !

और यह भी कि—

रो तू अक्षर अक्षर मे हो, रो तू गीतों के स्वर में हो,
शात किसी दुखिया का मन हो जिनको सुनेगन में गाकर !

वस्तुतः निशा निमन्त्रण के गीत दर्द भरे दुखी दिल के गीत हैं। मन उन्हें दर्द-भरे दुखी दिलो की ही दरकार है। ये गीत दुखिया के शुभाशीष हैं। किन्तु निश्चय ही सुखियो के लिए निशा निमन्त्रण के गीत नही हैं।

और यह सत्य है कि अनुभूति, कल्पना और रागतत्व का सहज शिल्प-सम्मत समन्वय जैसा निशा निमन्त्रण के गीतो म हुआ है वैसा अन्यत्र देखने को नही मिलता। यहाँ एक मर्मवेधी सत्य है, यथार्थ सात्त्व कल्पना है, यथा—

अतुल प्यार का अतुल घृणा मे मैंने परिवर्तन देखा है !

(गीत ६३)

और यह भी—

कहता एक बूँद आँसू झर पलक पाखुरी से पल्लव पर—
नही मेह के लहरे का ही, मेरा भी अस्तित्व यहा है।

(गीत ७८)

एकान्त संगीत : आकुल अन्तर

निशा निमन्त्रण के गीतो का भुतरित विषाद 'एकान्त सगीत' और 'आकुल अन्तर' के गीतो मे एकदम अन्तर्मुख हो गया है। जैसे वह किसी की सांसो म समा गया हो, मन मे घुमड गया हो। जैसे जग, जीवन, समाज, नियति, प्रकृति, प्रेम ने व्यक्ति का कुछ मूल्यतम लूट कर उसे अपने सविधान से बहिष्कृत और निष्कासित कर दिया हो। उफ ! कितना अकेलापन, कितना अभिशाप और कितना पीडन है—

कितना अकेला आज मैं !
सघर्ष से टूटा हुआ, दुर्भाग्य से लूटा हुआ,
परिवार से छूटा हुआ, कितना अकेला आज मैं !

(एकान्त सगीत, अन्तिम गीत)

× × ×

पंथी चलते चलते थक कर, बैठ किसी पथ के पत्थर पर,
जब अपने ही थकित करों से अपना विधकित पाँव दबाता,
त्राहि, त्राहि कर उठता जीवन !

(५७वा गीत)

× × ×

मरना तो होगा ही मुझको जब मरना था तब मर न सका !
मैं जीवन मे कुछ कर न सका !

(२१वा गीत)

पर यह अकेलापन, यह अभिशाप, यह क्रन्दन और यह पीड़न क्या किसी अकेले कठ

की पुकार हो सकती है ? भारत विभाजन के समय त्रस्त व्यस्त जैसे हर असहाय व्यक्ति इन पक्तियो का साझीदार था। आज भी नयी पीढी के सामने यह सकट और सत्रास मौजूद है। हर व्यक्ति कभी न कभी कही न कही अकेलेपन की अनुभूति अभिशाप और आकुल अन्तर के सताप से ग्रस्त होता है और उससे वह आजाद भी होना चाहता है। तब उसे भीषण आत्म सघर्ष करना होता है। तब उसमे न जाने कितने सकल्प साहस और जय पराजय के भावो अभावो का द्वन्द चलता है। इन गीतो मे कवि *व्यक्ति का मानसिक भावद्वन्द थोथे आवेगो से कम और अदम्य सकल्प तथा साहस के* इरादो से अधिक परिचालित हुआ है। इसीलिए आत्म केन्द्रित एकान्त सगीत आगे आकुल अन्तर मे तिरोहित हो जाता है—

> *यदि न सके दे ऐसे गायन ग्रहले जिनको गा मानव-मन*
> शब्द करे ऐसे उच्चारण
> जिनके अन्दर से इस जग के शापित मानव का स्वर बोले।
> जब जब मेरी जिह्वा डोले।

(गीत ६६ आकुल अतर)

इस प्रकार एकात सगीत के गीत अगर एक आत्मकेन्द्रित व्यक्ति के कठिन विषाद के तीव्र हाहाकार को ध्वनित प्रतिध्वनित करते है तो आकुल अतर' के गीत इस हाहाकार को हटाकर जगत-गति म अपने को लीन कर देने के लक्ष्य को इगित करते हैं।

'एकात सगीत मे जैसे एक बौराये विक्षिप्त-से व्यक्ति का तीखा स्वर है। वहाँ अभाव अवसाद का नाद तीव्र है। मानसिक तनावो एव भावो की तीव्रता का चित्रण एकात सगीत के गीतो म अद्भुत प्रतीत होता है। यथा—

> जब जग पडी तृष्णा अमर दृग में फिरी विद्युत लहर
> आतुर हुए ऐसे अधर—
> पीलें अतुल मधु सिन्धु को तुमने कहा मदिरा खतम !
> सोचा हुआ परिणाम क्या ?
>
> × × × (गीत ३१)
>
> मेरे पूजन आराधन को मेरे सम्पूर्ण समर्पण को
> जब मेरी कमजोरी कहकर मेरा पूजित पाषाण हँसा
> तब रोक न पाया मैं आँसू !
>
> × × × (गीत ४६)
>
> तुमने अपने कर फैलाए लेकिन देर बडी कर आए
> कचन तो लुट चुका पथिक अब लूटो राख लुटाता हूँ मैं !
> *अग्नि देश से आता हूँ मैं !* (गीत ७६)

एकात सगीत के गीतो म कवि के यौवन की असफलता प्रणयासक्ति एव अभाव ग्रस्त जीवन की निराशा के प्रति आक्रोश का स्वर भी उभरता है—

> झुकी हुई अभिमानी गर्दन बधे हाथ नत निष्प्रभ लोचन,

यह मनुष्य का चित्र नहीं है, पशु का है, रे कायर !
प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर ! (गीत ६२)

संक्षेप में, एकांत संगीत के १०० गीतों में मध्यवर्गी व्यक्ति के जीवन-संघर्ष की कठिन और करुण गाथा है। उसका स्थूल पक्ष निराशापरक है। पर उसका सूक्ष्म या मूल स्वर संघर्षपरक ही है। एकांत संगीत को पढ़ते हुए व्यक्ति को अभावों और अभिशापों में जीने का जितना साहस व संकल्प मिलता है उसे व्यवहारतः उपार्जित करने के लिये जीवन में बहुत कुछ खरना और खोना पड़ता है। व्यक्ति की वाणी में ऐसा ओज जीवन का गम्भीर मूल्य अदा करने पर ही आना सम्भव हो सकता है—

गरल पान करके तू बैठा, फेर पुतलियां, कर पग ऐंठा
यह कोई कर सकता, मुर्दे तुझको अब उठ गाना होगा,
विष का स्वाद बताना होगा !

(गीत ८७वां)

× × ×

अज भर की छाती वाला ही विष को अपनाता है।
कोई बिरला विष खाता है !

(८८वां गीत)

× × ×

मिला नहीं जो स्वेद बहाकर निज लोहू से भी न नहाकर,
वर्जित उसको, जिसे ध्यान है जग में कहलाए नर !

(९२वां गीत)

अंतत में 'एकांत संगीत' अकेले व्यक्ति के उस अकेलेपन का संगीत है जो नितांत उसका अपना है। जिसे वह किसी को समर्पित न कर अपने को ही कर सकता है। इस संगीत के साथ वह अपना आत्मदान करता है। वह कोई उद्बोधन अथवा किसी कला सिद्धान्त का प्रतिपादन न होकर 'स्वान्तः सुखाय' का एक सहज स्वरमय-सृजन है। इस सृजन के व्याज से कवि ने उस मानस को प्रतिबिम्बित किया है जो सामाजिक दृष्टि में भले ही उपेक्षित हो पर प्रत्येक व्यक्ति कभी न कभी कुछ क्षणों के लिये उसका अनुभव अवश्य करता है। 'एकांत संगीत' मनुष्य के इसी अंतर-पक्ष की प्रबल अभिव्यक्ति करता है—

ममता यदि मन से मिट पाती, देवों की गद्दी हिल जाती !
प्यार, हाय, मानव जीवन की सब से भारी दुर्बलता है !

या (८९वां गीत)

जीवन की नौका का प्रिय धन, लुटा हुआ मणि मुक्ता कंचन,
तो न मिलेगा, किसी वस्तु से इन खानों जगहों को भर दो !
मेरे उर पर पत्थर धर दो ! (गीत २)

मानव की इस दयनीय नियति के साथ ही उसके विराट रूप की सजीव तथा

सबल अभिव्यक्ति यों हुई है—

> यह महान दृश्य है—चल रहा मनुष्य है,
> अश्रु-स्वेद रक्त से लथपथ, लथपथ, लथपथ !
> अग्निपथ ! अग्निपथ ! अग्निपथ !

(७३वां गीत)

'आकुल अन्तर' वैयक्तिक विषाद से उबर कर और उभरकर गीत गाने का प्रबल प्रयास है। जग, जीवन, काल, नियति, प्रेम, प्रकृति, प्रणय व संघर्ष के प्रति कवि अब निशा निमन्त्रण और *एकान्त संगीत की भांति भावुकता से* और आत्म केन्द्रितता से ग्रस्त न होकर जीवन के प्रति अधिक दयालु है और उसकी नेगटिव स्थिति के प्रति जागरूक है।

पूर्व गीत संग्रहों के गीतों जैसी आत्मतल्लीनता एवं अभिव्यक्ति की तीव्रता तथा सुन्दरता 'आकुल अंतर' के गीतों में नहीं रही है। किन्तु जग जीवन के यथार्थ और *सत्य को यहां मार्मिक स्वर मिले हैं*—

> मन में या जीवन में आते, वे जो दुर्बलता दुलराते,
> मिले मुझे दुर्बलताओं से लाभ उठाने वाले,
> कैसे आंसू नयन संभाले।

(गीत ४)

× × ×

> जीवन बीत गया है मेरा जीने की तैयारी में

(गीत १४)

× × ×

> तू एकाकी तो गुनहगार
> अपने प्रति होकर दयावान तू करता अपना अश्रु पान
> जब खड़ा मांगता दग्ध विश्व तेरे नयनों की सजल धार !...
> अपने से बाहर निकल देख है खड़ा विश्व बाहें पसार !

(गीत ७०)

संक्षेप में 'आकुल अंतर' का स्वर वैयक्तिक विषाद से मुक्ति पाने का स्वर है। यह स्वर आगे सतरंगिनी, मिलन-यामिनी, धार के इधर-उधर तथा प्रणय-पत्रिका के गीतों में नये अंदाज में गुंजित हुआ है।

× × ×

'निशा-निमंत्रण,' 'एकान्त संगीत' और 'आकुल अन्तर' इन तीन कृतियों में मूलतः वैयक्तिक विषाद की रागात्मक अभिव्यंजना प्रधान है। पर यह विषाद किसके प्रति ? स्पष्ट है कि यहाँ कवि, बच्चन का नियति प्रताड़ित प्रेम और जग-जीवन का संघर्षजन्य स्थूल निराशाभाव मुखरित हुआ है। शुद्ध समाजवादी आलोचक कहेगा *कि कवि बच्चन के प्रेम और जीवन-संघर्ष का राग अलापने की क्या* पड़ी है ? एकांगी दृष्टि से मुक्त होकर यदि हम समाज और व्यक्ति को समझें तो स्पष्ट है कि व्यक्ति का निरन्तर राग भी समाज के अन्तर में व्याप्त होगा। व्यक्ति

और समाज का संघर्ष भौतिक स्वार्थ के धरातल पर कितना भी भयंकर उठ सकता है लेकिन यह संघर्ष प्रकृतिगत रागों के प्रति कभी हो ही नहीं सकता। प्रेम और जीवन के संघर्ष के स्थूल प्रभाव से किस व्यक्ति या समाज अलग है? प्रत्येक समाज में प्रेम और जीवन संघर्ष करने वाले लोगों की संख्या क्या कम होती है? अतः मैं यहाँ प्रेम और जीवन संघर्ष को संकुचित अर्थ में प्रयुक्त नहीं कर रहा हूँ। प्रेम तो पशु से लेकर परमात्मा तक से हो सकता है। और जीवन संघर्ष माँ के गर्भ से लेकर जलती चिता तक हो सकता है। प्रेम न सिर्फ लैला मजनू तक सीमित है और न जीवन-संघर्ष सिर्फ रोटी कपड़ा और मकान तक सीमित है। तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के प्रेम और जीवन संघर्ष का स्वर, व्यापक प्रभाव की दृष्टि से, हेय कभी नहीं हो सकता। बच्चन की आलोच्य तीनों कृतियों में प्रेम और जीवन संघर्ष से प्रादुर्भूत अस्थिर विषाद है। इन कृतियों को पढ़कर लगता है कि पहले (मधुशाला मधुबाला और मधुकलश में) कवि पर एक उन्माद छाया हुआ था। तब उसने बहुत और गफलत में पड़कर एक सुनहरी सृष्टि का रंगीन सपना आँखों में पाल लिया था—पलकें मुँदी थीं। वही जैसे सत्य था। लेकिन एक दिन अचानक उसे पता चला कि—

और मैं था सत्य की ले लाश बैठा।
और सपना उड़ गया था!

(आरती और अंगारे)

सपना टूटा, सुनहरी सृष्टि मिट गई। लाश को कंधा पर लादे हुए जड़ सत्य सामने खड़ा हो गया। जैसे आधी जिन्दगी पर लकवा मार गया। इसी का रागमय अभिव्यंजन निशा निमंत्रण, एकांत संगीत और आकुल अन्तर की कविताओं में हुआ है। वहाँ नैराश्य एवं अस्तित्व की सीधी टक्कर है—

ध्येय न हो पर है मग आगे
बस धरता चल तू पग आगे,
बैठ न चलने वालों के दल में तू आज तमाशा बनकर!
तू क्यों बैठ गया है पथ पर!

(निशा निमंत्रण ९४वाँ गीत)

प्रश्न है कि बच्चन के इस काव्य में क्या कुछ बाकी विशिष्ट है? मैं कहूँगा कि कवि के इस गीत-काव्य का मुसरण वायवी या 'एरेडेमिक' टाइप का नहीं है। यह मुसरण जीवन का भुक्त तथा भुक्तनीय भाव-स्वरागार है। किन्तु वह व्यक्ति घटना-विहीन है। पर सबके लिए सहज, सम्प्रेष्य और मर्मस्पर्शी! 'निशा निमंत्रण' के अंतिम गीत का अंतिम अंश पढ़िए—

लें तृषित जग होंठ तेरे,
लोचनों का नीर मेरे,
मिल न पाया प्यार जिनको आज उनको प्यार मेरा!

क्या यह प्यार केवल व्यक्ति बच्चन का ही है ? मुझे या आपको या सारे समाज को इसकी दरकार नही है ?

× × ×

यह सत्य है कि बच्चन के प्रणयावसाद पूर्ण गीतो मे प्रेम का उदात्तीकरण वैसा नही हुआ है जैसा कि छायावादी रहस्यवादी काव्य मे हुआ सा लगता है। विशेष ध्यान मे रखने वाली बात यह है कि प्रणयावसाद विशेषत कवि के निशा-निमत्रण के सौ गीतो मे से पहले ६१ गीतो म हुआ है। ६१वें गीत का अतिम पद है—

समझा तूने प्यार अमर है
तूने पाया यह नश्वर है,
छोटे-से जीवन से की है तूने बडी-बडी प्रत्याशा !

गीत ६२ से कवि की चिन्ता है—'सुधियो के बन्धन से कैसे अपने को आजाद करू मैं ?' और गीत ६३ से कवि एक बार फिर वैयक्तिक विषाद के प्रति व्यक्ति-विद्रोह का दल अर्जित करता है लघु मानव नियति के विरुद्ध अपने अस्तित्व का प्रबल उद्घोष करता है—जैसे जीवन के लिए जीने की निराशा से वह दाँत किटकिटाकर जूझता है और अपने को 'वर्क अप' करता है—

उठ पडा तूफान देखो !
मैं नहीं हैरान देखो,
एक झझावात भीषण मैं हृदय मे ले चुका हूँ !
मूल्य अब मैं दे चुका हूँ !,

यह मूल्य कौन सा ?—वही, जो कवि ने जीवन मे नियति की निर्ममता के थपेडे खाते-खाते दिया। और यही से कवि के जीवन का जटिल आख्यान-गान एकात सगीत मे गूँजा तो 'आकुल अन्तर' मे उसने सघर्ष के शिखर पर चढकर तीव्रता पूर्ण प्रबल-प्रचड, जल-ज्वालामय गान किया।

जबकि ध्येय बन चुका,
जबकि उठ चरण चुका,
स्वर्ग भी समीप देख—
मत ठहर, मत ठहर, मत ठहर

(आकुल अतर, गीत ६५)

जग जीवन उसके लिए जैसे मरण मुखरित प्रश्न बनकर खडा हो गया और वह जीवन की व्यर्थता मे से रचनात्मक अर्थ और सबल खोजता जाता है। वस्तुत इन रचनाओ मे व्यक्ति की व्यर्थता मे कवि जैसे जीवन के अस्तित्व के कणों की शोध-खोज करने के लिए खून-पसीना बहा रहा है।

जीवन बीत गया है मेरा जीने की तैयारी मे

(आकुल अतर, गीत १४)

वह जीवन के विष का स्वाद बताकर जीवन के अस्तित्व का ही राग अलाप

रहा है। इस प्रकार के अभिव्यजन के पीछे उस काल के आत्म प्रताडित व्यक्ति की मूल मन स्थिति का आग्रह विशेष था। मेरा अनुमान है कि इस तथ्य को गम्भीर रूप मे देखने-समझने पर तत्कालीन काव्य की निराशा के पीछे लगे निर्मम जग-जड-सत्य का सहज बोध हो सकता है।

मेरी दृष्टि मे तत्कालीन असन्तुष्ट व्यक्ति के मन-जीवन की अस्तित्व-सापेक्ष अभिव्यजना जितनी प्रबल बच्चन के आलोच्य काव्य मे हुई है वैसी अन्यत्र नही हुई। जीवन के प्रणय सघर्ष और विषाद से टूटे हुए व्यक्ति को इन गीतो को पढकर हर हाल मे सघर्ष करते हुए जीवन जीने का सन्देश मिलता है। जैसे—

चिता निकट भी पहुँच सकूँ मैं अपने पैरों पैरों चलकर

× × ×

चार कदम उठकर भरने पर मेरी लाश चलेगी।

और अत मे मैं इस स्थापना का खण्डन करता हूँ कि बच्चन निराशावादी कवि रहे है। मेरा मत है कि कवि बच्चन व्यक्ति के विषाद मे से उसके अस्तित्व की ऊँची आवाज उठाते हैं। यह आवाज कुछ ही गीतो मे ध्वनित होकर नियति शासित और जगत्रासित इन्सान को स्वाभिमान से जीने की उग्र प्ररणा देती है।

सतरंगिनी

" और अन्तत जीवन पर छाए अवसाद विषाद पर कवि ने (और मूलत व्यक्ति ने) बहुत कुछ टूटकर विजय पा ली। यही विजय जैसे स्वर-लहरी बनकर सतरगिनी के गीतो द्वारा बरबस फूट पडी है—

नाश के दुख से कभी दबता नहीं निर्माण का सुख,
प्रलय की निस्तब्धता से सृष्टि का नव गान फिर फिर,
नीड का निर्माण फिर फिर स्नेह का आह्वान फिर फिर,

(निर्माण)

× × ×

प्रभजन मेघ दामिनि ने न क्या तोडा, न क्या फोडा,
धरा के और नभ के बीच कुछ साबित नहीं छोडा,
मगर विश्वास को अपने बचाए कौन बैठा है,
अंधेरी रात मे दीपक जलाए कौन बैठा है ?

(जुगनू)

× × ×

मृत्यु पथ पर भी बढ गा मोद से यह गुनगुनाता
अत यौवन, अत जीवन का मरण क्या
दो नयन मेरी प्रतीक्षा मे खडे हैं।

इस स्वर-लहरी की प्रेरणा का उत्स क्या है ? वह है व्यतीत के खडहर पर

नव जीवन और नव-यौवन की नयी आशा और नए विश्वास का स्रोत ?

× × ×

समय गतिवान है ! यह संसार एक कठिन सफर है। हरेक यहाँ एक मुसाफिर है। और मुसाफिर की महत्ता इसी में है कि वह गतिवान है, कि वह राह के संकटों को झेल सकता है, कि वह ध्वंस के ऊपर फिर सृजन कर सकता है। नियति द्वारा उजाड़े हुए को फिर फिर बसाना और नाश पर निर्माण की पताका फिर-फिर फहराना— जैसे यही इस पांच फुट और कुछ इंचों वाले आदमी की अद्भुत जिन्दादिली है ! शायद यही उसका अमर चरित्र है—

'ऊँचा तूने हृदय उठाया, लेकिन अपना लक्ष्य न पाया,
यह तेरा उपहास नहीं था—
क्योंकि तुझे थी केवल अपने मनुजोचित कद की पहचान।

और यों मनुष्य अपनी सीमाओं में भी असीम है, अद्भुत है। इसे आगे कवि ने मिलन यामिनी में कह दिया है—

'वह कभी न स्वर्ग में समा सका, कि वह न पाँव नर्क में जमा सका ?
कि वह न भूमि से हृदय रमा सका, यही मनुष्य का अमर चरित्र है !
अपूर्ण को न पूर्ण कर सका कभी, अभाव के न घाव भर सका कभी,
हजार हार से न डर सका कभी, मनुष्य की मनुष्यता विचित्र है !

सारत बच्चन के विशिष्ट गीतों का स्वर व्यक्ति-जीवन के साहस तथा संकल्प के वक्ष से फूटता है—जैसे पहाड़ का सीना फोड़कर 'झर झर झर' निर्झर फूटता है। कुल मिलाकर सतरंगिनी के गीतों का सृजन व्यक्ति की नव सृजनात्मक आशा से संप्रेरित शक्ति के गर्भ से होता है। इस सृजन में युग-सामयिक संघर्ष के ऊपर एक संकल्प शील व साहसी पुरुष का मनोबल मुखर होता है—

प्रलय का सब समा बाँधे प्रलय की रात है छाई,
विनाशक शक्तियों की इस तिमिर के बीच बन आई,
मगर निर्माण में आशा दृढ़ाए कौन बैठा है !
अँधेरी रात में दीपक जलाए कौन बैठा है,

× × ×

जो बसे हैं वे उजड़ते हैं प्रकृति के जड़ नियम से
पर किसी उजड़े हुए को फिर बसाना कब मना है ?
है अँधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है ?

इस प्रकार विषम परिस्थितियों और सदमों के विरुद्ध दैन्य के कठिन संघर्ष और सृजन की लगन का भाव प्रकाशन सतरंगिनी के गीतों में सूक्ष्मत हुआ है। यहाँ एक बड़ी

समर्थ गीतकार कवियो (अचल, नरेन्द्र शर्मा और नेपाली) ने युग-जीवन की जटिलताओ से जनित गम्भीर मानसिक जोखिम उठाकर अपने लोकप्रिय गीतो की रचना की है। किंतु इनमे बच्चन के गीत, भाव तथा शिल्प की दृष्टि से प्रतिनिधित्व करते हैं। ऐसा ही महत्वपूर्ण गीतो का एक गुलदस्ता सतरंगिनी गीत सग्रह है। पहले रग की पाँचवी रचना 'जुगनू' दूसरे की प्राय सभी रचनाएँ (मुख्यत अन्धेरे का दीपक, यात्रा और यात्री, पथ की पहचान) और तीसरे रग की कुछ कविताएँ और कुछ पदाश जडता के विरुद्ध जीव की अमर शक्ति तथा विजय यात्रा के उद्गीत हैं। निश्चय ही इन गीतो को पढकर आदमी जीने का नया जीवट, जोश, नयी जोत और नयी प्रेरणा पाता है। तभी तो आगे कवि ने मिलन-यामिनी के गीतो मे जीवन के प्रति प्रतिबद्धता का सकेत दिया है—

जीवन की यात्रा के सबसे सच्चे साथी गीत रहे हैं।

वस्तुत सहज भाव शिल्प का जितना सुन्दर समन्वय सतरंगिनी के गीतो मे हुआ है वह खडी बोली गीतकाव्य के लिये महत्वपूर्ण है। मयूरी' गीत इसका उदाहरण है। इस मधुर रचना का मैंने बगला भाषा मे गीतांतर भी रेडियो पर सुना है। इस मधुर गीत मे 'मयूरी' के नाचने पर एक अडियल आलोचक की आपत्ति है कि 'मयूरी' भला कब नाचती है? मयूर नाचता है। इस विषय पर मैंने पूर्वी इलाके की एक अनुभवी वृद्ध ग्रामीण महिला से पूछताछ की तो उसने बताया कि "मुरैला" यानी मोरनी भी नाचती है। 'पुछाण' शायद मोर को कहते हैं। पर मै इस पर विश्वासपूर्वक क्या कह सकता हूँ? स्वय कविवर बच्चन ने सतरंगिनी के चौथे सस्करण (जुलाई १६६७) मे इस विषय पर सब कुछ स्पष्ट कर दिया है। पर मेरे विचार से ऐसी ललित रचनाओ के लिये तर्क-कुतर्क की कैंची चलाना अन्याय है। निश्चय ही इस गीत मे 'मयूरी' एक प्रतीकात्मक प्रयोग है जो मासल प्रणय भावना को ध्वनित कर रहा है। फिर, यदि मयूर अपने मनोल्लास को पूछ फैलाकर नाचते हुए व्यक्त कर सकता है तो मोरनी अपने उल्लास की अनुभूति मे मन ही मन लीन होकर क्यो नही नाच सकती? यह नही भूलना चाहिए कि 'मयूर' नही वस्तुत उसका भी 'मन-मयूर' ही नाचा करता है। फिर 'मयूरी' के 'मगन-मन' नाचने पर यह आपत्ति किसलिये उठाई गई? कवि ने 'नाच' क्रियापद को वाह्य नर्तन प्रदर्शन का प्रतीकवाची न बनाकर उसे मन लीला-नृत्य का ही व्यजक बनाया है—'मयूरी नाच', मगन मन नाच, मयूरी का जो शाब्दिक अर्थ (अभिधार्थ) लगाते है वे सम्भवत कुतर्क करने के लिये ही वैसा करते हैं। इस दृष्टि से देखा जाय तो विद्यापति और जायसी जैसे महान कवियो ने भी ऐसे अनेक प्रयोग किये हैं जिनका शाब्दिक अर्थ सगत नही लगता किन्तु इन प्रयोगो मे शब्दार्थ की महत्ता नहीं होती। ध्वन्यार्थ का सौंदर्य मात्र शास्त्रीय सिद्धान्त विवेचन तक ही सीमित नही है। भावनाओ के सदर्भ मे उसका सौन्दर्य मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी होता है। कवि के शब्द प्रतीक बनकर किसी भाव को साकार करते है। भावमयता, रागात्मिकता, तीव्रता और लय सम्बद्धता की वहाँ महत्ता होती है। यानी भावाभिव्यक्ति की एकता और

प्रखडता की महत्ता अनेक प्रसिद्ध लोक गीतो मे जहा शब्दार्थ की सगति कुछ नही बैठती पर उन्हें गाकर मन विभोर होता है, कठ लयमान हो जाता है। समधुर गीति रचना की यही कसौटी है कि वह रसिक को कुछ क्षण तक भावविभोर और लयमान बनाए रखे। इस कसौटी पर 'मयूरी" रचना खरी उतरती है। उस दिन घर पर नरेन्द्र शर्मा ने अपना प्रसिद्ध गीत "नाच रे मयूरा" सुनाया। बाद मे वे बोले 'बच्चन ने 'मयूरी' रचना जब लिख ली तब मैंने यह गीत लिखा। निसन्देह शर्मा जी के इस गीत मे नादासिक्त तत्व का समाहार है और लय लालित्य का सहज समन्वय है। किन्तु कविता के शब्द का रूढ अर्थ करने वाला आलोचक तो यहाँ भी यह आपत्ति करेगा कि 'मयूरा' का कोश सम्मत अर्थ तो है 'काली तुलसी'। खैर, कहने का तात्पर्य यह है कि कवि अपनी विशिष्ट रचनाओ मे शब्दो के प्रयोग की कला पर हावी होकर उसके द्वारा अपने मन के भावो व बिम्बो की गीत सृष्टि रचता है। 'मयूरी' हो या 'मयूरा' उनके नाच के पीछे कवि की रचनात्मक भावना ही प्रधान है और उसे हृदयगम करके ही हम विशष्ट गीति रचनाओ का रसास्वादन कर सकते हैं।

× × ×

काव्य मे लघु-काल्पनिक कथा कहने का वैभव यदि देखना हो तो बच्चन की 'कोयल' कविता पठनीय है। इस कविता मे बाल-सुलभ भावुकता प्रधान है। मैंने उसके जोड की इतनी सहज व सरल काव्य कल्पना-कौशलपूर्ण कथात्मक कविता केवल सुभद्रा कुमारी चौहान की ही पढी हैं।

'नागिन' एक प्रतीकात्मक कविता है। कबीर की 'माया महा ठगिनि' का जितने ध्वन्यात्मक ढग से यहाँ अभिव्यजन है उससे कवि की ऊँची शब्दशिल्प-साधना का भी परिचय मिल जाता है। विश्वविमोहक 'माया' का इस लम्बी कविता मे प्रभावपूर्ण अभिव्यजन हुआ है। जहाँ तक मेरा ज्ञान है खडी बोली काव्य मे 'माया' के विषय मे इतनी लम्बी और कवित्व पूर्ण अभिव्यजना किसी अन्य कवि ने नही की है। वैसे साधारणत यह शृगार प्रधान रचना ही प्रतीत होती है। शायद इसके कवि का लक्ष्य भी यही रहा है।

'जो बीत गई सो बात गई' और 'लौटा लाओ' शीर्षक रचनाएँ अतीत के विषाद से उभर कर आने वाले व्यक्ति के प्रयास की आशावादी सरगम से युक्त हैं। इन्हे गा कर एक दिन व्यक्ति अपने आप से ही कह देता है—'अजेय तू अभी बना, पहाड टूट कर गिरा, प्रलय पयोद भी घिरा, मनुष्य है, कि देव है, कि मेरुदड है तना।' इन रचनाओं के पदो की अतिम पक्तियो मे जीवन का सजीव जादू है, साहस का अपूर्व सदेश है।

छठे रग और सातवें रग की पहली चार रचनाओ म कवि ने छोटे-छोटे छदो का प्रयोग किया है। उनका भाव-बोध बहुत स्वस्थ्य और अभिव्यजना बहुत सबल है। इन रचनाओ का महत्व छोटे-छोटे छदो मे लिखी गई खडी बोली की थोडी सी कविताओं में सर्वाधिक है। ये दो दो, तीन तीन, चार-चार शब्दो वाली रचनाएँ गेय भी हैं—

'नवल हास,
नवल वास,
जीवन की नवल साँस !
नवल अग
नवल रग
जीवन का नव प्रसग।
नवल साज
नवल सेज
जीवन मे नवल तेज
नवल नींद
नवल प्रात
जीवन का नव प्रभात,
कमल नवल किरण-स्नात !'

'सतरगिनी' के गीतो को दुख के क्षणो मे गाकर भी रस मिलता है और सुख के क्षणो मे गाकर भी। सक्षेप मे, सतरगिनी जीवन के दारुण दुख के ऊपर सुख की मधुर अभिव्यक्ति है—

दुख से जीवन बीता फिर भी
शेष अभी कुछ रहता
जीवन की अतिम घडियो मे
भी तुमसे यह कहता,
सुख की एक सास पर होता
है अमरत्व निछावर .. (तुम गा दो)

मिलन यामिनी

निशा-निमन्त्रण के गीतो की विशिष्टता अगर विरहानुभूति और मानसिक गहन विषाद के मार्मिक चित्रणो के कारण है तो मिलन यामिनी के गीतो की विशिष्टता प्रणयोल्लास से रञ्जित कलात्मक वातावरण के चित्रण के कारण है। यद्यपि कुछ कविताओ मे गेयत्व उखडा-सा लगता है और पाठ्य प्रधान हैं। जैसा कि नाम से प्रतीत होता है यह 'मिलन यामिनी' की सृष्टि है। अत यहा सयोग शृगार की अभिव्यक्ति करना कवि को अभीष्ट है, निशा निमन्त्रण और मिलन-यामिनी इन दो रातो मे प्रणय के अनेक भावद्वदो से पूर्ण दु स्वप्न और सु स्वप्न गीतो मे रूपायित हुए हैं। दु स्वप्नो की रात के गीत निशा निमन्त्रण के हैं और सुस्वप्नो की रात के गीत मिलन-यामिनी के हैं। पर इन दोनो के बीच सतरगिनी के गीत जीवन मे प्रणय, साहस, सघर्ष, आशा और सृजन के नये स्वरो दृश्यो से पूरित हैं। आगे प्रणय पत्रिका के गीतो को पढते हुए ऐसा लगता है कि बच्चन का गीतकार अनुभूति की तीव्रता के साथ शिल्प के सतुलन पर भी ध्यान

देता है। पर सयोग शृगार की जो सरस पदावली और शृगारी भावना को उदीप्त करने वाले प्रकृति के वातावरण की रगीन सृष्टि मिलन-यामिनी के गीतो को पढ़ते हुए अनुभव होती है वह तो अन्यत्र दुलभ है। इसके साथ ही मिलन यामिनी के कई गीतो और गीताशो मे ऐसी अभिव्यजना भी है जिसके स्पर्श से मनुष्य को जीने के नवीन स्थल उद्भासित होते हैं। यहाँ वह अपनी उपलब्धियो के नए क्षितिजो को देखता है। वह आस्था, सकल्प एव विश्वास के साथ जीवन को स्वीकारता है—

व्यय कोई भाग जीवन का नहीं है,
व्यय कोई राग जीवन का नहीं है।

(गीत १२)

× × ×

मैं ज्वलन का भाग अपने भोग आया,
तब मिलन का यह मधुर सयोग आया,
दे चुका हूँ इन पलों का मोल पहले।

(गीत १८)

× × ×

जो असम्भव है उसी पर आँख मेरी,
चाहती होना अमर मृत राख मेरी।

(गीत २)

'मिलन यामिनी' मे मानवीय सवेदना, सहानुभूति एव सहअनुभूति की वाणी जहाँ भी और जितनी भी व्यक्त हुई है वह अत्यत सहज और व्यापक है—

अश्रु दुख के जबकि अपना हाथ भीगे,
अश्रु सुख के जबकि कोई साथ भीगे

(गीत २६, म० आ)

× × ×

सुख है तो औरों को छूकर
अपने से सुखमय कर देगा
जो औरों का आनन्द बना
वह दुख मुझ पर फिर फिर आए
रस मे भीगे दुख के ऊपर
मैं सुख का स्वर्ग लुटाता हूँ

(गीत १२, म० आ)

मिलन-यामिनी का मूल स्वर जीवन का स्वर है। जीवन वह जो जीने के लिये हो और जो हर मूल्य पर व्यक्ति को प्यारा हो, जो आशा, विश्वास और सघर्ष के बल पर मृत्यु पर भी विजय पा सकता हो। यहाँ इस प्रकार की उद्दाम भावनाओं का

प्रकाशन बड़ा प्रभावपूर्ण है और इससे मिलन यामिनी का पाठक कुछ देर के लिये अपने जीवन की शक्तियों को टटोलने लगता है। यहां कवि ने भाषा एवं छंद का प्रयोग भी इतना शक्तिशाली किया है कि वह मन स्थितियों एवं भावनाओं का वेगवान वाहन-सा लगता है। देखिये—

मैं रखता हूँ हर पाँव सुदृढ विश्वास लिए,
ऊबड़ खाबड़ तम की ठोकर खाते खाते
इनसे कोई रक्ताभ किरण फूटेगी ही।

(गीत २, म० भा)

यहां 'ऊबड खाबड तम की ठोकर खाते खाते' पद्यांश के तुरत बाद 'रक्ताभ किरण फूटेगी ही' उक्ति जैसे ग्रस्त व्यस्त राही को उत्साह की नयी लौ-लपट से चमत्कृत कर देती है।

इसी प्रकार

जीवन की आपाधापी मे कब वक्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूँ,
जो किया, कहा, माना उसमें क्या बुरा भला।

(गीत ३३, म० भा०)

इन पंक्तियों को पढते समय वस्तुत पाठक को सांस लेने की फुरसत नहीं मिलती। वह विवश होता है कि एक ही सांस म तीनो पंक्तियां पढ जाये नहीं तो गतिरोध मे उसका अनर्थ ही हो जायगा, उसका दम ही टूट जावेगा।

यों मिलन-यामिनी के मध्य भाग के गीतो म भाव, भाषा और छंद की एक अनूठी गति है जो अन्यत्र खड़ी बोली के गीतकाव्य म देखने को नहीं मिलती। यहाँ जीवन का राही यथार्थ भावना के जैसे पीछे-पीछे चलता है—

पाव बढ़ने लक्ष्य उनके साथ बढता,
और पल को भी नहीं यह क्रम ठहरता,
पाव मंजिल पर नहीं पड़ता किसी का।

(गीत ३२, म० भा०)

× × ×

मायूस नजर से क्या कितने
दुनिया की सच्चाई देखी
आशा की पुलकित आँखों से
जग जीवन और जमाने का
दीदार नया हो सकता है।

(गीत १०, म० भा)

× × ×

हर वत समय का जो लगता
मानो विष वत नहीं होता
दुख मानव के मन के ऊपर
सब दिन बलवत नहीं होता
आहें उठतीं, आंसू झरते
सपने पीले पड़ते लेकिन
जीवन में पतझर आने से
जीवन का अंत नहीं होता।

(गीत १०, म० भा)

× × ×

और यह भी कि—

जिंदा रहना क्या इतना ही
बस डोले सासों का लगर ?
हूं मेरा पूरा सफर नया
मेरी छाती की धड़कन से—
मैं लेता हूं हर सास अमर विश्वास लिए
मैं पहुंच न पाऊं जीते जी अपनी मंजिल
पर मरने पर मंजिल मुझ तक पहुंचेगी ही।

(गीत २, म० भा०)

मिलन-यामिनी के कवि (व्यक्ति) को केवल विलासी या रसिक समझना भूल है। जीवन की गति जैसी है, वह उसके साथ है, डायनेमिक है, विकासवान है, सरस, सजग है—

मैं कितना ही भूलूं, भटकूं या भरमाऊं
है एक कहीं मंजिल जो मुझे बुलाती है
कितने ही मेरे पाव पड़ें ऊंचे-नीचे,
प्रति पल वह मेरे पास चली ही आती है...
मैं जहां खड़ा था कल, उस थल पर आज नहीं,
कल इसी जगह फिर पाना मुझको मुश्किल है...
जग दे मुझ पर फैसला उसे जैसा भाए
लेकिन मैं तो बेरोक सफर में जीवन के
इस एक और पहलू से होकर निकल चला।

(गीत ३३, म० भा)

कलियां मधुवन में गध-गमक मुसकाती हैं
मुझ पर जैसे जादू सा छाया जाता है
मैं तो केवल इतना ही सिखला सकता हूं

अपने मन को किसभांति लुटाया जाता है
लिखने दो अपनी दुर्बलता का गीत मुझे
मै जग के तर्ज तमज से हूँ अनभिज्ञ नहीं
दुनिया अक्सर मेरे कानो मे कहती है
इस कमजोरी को मूढ़ छिपाया जाता है
मैं किससे भेद छिपाऊँ सब तो अपने हैं
अपनी बीती मैं जग बीती मे पाता हूँ
(गीत ३२ म० भा)

× × ×

क्या बाहर की ठेला पेली ही कुछ कम थी
जो भीतर भी भावों का ऊहा पोह मचा
जो किया, उसी को करने की मजबूरी थी
जो कहा, वही मन के अन्दर से उबल चला।
(गीत ३३ म० भा)

फिर कहूं कि मिलन यामिनी का मूल स्वर जीवन का स्वर है। देखिये—

फूलों से, चाहे आंसू से
मैंने अपनी माला पोही,
किंतु उसे अर्पित करने को
बाट सदा जीवन की जोही
गई मुझे ले मृत्यु भुलावा
दे अपनी दुर्गम घाटी मे
किंतु वहा पर भूल भटक कर
खोजा मैंने जीवन को ही
जीने की उत्कट इच्छा मे
था मैंने आ मौत पुकारा
वर्ना मुझको मिल सकता था
मरने का सौ बार बहाना
प्यार, जवानी जीवन इनका
जादू मैंने सब दिन माना।
(गीत ३ म० भा)

समस्त जीवों मे जीवन के मूल्य को समझने की जिज्ञासा मात्र मनुष्य मे ही होती है। इस जिज्ञासा ने उसके चरित्र को बड़ा जटिल बना दिया है। अत उसकी जिजीविषा विचित्र होकर भी महान है। मिलन यामिनी की कुछ रचनाओं मे (कुछ अशो मे भी) जिज्ञासु मनुष्य की महनीयता की व्यंजना की गई है। देखिये—

कि यह कभी न स्वर्ग मे समा सका
कि यह न पाव नर्क मे उभा सका
कि यह न भूमि से हृदय रमा सका
यही मनुष्य का अमर चरित्र है..
अपूर्ण को न पूर्ण कर सका कभी
अभाव के न घाव भर सका कभी
हजार हार से न डर सका कभी
मनुष्य की मनुष्यता विदित हैं।

(गीत ३० उ० भा)

× × ×

विराग मग्न हो कि राग रत रहे विलीन कल्पना कि सत्य मे दहे,
धुरीण पुण्य का कि पाप मे बहे मुझे मनुष्य सब जगह महान है।

(गीत ३१ उ० भा)

निश्चय ही इस कृति के गीतो मे मांसलता है, ऐंद्रिक वासना है। यहाँ नारी केवल पुरुष की प्रेयसिव, भोग्या है। उसके साथ केलि क्रीडा करने म ही कवि रस ले रहा है, रस दे रहा है—

हूँ अधर मे रस मुझे मदहोश कर दो
किंतु मेरे प्राण मे सतोष भर दो।

(गीत २८ म० भा०)

लेकिन इस उद्दाम मांसल श्रृ गार-वर्णन की विशेषता यह है कि वह रीतिकालीन निम्नकोटि का जैसा शृंगार नहीं है। न वहा घिसे पिटे उपमान हैं न नख शिख के निर्जीव वणन है। विद्यापति से लेकर बिहारी और फिर छायावादी कवियो तक जो भी सयोग-श्रृ गार सम्बन्धी रचनायें लिखी गईं अनुभूति और शिल्प की सतुलित दृष्टि से देखा जाय तो इनमे कही तो अति कलात्मकता है तो कही उद्दात्मकता तो कही अनुभूति की अस्पष्टता है। पर मिलन यामिनी के मांसल गीतो की मादक, रग बिरगी सृष्टि म मन बरबस विरमता है। यहीं अमता भी है, पर रात तो रस की बात मे और बरसात मे ही बीतती है। कही कुछ बीती मधुर यादें और रातो की यादें भी अपनी स्फुट ध्वनियां जगा देती है। मिलन यामिनी की मस्ती को मार्मिक तथा मधुर बनाने मे इन ध्वनियो का भी अपना महत्व है। मिलन यामिनी एक ऐसी गीत-सृष्टि है जहाँ वियोग विषाद के खडित तारो को जोडकर कवि ने सयोग के सितार के तार झकृत किये हैं। आगे प्रणय पत्रिका म तभी तो वह यह कहने का अधिकारी बना कि—

सो न सकूँगा और न तुझको सोने दूँगा हे मन बीने।

कुल मिलाकर मिलन-यामिनी के गीतो मे मिलन का मादक राग ही प्रधान है। वस्तुत वहा सृजन का कोई उदात्त-पक्ष उद्घाटित नही होता। किन्तु निश्चय ही मिलन यामिनी के गीतो मे यौवनोदित उद्दीप्त भावनाए कलात्मक अभिव्यजना की

रंगीन चूनर ओढ़े हुए हैं। वहाँ नग्नता नहीं है। अधिक से अधिक इतना ही तो कहा गया है—

कुछ अँधेरा कुछ उजाला क्या समा है
कुछ करो इस चाँदनी मे सब क्षमा है

× × ×

अधर पुटों में बद अभी तक थी अधरों की वाणी
'हाँ-ना' मे मुखरित हो पाई किसकी प्रणय कहानी
प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।

इस दृष्टि से कहना होगा कि बच्चन के वस्तु चित्रणों में मानवीय स्तर की संवेदना, मस्ती और तल्लीनता निहित रहती है। मिलन यामिनी के गीतों में बच्चन को हम संवदनशील कवि के साथ ही साथ प्रकृति की शोभा को मानवीय भाव भूमि पर उतारने वाला कुशल चित्रकार भी पाते हैं। विशेषत अन्त के तीस बत्तीस गीत इसी भाव भूमि पर लिखे गये हैं जो हिन्दी गीति-काव्य मे नवीनतम शैली के कहे जा सकते हैं। इन गीतों मे प्रकृति के सौंदर्य का मानवीय भावना म सुन्दर समाहार हुआ प्रतीत होता है। एक उदाहरण देखिए—

' समेट ली किरण कठिन दिनेश ने। सभी बदल दिया तिमिर प्रवेश ने।
सिंगार कर लिया गगन प्रदेश ने। नभी निशीथ का घुनक उठा लिया।
समीर यह चला कि प्यार का प्रहर। मिली भुजा भुजा, मिले अधर अधर।
प्रणय प्रसून सेज पर गया बिखर। निशा सभीत ने कहा कि क्या किया?
प्रभात पुञ्ज पूर्व मे उदा हुआ। क्षितिज अरुण प्रकाश से छुआ हुआ।
समीर है कि सृष्टिकार भी हुआ। निशा विनीत ने कहा 'कि शुक्रिया'।"

सन्ध्या के पश्चात अभिसारमय वातावरण की कल्पना रंजित सृष्टि करते हुए यहाँ 'निशा विनीत' के 'शुक्रिया' कहने में कितना रस है, यह अनुभव की चीज है, बताने की नहीं।

आधुनिक गीति-कृतियों में मिलन-यामिनी के सयोग शृंगार सम्बन्धी गीत जितने कलात्मक एवं रागात्मक ढंग से लिखे मिलते हैं वैसे अत्यन्त कम मिलते हैं। इसके लिए इस गीत को देखिए—

प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।
अरमानों की एक निशा में होती हैं कै घड़ियाँ,
आग दबा रक्खी है मैंने जो छूटी फुलझड़ियाँ,
मेरी सीमित भाग्य-परिधि को और करो मत छोटी।
प्रिय, शेष बहुत
अधर पुटों मे बंद अभी तक थी अधरों की वाणी,
'हाँ-ना' में मुखरित हो पाई किसकी प्रणय कहानी,

सिर्फ भूमिका थी जो कुछ संकोच भरे पल बोले,
प्रिय, शेष बहुत है बात अभी मत जाओ। प्रिय······
शिथिल पड़ी है नभ की बाहों में रजनी की काया,
चाँद चाँदनी की मदिरा में है डूबा भरमाया,
अलि अब तक भूले-भूले से रस-भीनी गलियों में,
प्रिय, मौन खड़े जलजात अभी मत जाओ। प्रिय······
रात बुझायेगी सच-सपने की अनबूझ पहेली,
किसी तरह दिन बहलाता है सबके प्राण सहेली
तारों के झपने तक अपने मन को दृढ़ कर लूंगा,
प्रिय, दूर बहुत है प्रात अभी मत जाओ। प्रिय शेष बहुत···

प्रणयपत्रिका—

बच्चन ने इस कृति के गीत अपने इगलैंड प्रवासकाल में लिखे हैं। 'मिलन-यामिनी' की कलात्मक श्रीवृद्धि हम 'प्रणयपत्रिका' के गीतों में पाते हैं। यहाँ हमें शृंगारी वातावरण, प्रकृति चित्रण तथा भावों की सरसता का एक लय प्रवाह कवि की गीति-साधना के नए अदाज का संकेत देता है। यहाँ कोमल-कान्त पदावली में अभिव्यक्ति कौशल का नया रूप प्रकट होता है। शृंगार के रसरंजित भावानुभाव प्रणयपत्रिका के गीतों में मुखर-चित्रों से प्रनीत होते हैं। देखिए—

कुछ मतलब रखता है अब तो मेरा भी मसूबा
तारे मेरे मन की गलियों में दीप जलाते हैं
मेरे भावों में रंग भरता गोधूलि अँधेरा भी।
झुरमुट में अटका चाँद कहीं अटका मन मेरा भी

इसी प्रकार—

आज खड़ी हो इन पर तुमने
होगा चाँद निहारा।
फूट पड़ी होगी नयनों से
सहसा जल की धारा।
इसके साथ जुड़ी जीवन की
कितनी मधुमय घड़ियाँ
यह चाँद नया है, नाथ नई आशा की।

(गीत २६)

अथवा

मधुर प्रतीक्षा ही जब इतनी प्रिय तुम आते तब क्या होता।
मौन रात इस भाँति कि जैसे कोई गत वीणा पर बज कर,
अभी अभी सोई खोई-सी सपनों में तारों पर सिर धर,
और दिशाओं से प्रतिध्वनियाँ जाग्रत सुधियों-सी आती हैं,

कान तुम्हारी तान कहाँ से यदि सुन पाते तब क्या होता .

अथवा—

तुमने आह भरी कि मुझे था
झंझा के झोंको ने घेरा
तुम मुस्काए थे कि जुन्हाई
मे था डूब गया मन मेरा
तुम जब मौन हुए थे मैंने
सूनेपन का दिल देखा था ! —(गीत ५४)

इसमे कोई सन्देह नहीं कि "प्रणय पत्रिका" के गीतो मे बच्चन को अपने पिछले गीतों की अपेक्षा भाषा, भाव, अभिव्यक्ति तथा कल्पना-कौशल की दृष्टि से आशातीत सफलता मिली है। सरसता की दृष्टि से बच्चन के इन गीतो मे बडा आकर्षण और मिठास है। किन्तु कवि-जीवन की जलन, मानवता के कल्याण-पथ पर होना नितात अनिवार्य है, नहीं तो वह जलन राख से अधिक कुछ न बन सकेगी—

जलना अर्थ उन्हीं का रखता जो कि अँधेरे मे खोयों को—
हारों के ऊपर अवलम्बित आकुल शकित दृग-कोयो को—
आशा का आश्वासन देकर जीवन का सन्देश सुनाए
जो न किरण की रेख बनोगे धूलि धुए की धार बनोगे
हे मन के अगार अगर तुम लौ न बनोगे क्षार बनोगे

प्रणय पत्रिका के अधिकाश गीतों मे प्राकृतिक दृश्यो, बिम्बो तथा भावों की गुम्फित सृष्टि अत्यन्त रसमय एव हृदयस्पर्शी हो उठी है, मानो वह स्वय मुखरित हो उठी है—

कह रही है पेड की हर शाख अब तुम आ रहे अपने बसेरे
याद आई आज होगी वे तरगे दूब पर जो आह भरतीं
और बूँदें आंसुओं की पकजों के लोचनों मे जो सिहरतीं
और अपनी हसिनी के नीरभीगे नेत्र की अपलक प्रतीक्षा
दाहिनी मेरी फडकती आँख अब तुम आ रहे अपने बसेरे—

यहाँ तीसरी-चौथी पक्ति मे प्रकृति का भाव सकुल अकन मुखरित और स्पदित चित्र-सा बनकर हृदय मे उतर आता है। 'हसिनी के नीर-भीगे नेत्र की अपलक प्रतीक्षा और 'पकजो के लोचनो मे आंसुओं की बूँदें'—ये दोनो चित्र रसध्वनि से युक्त नायक के प्रणय की स्मृति को एक साथ साकार और सहज रूप मे सजीव कर देते हैं। और उधर नायिका का शुभ शकुन लोक प्रचलित मुहावरे के द्वारा कथ्य की कल्पना को रसिक के पाश मे बाँध देता है कि—'दाहिनी मेरी फडकती आँख' ! इस प्रकार कई गीतो मे नायक-नायिका के प्रणय-व्यापार को मात्र कल्पना के सहज और सुघर माध्यम द्वारा गीत-बद्ध किया गया है तथा जीवन की पिपासा का मूल्य आंका गया है—

'रक्त बहता जाय, कहता जाय जीवन की पिपासा की कहानी'।

यो प्रणय पत्रिका के गीत 'रस्यते इति रस' उक्ति को चरितार्थ करते हैं। उनमे न अतिरिक्त विदग्धता है, न उक्ति चमत्कार। उनमें केवल भावमयता भर है।

प्रणय पत्रिका के गीतों की विशिष्टता इस बात में है कि वहाँ प्रत्येक भाव, अनुभाव व संचारी भाव का आधार भोग का अनुभव है। यहाँ कल्पना की उड़ान का लक्ष्य आकाश पर विचरना नहीं वरन् व्यक्ति की कामना की शक्ति को मुखरित करना है—

'कामना मेरी बड़ी मुझ से कि उनसे मैं बड़ा, यह जानता था,
आदमी के तन नहीं, मन हौसले का क़द मुझे पहचानना था
रेख लोहू की लगाकर आ रहा हूँ मैं अधर की मेखला पर,
शमित अम्बर मे परीक्षित भक्ति की लूँगा परीक्षा मैं धरणि मे।
बाण बिद्ध मराला सा मैं आ गिरा हूँ अब तुम्हारी ही शरण मे।

इस प्रसंग मे प्रणय पत्रिका के 'हंस' सम्बन्धी गीत अपनी भंगिमा मे अनूठे हैं। 'हंस' हमारे संत-दर्शन काव्य में 'जीव' का प्रतीक रहा है। कबीर के अनेक पदों को इसके लिये पढ़ा जा सकता है। बच्चन की प्रणय पत्रिका का हंस प्रतीक भी है, किन्तु उसकी उड़ान ब्रह्म के पास पहुँचने के लिये नहीं है। हंस का राग इस धरती की ही *माया-ममता का राग है। यहाँ यदि हंस को जीव के प्रतीक रूप में माना जाय तो कहा* जायेगा कि कवि जैविक भाव-भूमि के स्वरों को अलौकिक भावभूमि के स्वरों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली ढंग से मुखरित कर सका है। कुछ अंश देखिये—

हैं ठहर तब तक फलक पर जब तलक है
और बाजू का सलामत
बिजलियों की हर गहर तेरे जमी को
और गिरने की अलामत
दग्ध पर की दग्ध स्वर की प्रत केवल
एक धरती जानती है
साश आकर्षित किसी को भी करे आकाश अपनाता कहाँ है ?
व्योम पर छाया हुआ तमतोम है हिम हंस, तू जाता कहाँ है ?

जीव की शक्ति-सीमा का ज्ञान इस प्रकार ध्वनित हुआ है—

बादलों के देश तक जब चढ़ गया था
जानता था लौट आना,
जानता था है असम्भव नीड बिजली
की तड़ाओं पर बनाना
मैं गगन की भूमि की भावनाएँ
कुछ बताना चाहता था
बाण बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूँ अब तुम्हारी ही शरण मे।

नम न मुझको खींच लेता तो धरा के
वास्ते मैं भार होता
सिद्ध गिर कर कर दिया मैंने कि अपनी
शक्ति भर ऊपर उठा मैं
आज कमजोरी नहीं कूमन बडी मेरी
तुम्हारे जो चरण मे।

जीव का गुमान और धरती की महिमा का स्वर यों मुखर हुआ है—

कामना मेरी बडी मु झसे कि उससे
मैं बडा यह जानना था
आदमी के तन नहीं मन हौसले का
कद मुझे पहचानना था
रेत लोहू की लगा कर आ रहा हूँ
मैं अधर की मेखला पर
शक्ति अधर मे परीक्षित भक्ति को
लू गा परीक्षा मैं धरणि मे।

जीव का अन्तिम विश्वास और जीवन के प्रति उसकी अमर लालसा का स्वर य है—

पख टूटा हूँ मगर यह खैरियत हूँ
पाँव जो टूटा नहीं हूँ
रक्त बहता जाय कहता जाय जीवन
की पिपासा की कहानी
जान लो यह मुक्ति अपनी मागने
आया नहीं हूँ मैं मरण मे।

बच्चन के कवि ने प्राय भूत का निराशामय भविष्य को आशामय और वतमान को सघर्षमय व्यक्त किया है। यहाँ निराशा जीवन के सघष प्रणय स उदभूत है। अत वह सर्वथा समाज निरपेक्ष है, ऐसा नही कहा जा सकता।

भूत, भविष्य और वतमान के विषय म इस कवि का भाव है—

कवि के उर के अन्त पुर मे
वृद्ध अतीत बसा करता हूँ
कवि की दृग-कोरो के नीचे
बाल भविष्य हँसा करता हूँ
वतमान के प्रौढ़ स्वरो से
होता कवि का कठ निनादित

तीन काल पद मापित मेरे क्रूर समय का डक मुझे क्या ।
आज गीत में अक लगाये मू मुझको, पर्यंक मुझे क्या । (गीत ७)

पर व्यतीत के निराशाभाव को इस कवि ने कुछ अधिक व्यक्त किया है। प्रणय-पत्रिका मे भी इस प्रकार की मार्मिक भावनाएँ व्यक्त हुई है—

क्षणभगुर होता है जग मे
यह रागो का नाता
सुखी वही है जो बीती को
चलता है बिसराता। (गीत २)

भविष्य के प्रति कवि सदा आशावादी रहा है, यहां भी है—

है कडुआ अनुभव मानव का
यह जग जीवन काल अधूरा
किन्तु उसे मालूम नहीं है
कौन, कहाँ, कब होगा पूरा ! (गीत १२)

'प्रणय पत्रिका' का कवि सदैव अपने व्यक्ति के अतर का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करता रहा है। जो कुछ उसने अनुभव किया उसका निश्छल आत्माभिव्यजन जितना इस कवि ने किया दूसरे किसी कवि ने शायद नही किया। मैं इस विषय मे अगली पिछली कृतियो से उद्धरण देना सगत नही समझता। पर 'प्रणय-पत्रिका' की कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

फूल छिपाए भीतर भीतर
काँटे हो जाया करते हैं (गीत ३५)

× × ×

एक दूसरे पर हँसने का
वक्त कभी था, आज नहीं है
राज तुम्हारा मेरा जो क्या
मानवता का राज नहीं है ?
दुर्बलताएँ प्राय दिल की
परवशताएँ ही होती हैं
तुम भी अपनी आख भिगो लो मैं भी अपनी आख भिगो लू
(गीत ३५)

मैं हूँ कौन कि धरती मेरी
भूलों का इतिहास बनाए
पर मुझको तो याद कि मेरी
दिन किन कन्धों को बिसराए यह

बैठो है, और इसी से सोते और जागते मैंने
कभी नहीं बदला अपने को .

(गीत ४)

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आत्मग्लानि तथा मानवीय आस्था का सहज स्वर ये है—

बंद कपाटों पर जा-जाकर
जो फिर फिर सांकल खटकाए,
और न उत्तर पाए उसकी
लाज व्यथा को कौन बताए,
पर अपमान पिए पग फिर भी
उस ड्योढ़ी पर जाकर ठहरें
क्या तुमने ऐसा जो तुमसे मेरे तन-मन प्राण बंधे-से ।
मेरी तो हर सांस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन संदेसे ।

(गीत ११)

और आत्माभिव्यक्ति का सुख इसमें है कि—

हल्के होकर चलते जिनके
भाव तराने बन जाते हैं । (गीत ६)

'प्रणय पत्रिका' का मूल स्वर शृंगार का नहीं, समर्पण का स्वर है । मिलन-यामिनी में जहाँ शरीर पक्ष प्रधान है, प्रणयपत्रिका में प्राण पक्ष प्रधान है । यहाँ जहाँ भी पश्चाताप की ध्वनि उठी है वहाँ भावों की सच्चाई है । वहाँ कृत्रिमता अथवा विदग्धता न होकर अनुभूति की मार्मिक, स्फुट ध्वनि है—देखिय—

मैंने तो हर तार तुम्हारे
हाथों में प्रिय सौंप दिया है
काल बताएगा यह मैंने
ग़लत किया या ठीक किया है
मेरा भाग समाप्त मगर
आरंभ तुम्हारा अब होता है

सुर न मधुर हो पाए उर की वीणा को कुछ और कसो ना !......

जिसको छू जग जाग न उठता
वह कुछ हो, अनुराग नहीं है... ..
तुमने मुझे छुआ, छेड़ा भी
और दूर के दूर रहे भी
उर के बीच बसे हो मेरे सुर के भी तो बीच बसो ना !

(गीत ४)

यहाँ कवि का आत्म पीडन और पश्चाताप कोरे स्वर-शब्दों का ही चमत्कार

नही है। क्योंकि स्वर शब्द से सत्य समर्थ, सशक्त गेय और श्रवणीय कुछ और भी है चाहे कोई उस पर ध्यान दे या न दे —

हो अगर कोई न सुनने
को न अपने आप गाऊँ ?
पुण्य की मुझमे कमी है
तो न अपने पाप गाऊँ ?
और गाया पाप ही तो
पुण्य का पहला चरण है
मौन जगती किन कलकों को छिपाती आ रही है !
मौन आ छेड़ू तुझे मन मे उदासी छा रही है !

(गीत ६)

पर निश्छल आत्माभिव्यक्ति की यह भी तो मन की मथने मसोसन वाली विवशता है—

चुप न हुआ जाता है मुझसे
और न मुझसे गाया जाता
धोखे मे रखकर अपने को
और नहीं बहलाया जाता
शूल निकलने सा सुख होता
गान गुजाता जब अबर मे
लेकिन दिल के अन्दर कोई फाँस गड़ी ही रह जाती है ।

(गीत ५)

सहृदय का यहाँ जो सब से अधिक सह अनुभूति होती है वह कवि की सत्य और निश्छल आत्माभिव्यक्ति के मुखरित राग के कारण होती है—

अपने मन को जाहिर करने
का दुनिया में बहुत बहाना
किंतु किसी मे माहिर होना
हाय न मैंने अब तक जाना
जब सब मेरे उर में सुर मे
द्वंद हुआ है मैंने देखा
उर विजयी होता सुर के सिर हार मढ़ी ही रह जाती है ।
राग उतर फिर फिर जाता है बीन चढ़ी ही रह जाती है ।

(गीत ८)

(यहाँ निशा निमत्रण की यह पंक्ति याद आती है—
राग सदा ऊपर को चढ़ता आमू नीचे झर जाते हैं ।)

और जैसा मैंने पहले कहा— प्रणय पत्रिका का मूल स्वर शृगार का नहीं

आत्म-समर्पण का है। यहाँ प्राण-पक्ष प्रधान है—

नाम तुम्हारा ले लूं, मेरे
स्वप्नों की नामावलि पूरी
तुम जिससे सम्बद्ध नहीं वह
काम अधूरा, बात अधूरी
तुम जिसमें डोले वह जीवन
तुम जिसमें बोले वह वाणी
मुर्दा-मूक नहीं तो मेरे सब अरमान, सभी अभिलाषा।
अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा।

(गीत १०)

और ये भी कि—

जाहिर और मजाहिर दोनों
विधि मैंने तुमको आराधा
रात चढ़ाए आंसू, दिन में
राग रिझाने को स्वर साधा

(गीत ११)

× × ×

अंतर में वह पैठ सकेगा
जो अंतर से निकला

किंतु रही कोरी की कोरी
मेरी चादर झीनी
तन के तार छुए बहुतों ने
मन का तार न भीगा
तुम अपने रंग मे रंग लो तो होली है। (गीत १४)

× × ×

रस्म सदा से जो चल आई
अदा उसे करना मुश्किल क्या
किसको इसका भेद मिला है
मुँह क्या बोल रहा है दिल क्या
पिघले मन के साथ मगर था
जारी यह संघर्ष तुम्हारा
शकुन समय अशकुन का आँसू पलक पुटों से ढलक न जाए।
पुष्प गुच्छ माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए।
(गीत १७)

× × ×

याद तुम्हारी लेकर सोया, याद तुम्हारी लेकर जागा (गीत २७)

× × ×

उन रुपहली यादगारों के लिए, पर,
मैं नहीं आँसू गिराता,
मैं उसी क्षण के लिए रोता कि जिसमे
मैं नहीं पूरा समाता
और मैं जिसमे समाता पूर्ण वह धन
गीत मम मे गूँजता है
तुम इसे पढ़ना कभी तो भूलकर मत आँख से मोती ढुलाना।
(गीत ३०)

× × ×

आग उसकी है, उसे जो बाँह मे ले,
दाह झेले, गीत गाए,
धार उसकी, जो बुझाए प्यास उसकी
रक्त से औ' मुसकराए,
वक्त बातों मे नहीं आता, परीक्षा
सख्त लेता हर किसी की ·· (गीत ३३)

× × ×

हम खुद कुछ कुछ कल की लुड़ियों से

मुख पर संयम रखते,
है एक नयन हँसता, दूजे से आँसू ढलते हैं। (गीत ३४)

× × ×

बंधनों से प्यार जिसको हो गया हो वह कहाँ को जाय
लाख उस पर हो न पहरा कर दिया जाए उसे आज़ाद।
तुम बुझाओ प्यास मेरी या जलाए फिर तुम्हारी याद। (गीत ४०)

'प्रणय पत्रिका' के गीतो मे इतस्तत भावना और कल्पना के साथ जीवन का दुर्दमनीय, सहज सत्य भी व्यक्त है—

क्या प्रतीक्षा हम करेंगे उस घडी को
एक दिल से दूसरा जब ऊब जाए
जिस खुदी के बीच मे हम डूबते हैं
जब हमारे बीच मे वह डूब जाए। (गीत ४७)

× × ×

पख चांदी के मिले हों या कि सोने
के मिले हों, एक दिन झडते अचानक
औ' सभी को देखनी पडती किसी दिन,
जड प्रकृति की एक सच्चाई भयानक,
किंतु उसके वास्ते रोएँ वहें जो
बैठ सहलाते रहे हैं, किंतु उनसे जो बसतो
बात बहलाते, बवडर सात दहलाते
रहे हैं, *जिन्दगी उनके लिए मातम नहीं है।* (*गीत ४७*)

× × ×

चली सरल, शुचि, सीधे पथ पर
किसकी राम कहानी
कुछ अवगुन कर ही जाती है
चढ़ती बार जवानी
यहाँ दूध का धोया कोई
हो तो आगे आए
मेरी आँखों मे फिर भी खारा पानी। (गीत ४१)

× × ×

जगत है पाने को बेताब
नारि के मन की गहरी थाह—
किए थी चिंतित औ' बेचैन
मुझे भी कुछ दिन ऐसी चाह—
मगर उसके तन का भी भेद

सका है कोई अब तक जान !
मुझे है अद्भुत एक रहस्य
तुम्हारी हर मुद्रा, हर वेष,
तुम्हारे नील झील से नैन
नीर निर्झर-से लहरे केश ! (गीत ४९)

× × ×

धन्य पराजय मेरी जिसने
बचा लिया दम्भी होने से

प्रणय-पत्रिका की नितांत व्यक्तिपरक अनुभूतियों द्वारा आत्म निरीक्षण इस प्रकार व्यक्त हुआ है कि रसिक स्वयं अपने को उनमें लीन हुआ अनुभव करता है। ऐसी अनुभूतियों का प्रकाशन 'प्रणय पत्रिका' के गीतों को विशिष्टता प्रदान करता है। देखिये —

दग्ध हृदय से निकला हर स्वर
दीपक राग हुआ करता है। (गीत ५६)

× × ×

भार बनोगे मन के ऊपर जो न सहज उद्गार बनोगे
हे मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे।

× × × (गीत ५७)

राजमहल का पाहुन जैसे
तृण कुटिया वह भूल न पाए
जिसमें उसने हों बचपन के
नैसर्गिक निशि दिवस बिताए
तन के सौ सुख, सौ सुविधा में मेरा मन बनवास दिया सा

× × × (गीत ५८)

जो न करेगा सीना आगे
पीठ उसे खींचेगी पीछे
जो ऊपर को उठ न सकेगा
उसको जाना होगा नीचे
अस्थिर दुनिया में थिर होकर
कोई वस्तु नहीं रहती है (गीत ५७)

× × ×

वज्र बनाई छाती मैंने
चोट करे तो घन शरमाए,
भीतर-भीतर म्लान रहा हूँ
जहाँ कुसुम लेकर तुम आए,

श्रौर दिए रख उसके ऊपर
टूक-टूक हो बिखर पडेगे .. (गीत ४६)

आलोच्य कृति के कुछ गीत और कई पंक्तियाँ मानवता के दिशि-पथ को भी इंगित करती है, जैसे—'हे मन मे अगार अगर तुम लो न दनोगे क्षार दनोगे', या—'मेरे अतर की ज्वाला तुम घर घर दीप दिखा बन जाओ', आदि। इस दृष्टि से एक गीत अत्यधिक मानवीय भाव गुण प्रधान बन पडा है—'सुमुखि, कभी क्या मेरे जीवन मे भी ऐसे दिन आएंगे'—जब 'मानचित्र सा मेरे आगे मानव का उर फैला होगा ?'—और तब—'मानव के सुख, सूनेपन दुख दर्द कभी घर कर जायेंगे ?

इस प्रकार की उक्तियाँ प्राय कवि की मगल भाव कामनामय परिपूर्ण क्षणो की उपज होती है। मानवता के दुख-सुख-सवदन का सहभोक्ता होकर बच्चन ने अनेक ऐसे गीत रचे हैं जिन पर नि सन्देह गर्व किया जा सकता है। बच्चन के गीतो पर निर्णय देते समय उनकी इन रचनाओ की आलोचको ने प्राय उपेक्षा की है। इसी तरह का मानवता के प्रति लिखा एक महाप्राण गीत कवि की 'आरती और अगारे' कृति (स्वय कवि के कथनानुसार 'प्रणय-पत्रिका' और 'आरती और अगारे' की रचनायें परस्पर सम्बद्ध भी हैं) मे भी है—

'एक गीत ऐसा मैं गाऊँ भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी'—क्योकि—'लेती है अवतार अमरता जिसके अन्दर से धरती पर'—इसलिए—'एक पीर ऐसी अपनाऊँ भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी।'

तुलसीदास जी ने भी 'विनय पत्रिका' मे विनय के अनुरूप (और 'प्रणय पत्रिका' में प्रणय के अनुकूल) अपनी विशुद्ध-विशिष्ट मनोकामना इस तरह एक पद मे प्रकट की है—

'कबहुँक हौं यह रहनि रहौंगे।'

सारत कहना होगा कि प्रणय पत्रिका मे कवि ने भाव, भाषा, कल्पना तथा शिल्प की दृष्टि से ह्लादकमई वाणी का प्रसार किया है और जीवन को रागात्मक बनाया है। रागात्मकता की दृष्टि से प्रणय-पत्रिका का गीत कुँज खडी बोली का पूर्ण गीत गुंज है और आत्मपरक गीत-काव्य के विकास का 'विराम चिन्ह' भी। गीत के प्रति कवि की आस्था के यह स्वर बार-बार गूंजते हैं—

'गीत चेतना के सिर कलेंगी, गीत खुशी के सिर पर सेहरा,
गीत विजय की कीर्ति पताका, गीत नीद गफलत पर पहरा।

और इसके साथ ही कवि की यह पूर्व स्वीकारोक्ति कितनी सार्थक लगती है कि 'जीवन की यात्रा के सबसे सच्चे साथी गीत रहे है, मुझे नापना है जग का मग इन पग रागो के सम्बल से, (मिलन यामिनी) और सम्पूर्ण प्रणय-पत्रिका पढकर गीत-रचना के विषय मे यह उक्ति कितनी सटीक और सार्थक लगती है कि—

बुद्धि और विवेक बल से गीत कागज पर उतरते कब ?

संक्षेप और सार रूप मे बच्चन के प्रारम्भिक गीतो से लेकर प्रणय पत्रिका के प्रणय-गीतो तक प्रणय का एक पूर्णवृत्त बनता है जिसका पूर्वार्धि विरह-विषाद के तत्वो से निर्मित है और उत्तरार्ध प्रणयोल्लास से पूर्ण है। इसके साथ ही विरह विषाद मे कही आशा के 'जुगनू' का गीत है तो प्रणयोल्लास मे कहीं 'बीत गई सो बात गई' का चीत्कार भी है। भाव शिल्प की सहजता की दृष्टि से बच्चन के विरह-मिलन के गीत छायावाद के उत्तरार्ध के गीतकार कवियो मे सर्वश्रेष्ठ हैं और जिनमे से कुछ गीत तो निश्चय ही अमर हैं। किन्तु प्रणय के विरह पक्ष का सर्वाधिक सशक्त, मर्मस्पर्शी और मधुर मुखरण अचल के गीतो द्वारा हुआ है। मासल विरह की जितनी दिलकश अभिव्यक्ति अचल के गीतो मे हुई है वह अनुभूतिक तरल बिम्बो की एक अनूठी ही सृष्टि है। बच्चन की अपेक्षा अचल के विरह की विशिष्टता यह है कि उसमे पुरुष और नारी के प्रणय सम्बन्धो के बीच अहम् और दर्प की दीवार ढही हुई लगती है। बच्चन के निशा निमत्रण, मिलन यामिनी और प्रणयपत्रिका के गीतो मे नारी के समक्ष पुरुष के अहम को अधिक महत्व मिला है। बच्चन के प्रणय गीतो मे नारी को उन्मुक्त भोग की वस्तु समझा गया है। पर अचल नारी-पुरुष के प्रणय को शृगार की समरसी भूमिका तक ले जाने मे समर्थ हुए हैं। किन्तु भाव शिल्प की समग्र दृष्टि से बच्चन के प्रणय गीत अचल के प्रणय गीतो की अपेक्षा अधिक गेय हैं। इस दृष्टि से नरेन्द्र शर्मा और नेपाली के कुछ गीत ही बच्चन के गीतो की टक्कर के बन पडे हैं।

बच्चन के गीतो मे ध्वनियाँ वस्तुत महान हैं। इनमे 'श्रेष्ठता' की टक्कर मे 'लघुता' की महत्ता का गान किया गया है—

> कहता एक बूद आँसू भर पलक पाखुरी से पल्लव पर—
> नहीं मेह के लहरे का ही, मेरा भी अस्तित्व यहाँ है। (निशा निमत्रण)
>
> × × ×
>
> एक चिडिया चोंच मे तिनका लिए जो जा रही है।
> वह सहज मे ही पवन उंचास को नीचा दिखाती। (सतरगिनी)
>
> × × ×
>
> एक तिनका भी बना सकता यहाँ पर मार्ग नूतन। (मधुकलश)
>
> × × ×
>
> क्यों उन्मत्त समीरण आता, मानव कर का दीप बुझाता,
> क्यों जुगनू जल-जल करता है तरु के नीडों की रखवाली (निशा निमत्रण)
>
> × × ×
>
> मिटता भय तर तरु का अतर, तम की चादर हर तरुवर पर,
> केवल ताड अलग हो सबसे अपनी सत्ता बतलाता है। (निशा निमत्रण)

और 'मधुकलश तो व्यक्ति की लघुता का ही महाप्राण गायन है जिसका हम

आगे विवेचन करेंगे।

× × ×

गुलामी और उसके संघर्ष के मूल में मानव की आत्म-लघुता की भावना प्रबल होती है। जब जब संघ विधान और उसके स्वामिवर्ग के आतंक की अतियों से आदमी का दम घुटा है उसकी लघुता ने भीषण विद्रोह किया है। इसका विस्फोट विश्व इतिहास की अनेक क्रांतियों में हुआ है। खड़ी बोली काव्य में इस स्वर विद्रोह का विस्फोट मुख्यतः बच्चन के गीतों द्वारा ही हुआ। कवि मिर्ज़ा ग़ालिब ने अपने युग परिवेश में आदमी की आत्मा में हलचल मचाते हुए विप्लव के वलवलों के त्रास-सत्रास को तीव्रता से महसूस किया और कहा—

मौत का एक दिन मुअय्यन है नींद क्यों रात भर नहीं आती ?

और बच्चन के व्यक्ति-कवि ने अपने युग परिवेश में आदमी की इस आत्मिक परेशानी का और उसके त्रास-सत्रास का अत्यंत तीखा दर्द अनुभव किया था और उसे निशा निमंत्रण एकांत संगीत और आकुल अंतर के गीतों में प्रधान रूप में और अत्यंत स्फुट रूप में ध्वनित किया है। निशा निमंत्रण में ऐसी ही तो एक डरावनी रात का चित्रण है जब नींद नहीं आती। और ग़ालिब के इस पेचीदा सवाल का कि 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' कारण है युग जीवन से असन्तुष्ट आदमी के अरमान उसकी अनंत निराशा और उसकी क्रूर नियति ! सच नींद कैसे आए ? क्योंकि रात के अपशकुन आदमी को सोने नहीं देते—

री अशकुन बतलाने वाली
आउ आउ' कर किसे बुलाती तुझको किसी याद सताती,
मेरे किन दुर्भाग्य क्षणों से प्यार तुझे है तम सी काली।
सत्य मिटा, सपना भी टूटा संगिनि छूटी, संगी छूटा,
कौन शेष रह गई आपदा, जो तू मुझ पर लाने वाली। (निशा निमंत्रण)

× × ×

रात रात भर श्वान भूकते,
इस रव से निशि कितनी विह्वल।
बतला सकता हूँ मैं केवल,
इसी तरह मेरे उर में भी असंतुष्ट अरमान भूँकते। (निशा निमंत्रण)

संक्षेप में, मिर्ज़ा ग़ालिब ने मौत का एक दिन निश्चित होने पर भी नींद न आने वाले जिस कारण को जानने के लिए छटपटाहट व्यक्त की थी बच्चन ने उसे निशा-निमंत्रण के गीतों में सूक्ष्मतः ध्वनित प्रतिध्वनित कर सन् १८५७ के बाद से यहां का आदमी जिस नियति की निर्ममता को भोग रहा था उसका आत्मबोध कराया है। यह सब कुछ वस्तुतः आधुनिक संक्रांति कालीन मानसिक प्रतिक्रिया का परिणाम था और बच्चन के तत्कालीन काव्य-सृजन को इसी परिप्रेक्ष्य में पढ़ा जाना चाहिए।

बच्चन के सम्पूर्ण गीत-काव्य में और अधिकांशतः निशानिमन्त्रण, मधुकलश,

मिलन यामिनी और प्रणय पत्रिका मे (विशेषत मिलन यामिनी के अन्तिम ३०-३१ गीतो मे) रग, गन्ध और स्पर्शमय ध्वनिपूर्ण मांसल चित्रो बिम्बों की छटा न केवल अनूठी है अपितु अपूर्व भी है। छायावादी काव्य मे रग, ध्वनि और गन्धयुक्त काव्य-बिम्ब निश्चित ही उत्कृष्ट व अभिजात्य कोटि के हैं। किन्तु मांसलता का अभाव होने के कारण मन उनमे अधिक नही रम पाता। सम्भवत बच्चन का काव्य इसलिए भी छायावादी काव्य की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय और पठनीय सिद्ध हुआ है।

रगो की दृष्टि से बच्चन के गीतो मे छाया प्रकाश (लाइट एण्ड शेड्स यानी हारमोनिक अवस्था) का प्राधान्य है। यहाँ छायावादी गीतो की जैसी 'प्यूअर' (परिष्कृत या अभिजात्य) अवस्था का अभाव है। अपवाद दूसरी बात है।

बच्चन के विशिष्ट गीतों को पढते हुए दिमाग प्राय इस दिशा मे भी सोचने लगता है कि इन गीतो के भाव प्रकाशन मे कुछ ऐसे सगीत और राग तत्वो का समन्वय है जिसे काव्य तथा सगीत का ममज्ञ अपनी शोध जिज्ञासा का विषय बना सकता है। उदाहरण के लिए 'प्रणय पत्रिका' का 'बीन आ छेडूँ तुझे मन मे उदासी छा रही है' गीत लिया जा सकता है। सम्पूर्ण गीत मे व्यक्ति मन की जिस उदासी का सहज भाव प्रकाशन हुआ है, तदनुकूल स्वर रूप की सगति भी प्रनीत होती है। बच्चन के सम्पूर्ण काव्य म ऐसे कई गीत हैं। मैंने तो यहाँ मात्र तथ्य की ओर इगित करना चाहा है। जैसा मैंने ऊपर कहा यह काम तो काव्य सगीत के किसी जानकार द्वारा ही हो सकता है।

और निष्कर्ष से पूर्व एक प्रश्न उभरता है कि बच्चन के गीतो को महान कहने का ठोस आधार क्या है? इसका उत्तर गीत रचना के आधारभूत तत्वो की सश्लिष्टता को कसौटी मानकर ही दिया जा सकता है। पर यहा गीत के आधारभूत तत्वो पर विचार-विश्लेषण करने का अधिक अवकाश नही है। (इस विषय मे लिखे गये मेरे शोध-प्रबध 'छायावाद के उत्तरार्ध के गीतकार कवियो का विषय और शिल्प विधान' मे आप विस्तृत विवेचन पढ सकेंगे।)

बहुत सक्षेप म गीत के आधारभूत तत्व हैं—आत्मनिष्ठता, गेयता, वैयक्तिकता भावान्विति, आनुभूतिक-ताप त्वरा, छद प्रास पोषित सर्व सवेद्य सम्प्रेषणीयता, भाव तथा स्वर शिल्प का सतुलन व समन्वय। और इस कसौटी पर जब हम प्रारम्भिक रचनाओ से प्रणय-पत्रिका (इसके आगे के सग्रहो मे आत्मपरक गीत सख्या मे बहुत कम हैं) तक के गीतो को पढने परखने हैं तो प्रतीत होता है कि खडी बोली के श्रेष्ठ गीत कार कवियो मे बच्चन का गीतकार सर्वाधिक सक्रिय सहज और सशक्त है। अत मेरा मत है कि हिन्दी के गीत-काव्य के अनुष्ठान का आरम्भ यदि विद्यापति से होता है तो पूर्णाहुति बच्चन के गीत-काव्य द्वारा दी गई है। इसके उपरान्त नवगीत भले ही नाजुक तथा नव बिम्बों की मुखरित सृष्टि की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं किन्तु उनके नवायामो के आगे अनेक जटिल प्रश्न भी खडे खडे हैं। यदि शिल्प का साँचा सही बैठ गया तो नवगीत का नया व्यक्ति-आत्मबोध निश्चय ही गीत सृजन के क्षेत्र

मे एक क्रांतिकारी क़दम सिद्ध होगा। पर अभी इस सम्भावना के सत्य सिद्ध होने के नक्षत्र धुंधले दिखलाई पड़ते हैं।

धार के इधर उधर

जग-जीवन की आन्तरिक तीव्र धारा मे बहते हुए भी एक आगरूक भाव-प्रवण कवि की दृष्टि तटों के महत्वपूर्ण दृश्यों को अनदेखा नहीं कर पाती। बच्चन जी की प्रारम्भिक रचनाओं में ही इस तथ्य का आभास होता है।

आलोच्य कृति मे राष्ट्र की स्वतन्त्रता विषयक गतिविधियों से प्रेरित भावो का स्वर प्रमुख है। इन गीतों मे यद्यपि सामयिक विषय-बोध प्रधान है किन्तु विशेष बात यह है कि इन स्वरों द्वारा देशवासियों को अपने कर्तव्य पालन का बोध कराया गया है। यहाँ उद्बोधन मे ओज है, गौरव का गान है—

नगाधिराज शृंग पर खड़ी हुई
समुद्र की तरंग पर अड़ी हुई
स्वदेश में जगह जगह गड़ी हुई
अटल ध्वजा
हरी, सफ़ेद,
केसरी!

× × ×

अनेक शत्रु देश पार हैं खड़े, अनेक शत्रु देश मध्य हैं पड़े
कृपाण कभी नहीं बिना हुए सजग कृपाण हाथ में सदा लिए रहो
(देश के नवयुवकों से)

× × ×

समस्त शक्ति युद्ध में उडेल दे, गनीम को पहाड़ पार ठेल दे
पहाड़ पथ रोकता, ढकेल दे, बने नवीन शौर्य की परम्परा
(देश पर आक्रमण)

× × ×

हल्का फूल नहीं आज़ादी वह है भारी ज़िम्मेदारी
उसे उठाने को कन्धे के। भुजदडों के बल को तोलो!
(गणतन्त्र दिवस)

और पृथ्वी के प्रति प्यार को यहाँ कितनी पैनी भंगिमा से व्यक्त किया गया है—

यह पृथ्वी कितना सुख पाती
अगर न इसके वक्षस्थल पर यह दूषित मानवता होती। (पृथ्वी रोदन)

विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि सामयिक तथा दाहरक विषयों पर भी इस कवि का ध्यान हटा हुआ नहीं है। उसने इन विषयों पर कविताएँ कम लिख

कर गीत ही रचे हैं। गीत आत्मपरक होने के कारण अनुभूतिमय ही अधिक सुन्दर होता है। पर बच्चन के वाह्यपरक गीतों म भी कही कही अनुभूति प्रबल होकर अभिव्यक्ति मे रूपायित हुई है। किन्तु इन गीतो मे 'दिनकर' की रचनाओ जैसा ओज और चिन्तन न होकर साधारणता है। वस्तुत 'धार के इधर-उधर' गीत लिखकर बच्चन गीतकार अपने सृजन पथ से कुछ पृथक-सा प्रतीत होता है।

पर कुल मिलाकर धार के इधर उधर कृति मे कवि ने अपने राष्ट्र-धर्म की समुचित अभिव्यक्ति की है। कही-कही ओजस्वी वाणी मरे जन मे भी जान डाल देने वाली है। बाह्य विषयो पर बच्चन की वाणी का यह ओज पहली बार इस कृति मे इतने सतुलित रूप म व्यक्त हुआ है। देखिए—

नहीं मागता समर्थों से इसीलिए इसान बडा है

या—

सुयश मिला कभी नहीं पडा हुआ।

आरती और अगारे

इस कृति की स्थापना कई दृष्टियो से विशेष कही जाएगी। इस प्रसग मे मुझे श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' जी के एक पत्र की याद आ गई। उन्होने लिखा— 'जोशी जी आरती और अगारे लिखकर बच्चन जी ने इस युग की कविता का बड़ा पुण्य कमाया है। धरती से लेकर आकाश तक देखना है यह आदमी भी।" वस्तुत आलोच्य कृति इस कथन की सिद्धि है।

आरती और अगारे' के पूर्व भाग की कविताओ मे उन कवियो की स्तुति या आरती है जिन्होंने अपनी अपनी भाषा मे जन जीवन की भाव राशि को प्रकट किया है—

गालिब वह अलबा ला दो मेरे जीवन में
जिससे मेरा अदाजे बयाँ कुछ और बने
क्यों शेर तुम्हारे मुझको ऐसे लगते हैं
जैसे घोले हो जीवन की सच्चाई में
जैसे बोले हों वे प्राणों की भाषा में
जो नहीं पड़ा करती है हाथापाई में ··
उन सब कविताओं को मैं मरी समझता हूँ
एरियल कान का जिनको नहीं पकड़ता है
रेडियो जबाँ का जिन्हें नहीं फैलाता हैं
उनका हर अक्षर कमि कीटों का कौर बने (गीत २२)

उक्त पक्तियो मे गालिब की भाव भगिमा देख, उसकी महत्ता और उसके प्रति आस्था की ध्वनि के साथ ही कवि का कवि-कविता वाला सम्मत आदर्श भी स्थल स्थल पर व्यक्त हुआ है। 'आरती और अगारे' की कुछ कविताओ मे कवि के पारिवारिक जीवन

काव्यावरण भी अंकित हुआ है, जिसे गद्य में न कहकर पद्य में कहा गया है। किन्तु इस पद्य में गद्य का सर्वथा इतिवृत्त ही नहीं, पद्य का भाव-रस भी है। 'आरती और अंगारे' की उत्तर भाग की कविताओं में दम्भियों-दुराग्रहियों के चरित्र के प्रति करारी चोट है। बयासी, तिरासी और सौ संख्या के गीतों में यह चोट व्यापकता से अङ्कित है और मानव के स्नेह संवेदन-समादर के प्रति कवि की भावना भी उतनी ही प्रबलता में विद्रवित होती गई है।

'आरती और अंगारे' कृति में प्रथम बार कवि ने कला, कविता, जीवन और मानवीयता के प्रति अपने प्रौढ़ भावों विचारों को वाणी दी है। इन भावों-विचारों में कवि का गम्भीर अध्ययन, मनन, चिंतन एवं सूक्ष्म, सन्तुलित तथा सशक्त भावाभिव्यंजन हुआ है। विशिष्टता यह है कि कवि ने यहाँ कहीं यदि जटिल विषयों की परिभाषा भी की है तो वह काव्यमय ही है, बौद्धिक नहीं।

काव्य भाषा की महत्ता और उसकी कसौटी स्थापित करते हुए कवि ने कहा है—

> भाषा मूर्ति नहीं पत्थर की
> मेरे कहने में कुछ गलती—
> अष्टधातु की वह प्रतिमा है
> जो हर युग में गलती-ढलती
> एक गला सबको करना है
> अन्तस्तल में ज्वाल जगा कर (गीत ६)

और प्रकारान्तर से—

> जिन दिल, जिन बोलों को
> समय नहीं छू ने पाता है (गीत १७)

'अरसिकेषु कवित्त निवेदनम् शिरसि मा लिख, मा लिख'—प्रसिद्ध उक्ति की प्रतिक्रिया कवि द्वारा इस प्रकार व्यक्त हुई जिसमें सहज व सरस वाणी के प्रति असीम आस्था ध्वनित है—

> मना किया सिर में लिखने को
> जो, विधि ने उसको ही आंका
> नीरस को रसमय कर देना
> हो मेरी रसना का साका

क्योंकि—

> कवित, रसिक सुन तन-मन धुनता
> तो कवि ने एहसान किया क्या? (गीत २)

वस्तुत.

> कलाकार वह बड़ा कथा पर
> मरतो, जो हावी होता है (गीत ४१)

और कवित्व यदि अनहदी अभिव्यंजन का ही माध्यम नहीं है तो कवि की यह चिंता जीवन के कितने आयामों की ओर इंगित कर रही है—

"किंतु जीवन की हदों के बीच में भी
कम नहीं कहने सुनाने को पड़ा है
मानवों के दिल, दिलों की हसरतों को
आस को औ' प्यास को औ' वासना को
शोक, भय, दया, महत्वाकांक्षा को
आज रक्खा जा नहीं सकता दबाए। (गीत ११)

मैं अभी जिन्दा, अभी यह शव परीक्षा, मैं तुम्हें करने न दूँगा।
आँख मेरी आज भी मानव नयन की गूढ़तर तह तक उतरती।
आज भी अन्याय पर अंगार बनती, अश्रुधारा में उमड़ती।
जिस जगह इन्सान की इन्सानियत लाचार उसको कर गई है।
तुम नहीं यह देखते हो मैं तुम्हारी आँख पर अचरज करूँगा।
गीत १००)

कवि के मत से कविता—

कविता, जाती के प्रांगण में,
जीवन की किलकारी। (गीत ६६)

जातियों के उत्थान पतन का सम्बन्ध उनके कंठ (वाणी) से कितना अटूट है—

जातियाँ जातीं पतन की ओर जो जब
कंठ पहले हैं गँवातीं
और जब उत्थान को अभियान करतीं
तब, प्रथम आवाज आती (गीत २४)

कला-कविता और रचनात्मक स्वप्नों की वास्तविक सृष्टि स्थूलता द्वारा नहीं जन अन्तर की क्रांति द्वारा निर्मित होती है—

कला नहीं बसती पत्थर में
स्वर में, रंगों की थैली में
बाजन्तर में, कंठ, लेखनी में,
तूली, कीलों, छैनी में
कोई मंदर जब जन अन्तर
मंथन करता स्वप्न उभरते,
कला उभरती, कविता उठती,
क्रांति निखरती, विभव बिखरते।

के माध्यम से उसे कितनी सूक्ष्मता से ध्वनित किया है—

स्वप्न जीवन का, कला है, जो कि जीवन
में, निखरकर वह कला से झाकता है
यह महज दर्पण नहीं है, दीप भी है
जो अमरता के शिखर को आंकता है।
(गीत २७)

जीवन के अनेक पहलुओं से गुजर कर और तिक्त-मधु अनुभवों को भोग कर 'आरती और अगारे' के कवि ने जिस इडियम और अदा से कथ्य और सत्य को रूपायित किया है वह जीवन के यथार्थ का कलेजा फाड़कर ध्वनित होता है। देखिये—

मन मे सावन-भादों बरसे
जीभ करे, पर, पानी पानी,
चलती फिरती है दुनिया में
बहुधा ऐसी बेईमानी····
मधुवन भोगे, मरु उपदेशे मेरे वश रिवाज नहीं है।

× × × (गीत ८१)

बैंड, बिगुल, झंडे सेना के
ऊपर तुम ऐंठे सेनानी
सड़ के अन्तरपट पर लिखता
हूं मैं अपनी जीत कहानी
गीत सुनाकर, तुम से ऊँची
गर्दन करके क्यों न चलूं मैं
केवल अपने हाथो के बल मन की वीणा साथ लिए मैं।

× × × (गीत ४७)

घर की छत के ऊपर चढ़कर
जो चिल्लाते, शोर मचाते
अपना पोलापन दिखलाते
अपना बोनापन बतलाते······
हल्के उठ जाते हैं ऊपर
भारी भार लिए हैं नीचे
जो आगे-आगे इतराते
देख उधर से, वे हैं पीछे

× × × (गीत ४८)

कांटों से जो डरने वाले
मन कलियों से नेह लगाएँ
घाव नहीं हैं जिन हाथों में

उनमे किस दिन फूल सुहाए
नगी तलवारों की छाया
में सुन्दरता विचरण करती
और किसी ने पाई हो पर कभी नहीं पाई है भय ने।
× × × (गीत ७०)

सघय रहित जीवन का पथ केवल कायरता के लिए है। और कायरता से बड़ी मृत्यु क्या होगी ?

साफ, उजाले वाले रक्षित
पथ मरो के कदर के हैं। (गीत ७०)

और सघपरत जीवन का दुर्निवार सत्य कवि के कठ से इस प्रकार फूट पडा—

पाप हो या पुण्य हो मैंने किया है
आज तक कुछ भी नहीं आधे हृदय से
औ न आधी हार से मानी पराजय
औ न की तसकीन हो आधी विजय से। (गीत ५२)

और कवि के इस अनुभव मे कितना सत्य है यह भुक्तभोगी जानते हैं—

कुछ बडा तुझको बनाना है कि तेरा इम्तहा होता कडा है
लोह सा यह ठोस बनकर है निदलता जो कि लोहे से लडा है। (गीत ५४)

'आरती और अगारे' म मानवीय स्नेह और सवेदना की हिमायत मे कवि ने जो उद्गार व्यक्त किये है वे शीघ मानस म उतरते है—

तुमने माँगा हृदय प्यार कर सकने वाला
तुम्हें शिकायत करने का अधिकार नहीं है।
× × × (गीत ६०)
बढ़ता है अधिकार सदा आतक जमा कर
स्नेह प्रतीक्षा मे अपलक पथ जोहा करता (गीत ६४)

वास्तविक स्नेह के आगे मानव का यह रूप भी कितना स्वाभाविक है स्पष्ट है—

मानव चाहे सब दुनिया से
अपना रूप छिपाए
प्यार चाहता नानतना भी
नग्नमना रह पाए (गीत ६५)

व्यक्ति जीवन की वास्तविकता के प्रति कवि ने कहा है—

किसके सिर का बोझा कम है
जो औरों का बोझ उठाए
होठो के सतही नाते से
दो तिनके भी रख हट पाए

कटती है हर एक मुसीबत एक तरह बस झेले भैरे !

× × × (गीत ६३)

यह जीवन औ' ससार अधूरा इतना है

कुछ बे तोड़े कुछ जोड नहीं सकता कोई। (गीत ६६)

जीवन धारा के प्रवाह मे बहन वाला हर व्यक्ति इस सत्य को जीता और भोगता है, आगे बढता है, अतत मंजिल पर पहुँचता है—

सहस विरोधो का आलिंगन
कर चलती जीवन की धारा (गीत ६०)

× × ×

चलना ही जिसका काम रहा हो दुनिया मे
हर एक क़दम के ऊपर है उसकी मंजिल
जो कल पर काम उठता हो वह पछताए (गीत ६४)

मिथ्या यश अर्जन की इच्छा करने वाले प्रचारवादियो और दभियो के प्रति कवि के इस कटाक्ष म कितना युग-सत्य है, यह बताने की आवश्यकता नही है—

जो कि अपने को दिखाते घूमते हैं
देखते खुद को कहाँ हैं
और खुद को देखने वाली नज़र
नीचे सदा रहती गडी रे। (गीत ८३)

और कमठ जीवन का परिचय यह है—

काम जिनका बोलता है वे कभी भी
वे किसी से भी नहीं कुछ बोलते हैं
और हम जो बोलने का काम करते
शोर करके पोल अपनी खोलते हैं। (गीत २७)

और कवि की इस दर्पोक्ति का भी हर कर्मठ व्यक्ति साझीदार हो सकता है—

कामना कुछ प्राप्त करने की हुई तो
प्रथम अधिकारी बना हूँ
और फिर मैं काल के, ससार के औ'
भाग्य के आगे तना हूँ
मैं वहाँ झुककर जहाँ झुकना ग़लत है
स्वर्ग ले सकता नहीं हूँ। (गीत ८४)

निश्चय ही 'आरती और अगारे' की कविताओ मे कवि ने अपने सृजन को अनुभव, अनुभूति और अभिव्यक्ति का व्यापक आयाम दिया है जिसमे कुल मिलाकर मानवीय आरती व आस्था का स्वर ही प्रधान है। केन्द्र मानव है, मानवता की आरती ही उनकी आरती है—

'गीत वही गाएगा सबको जो दुनिया की पीर सकेले'

यथार्थ जीवन का महत्त्व जीवन को देखने (समझने भोगने) से ही तो पता चलता है—

मैंने जीवन देखा जीवन का गान किया '

काव्य भाषा की दृष्टि से कवि ने उर्दू तथा बोलचाल के अनेक शब्दो और मुहावरो का समाहार अपनी रचनाओ मे खुलकर किया है। अत बच्चन की काव्य भाषा यहा भाव वाहक है और शायद यही उसकी लोकप्रियता का विशेष कारण है। रेडियो एरियल आदि विदेशी शब्दो का प्रयोग भी इस कृति मे कई स्थलो पर देखने मे आता है जो अस्वाभाविक सा नही लगता।

बुद्ध और नाचघर

२८ मुक्तछन्द की कविताओ को पढकर एक ओर नयी कविता शैली की ओर ध्यान जाता है और दूसरी ओर उसमे अधिक आलोच्य कविताओ म कथ्य की सफाई और सहजता प्रतीत होती है। सम्भवत कुछ आधुनिक प्रकार के मुक्त छन्द का पहल पहल प्रसाद जी ने प्रयोग किया। (देख महाराणा का महत्व' कविता जून १६१४ की) और निरालाजी ने तो आगे चलकर उसकी पूर्ण प्रतिष्ठा ही की। किन्तु यहाँ मुक्त छद छायावादी भावभगिमा लिये है। बच्चनजी ने मुक्त छद मे सन १६४३ मे बगाल का काल कविता लिखी जो सम्भवत तब तक की खडी बोली की कविताओ म एक ही विषय पर लिखी सबसे लम्बी मुक्तछदी कविता कही जा सकती है। इस कविता म न छायावाद का भाव छायाभास था और न नयी कविता की जैसा शिल्प-श्रममय अभिव्यजन या विचित्र बिम्ब विधान। यहा कवि ने अपनी कल्पना और सृजन सृष्टि का रहस्य अपने आप ही खोल दिया—

प्रलय के उर में उठी जो कल्पना वह सृष्टि।
प्रलय पलको पर पला जो स्वप्न वह ससार।

(सृष्टि कविता)

इधर बुद्ध और नाचघर की कविताओ मे प्राय गीत और लय का तारतम्य और भावो विचारो का अर्थात कथ्य का सौंदर्य विद्यमान है। न तो इन कविताओ मे उपमाओ या प्रतीकों का पेचीदापन है और न चमत्कार का चक्कर। कवि ने साफ कहा है—

उपमाएँ होती हैं धोखेबाज
सच्चाई का लगता नहीं अन्दाज

(कडुआ अनुभव)

आलोच्य कृति की कविताओ मे (मुक्त जी के अनुसार कह ता) अभिधा द्वारा ही अर्थ का भावन होता है और बिम्ब विधान पूरा उतरता है। उदाहरण के लिए 'दीन विहगिनि और चाटो की तरफ कविताएँ पढी जा सकती है। यथार्थवाद की अभिव्यजना बुद्ध और नाचघर कविता म देखी जा सकती है। इस कविता से ही बच्चन

का कवि व्यंग का पैना डंक धारण करता है। आगे इसका प्रहार प्रसार प्रक्षेपास्त्र के वार की तरह बढ़ता गया है। आगे यथास्थल हम इसकी चर्चा करेंगे। आलोच्य कृति की 'दोस्ता के सदमे', 'नीम के दो पेड' और 'कड़ुआ अनुभव' आदि कविताओं में जैसे जीवन के अनुभवों की चट्टानों पर खुदे हुए अभिलेख हैं—

'मेरी बात यह कर गांठ
कायर के प्रहारों से
कभी कोई नहीं मरता
वीर है वह
घाव जो आगे लिये हो दुश्मनों के
और पीछे दोस्तों के (दोस्ता के सदमे—२)

इन कविताओं में निश्चय ही अभिधात्मक अभिव्यंजना पैनी है। तुलना के लिए सन् १९४३ की 'बंगाल का काल' कृति पढ़ी जा सकती है। लेकिन कहीं-कहीं कवि के कथन में चिढ़न और रूक्षता मात्रा और मर्यादा के बाहर भी हो गई है—

• • • उसी दिन
विधाता के मुँह पर थूक
दुनिया को लगा दो लात
कर लूंगा आत्मघात!

निश्चय ही यहाँ आवेश का डोज़ बहुत ज्यादा हो गया है।

त्रिभंगिमा

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, त्रिभंगिमा में तीन प्रकार की शैली में लिखी कविताएँ हैं—लोकगीत शैली, साहित्यिक गीत शैली और मुक्त-छन्द-शैली। लोकगीत-शैली खड़ी बोली गीत-काव्य के लिये अभी एक अभिनव प्रयोग की प्रक्रिया ही कही जायगी। बच्चन जी द्वारा लोक-गीतों की धुनों पर लिखे गये गीतों के प्रकाशन और पठन-पाठन से खड़ी बोली कविता के पाठक की पहली प्रतिक्रिया यह होती है कि उनमें वह बात नहीं है जिसकी बच्चन के गीतों से वह प्रत्याशा करता है और विगतकाल की कविताओं से उसकी पूर्ति पाता रहा है। निःसन्देह यह प्रतिक्रिया स्वाभाविक है। असल में लोकधुनों पर आधारित गीत रचना से पूर्व बच्चन ने सुन्दर साहित्यिक गीत रचे। साहित्यिक गीतों से तात्पर्य भाव प्रधान उन कलागीतों से है जो कवि व्यक्ति के व्यक्तित्व को ध्वनित प्रतिध्वनित करते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से लेकर अब तक प्रायः यह दुहराया जाता रहा है कि 'लोकगीत' का विकसित रूप ही साहित्यिक गीत हैं। किंतु यह कथन अपने आप में न तो स्पष्ट ही है और न लोकगीतों तथा साहित्यिक गीतों के पृथक-पृथक अस्तित्व का बोधक है, जब कि तथ्य यह है कि लोक-गीतों तथा साहित्यिक गीतों में निश्चय ही कुछ पार्थक्य है।

गीन रचना करने का व्यक्तिगत कुछ अनुभव होने के आधार पर सब प्रथम मैं यह कह सकता हूँ साहित्यिक गीतकार कवि लोकगीतो के विषय शिल्प से परिचत भी हो यह अनिवाय नही है। वह लोकगीतो से सवथा अपरिचित रहकर भी साहित्यिक गीत रच सकता है। मेरे विचार से साहित्यिक गीत लोकगीत और कवि सम्मेलनी आदि गीतो की रचना का परस्पर सम्बध जोडना-समझना स्पष्ट दृष्टि का परिचायक नही है।

साहित्यिक गीतो का अस्तित्व मुख्यत कवित्व एव सगीत के तत्वो के समन्वय मे है। पर लोक गीतो का अस्तित्व उनकी सहजता मे है। साहित्यिक गीत गमलो मे लगे गुलाबो जैसे हात हैं और लोकगीत होते हैं फल-फूलदार जगली पोधो जैसे। गमलो के गुलाबो का अपना सौंदय है किन्तु उन पर किसी साहब या साहिबा का अधिकार अवश्य होता है। पर जगली पौधो और उनके फल फूलो पर तो पशु पक्षियो तक का समान अधिकार होता है। हा दोनो का लक्ष्य एक है—अनुभूति का सब सवेद्य मार्मिक अभिव्यजन। आचलिकता (भाषा तथा सामायिक रीति रिवाज) के परिवेश से युक्त या मुक्त हाकर भो जिन गेय रचनाओ मे मानव के आदिम सस्कारो की ध्वनि सुनाई दे उन्हें हम सामान्यत जन-गीत या एक विशेष अवस्था आ जाने पर लोक गीत कह सकते हैं।

वस्तुत लोकगीत शली म लिखे खडी बोली के गीत गीतकाव्य के लिये अभिनव प्रयोग के प्रयास है। प्रयोग की सफलता असदिग्ध कभी नही हुआ करती। फिर लोकगीतो मे [illegible] वर्णों ध्वनियो का जो लोच लचकाव होता है उसके लिए हमारी खडी बोली अभी कितनी समथ सिद्ध है यह अपने आप मे भाषागत परीक्षण का एक गभीर प्रश्न है। लोक धुनो पर रचे इन गीतो की नागरिक जन जीवन पर कोई प्रतिक्रिया होगी यह सोचना भी गलत है। इसका परीक्षण तो जन सामान्य जीवन (विशेषत ग्रामीय) के क्षत्र म ही हो सकता है। पर इसके लिये पर्याप्त समय चाहिए। हम जो साहित्यिक सिद्धान्तो के आवर्तों मे ही गीत की इयत्ता-महत्ता का फैसला लेने के आदी हैं आलोच्य गीतो के सजन और रसास्वादन पर तब तक कुछ कहने के अधिकारी नहा हैं जब तक कुछ परिवर्तित दृष्टिकोण न अपनाएँ। इन गीतो म नागरिक जीवन का नही ग्रामीय अथवा सामान्य जन-जीवन का सूक्ष्म-सहज-स्वर होता है जिसके लिए हमारी चेतना की भूमि अभी सिंची नहीं है। एक मोटा कारण यह है कि अभी हम ग्रामीय या सामान्य जीवन और उसके अनुगु जन को आत्मसात नही कर पाए हैं। एक सूक्ष्म तथ्य यह भी है कि इस प्रकार के गीतो मे ग्रामीय जन मन-जीवन की सहज व स्वाभाविक (रूढि नही) मनस मान्यताओ के भावो का हा समाहार किया गया है जिसका यथासमय पच जान पर ही उसका रस अनुभव हो सकगा। इस तथ्य की पुष्टि के लिए विद्यापति तथा रवीन्द्र के गीतो को पढा जा सकता ह। इन्हे पचा कर हा रस की निष्पत्ति हा पाती है। इन गाना म सगीत की स्वत साध्य गूज वस्तुगत अनुरणन तथा नृत्य मुद्रा आदि की विशेषता होती है।

इस प्रकार के गीतो मे लय लालित्य, शब्द-योजना एव भाव भगिमा का अत्यन्त कलात्मक योग होना है जिसकी बारीकी के भीतर से रस निकाल लेना सहृदय पाठक के लिए कठिन कार्य नही हो सकता। मेरे विचार से इन गीतो से निश्चय ही लोक-भाषा एव खडी बोली का विपर्यय कुछ कम होगा। कुछ पुरानी भूली हुई लयें नई-सी बनकर सुनने को मिलेंगी। कला-सर्जना मे स्मृतियो आवृत्तियो का अपना विशेष रसानन्द होता है। पर आवश्यकता इस बात की है कि इन गीतो का सृजन तथा रसास्वादन साहित्यिकता की दृष्टि से नही, सहजता की दृष्टि से हो।

प्रश्न है कि खडी बोली मे लोक-धुनो पर आधारित शैली मे लिखे गीतो का 'हिन्दी गीत काव्य' मे क्या स्थान है? हिन्दी की बोलियो (खडी बोली, ब्रज, राजस्थानी, अवधी, बुन्देलखण्डी, हरियाणवी, मैथिली आदि) म लोक गीतो की शैली मे रचा गया 'गीत काव्य' है, जिसका अभी भी साहित्यिक महत्व स्यात कम और लोक महत्व अधिक है। पुराने कवियो मे विद्यापति, कबीर, मीराबाई, सूरदास (अष्टछाप के कवियो का) तथा तुलसीदास का गीत-काव्य साहित्य तथा लोक दोनो ही दृष्टियो से महान है। खडी बोली मे बच्चन के अलावा नवीन, नेपाली, रघुवीर शरण 'मित्र', 'नीरज', केदारनाथ सिंह, ठाकुर, रामदरस मिश्र, रवीन्द्र भ्रमर, शम्भूनाथसिंह, सर्वेश्वरदयाल, उमाकान्त मालवीय, ठाकुर प्रसादसिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार ब्रज मे मेघश्याम शर्मा राजस्थानी मे मुकुल गजानन वर्मा बुन्देलखडी मे वशीधर पडा, हरियाणवी मे देवीशकर 'प्रभाकर' एव प० हृदयराम आदि का नाम उल्लेखनीय है। कहने का तात्पर्य यह है कि लोक-गीतों की शैली मे रचे गये हिन्दी 'गीतकाव्य' का अपना स्वतन्त्र महत्व है।

प्रश्न है कि क्या निराला, महादेवी[1] और व्यापक दृष्टि से छायावादी कवियो ने भी लोकगीतो की शैली पर गीत रचे है? पर यह सोचना असगत है कि छायावादी गीतो मे लोक गीततत्व है। द्विवेदी युग के जन-कवियो मे लोक गीतों के विषय-शैलीगत-तत्व कुछ उभरे हैं। छायावादी युग के दो दिग्गज स्वच्छन्दतावादी कवियो माखनलाल चतुर्वेदी तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने लोक धुनो पर आधारित गीतो की रचना करने के स्फुट प्रयास किये हैं। नवीन जी के कुछ गीत तो शुद्ध लोकगीतों की धुनो की भूमि पर लिखे गये हैं। उनके सग्रहो मे ऐसे गीतो को पढ पाना सहज है। पर भणति की सूक्ष्मभगिमा वहाँ नही है। सुभद्राकुमारी चौहान का 'खूब लडी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' एक ऐसी ज्वलन्त रचना है जिसका शिल्प लोकधर्मी है। (मुकुल पृ० ५८)

सक्षेप मे, इस भ्राति का उन्मूलन हो जाना चाहिए कि मात्र प्रकृत भावो की

---

१. प्रो० धनजय वर्मा ने 'निराला' ग्रन्थ में पृ० १३२--३३ पर निराला को लोक गीतकार ही सिद्ध किया। इधर महादेवी ने भी 'दीपशिखा' की भूमिका मे अपने गीतों के सन्दर्भ मे हो लोक-गीतों के सृजन की चर्चा की है।

अभिव्यक्ति जिन गीतो मे हो वे ही लोक गीतो की परम्परा मे रखने योग्य गीत हो सकते हैं। वस्तुत लोक धुनो पर आधारित, संस्कारगत भावास्था से प्रेरित तथा आंचलिक लय लालित्य से पूर्ण समर्थ गीतकार कवियो द्वारा लिखे कतिपय गीत भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। खडी बोली मे लोक गीतो की धुनो पर गीत लिखने वाले कवियो मे सर्वाधिक एव अपेक्षाकृत सफल सृजन बच्चन ने किया है। विषय एव शिल्प, दोनो ही दृष्टियो से उनके गीत ध्यान आकर्षित करते हैं। 'त्रिभगिमा', और चार खेमे चौंसठ खूंटे' इन दो कृतियो मे बच्चन के लोक गीतो की धुनो पर रचे गये लगभग ३५-४० गीत सग्रहीत हैं। इन गीतो के सृजन म उत्तर प्रदेश के प्रचलित लोक-गीतो तथा कुछ राजस्थानी लोक गीतो[1] की धुनो का आधार लिया गया है। आलोच्य शैली मे लिखे गये बच्चन के गीतो म बच्चन के मध्यवर्गीय जीवन के पूर्व संस्कारो का विशेष हाथ है। इसी अनुपात मे इन गीतो की संख्या भी कम है।

बच्चन के अतिरिक्त अन्य नवगीतकारो के पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित होने वाले गीतो मे लोक-गीतो के विषय एव शिल्प का आधार प्रकट होता है।

प्रश्न होता है कि आज इस बुद्धिवादी युग मे लोक गीतो की ओर लौटने की बात करना क्या बुद्धिसगत है ? उत्तर यह दिया जा सकता है कि सभ्यता की तेज दौड मे हमारे अन्दर सास्कृतिक संस्कारो का दल जाने अनजाने कार्य करता है। जिन संस्कारो की आवश्यकता समाप्त हो जाती है वह पपीते के उस पेड की तरह आप सूख जाते हैं जिस पर फल आने बन्द हो जाते हैं। यह प्रकृति का नियम है। इस दृष्टि से आज लोक-गीतों का देश विदेश मे महत्व है। इन गीतो की लयो म अपना कुछ वशीकरण होता है। बच्चन जी ने एक पत्र मे मुझे है—'जब मैं इग्लैंड मे था तब अक्सर लोक-गीतो के समारोह होते थे, केम्ब्रिज मे आयोजित ऐसे समारोहो मे लोक गीत गाए जाते थे और आधुनिक काव्य की दुनिया के बीच राग-रग-रस की एक दूसरी दुनिया जन्म लेती थी।[2]

खडी बोली मे नवगीतो के सृजन पर जब हम प्रभाव-शोधक दृष्टि डालते हैं तो यह आशा बधनी है कि खडी बोली के गीत काव्य मे एक नई रचनात्मक क्रांति के जन्म लेने का समय आ रहा है। किसे पता है इन्ही नवगीतो के नये बिम्ब उन प्राचीन प्रतीको (मिथो) को उस नये अर्थ मे प्रतिभासित करने लगें जिस अर्थ मे आज हम आन्तरिक एव बाह्य जीवन जीते हैं और जीना चाहते हैं। विषय की दृष्टि से लोक गीतो की धुनो पर आधारित खडी बोली मे जो गीत रचे गये हैं उनमें किसी नये कथ्य की अभिव्यक्ति नही हुई, क्योकि उसका होना सम्भव नहीं है। सीमित विषयो पर ही इन गीतो की रचना हुई है। ग्राम्य जीवन की आस्थाए, उनकी

---

१ चार खेमे चौंसठ खूंटे के दो गीत 'मालिन बीकानेर की' तथा 'बीकानेर का सावन।'

२ पत्र ६-७-६७।

वीथियो को पार करता हुआ कवि त्रिभगिमा मे जैसे प्रौढ़ता की सीढ़ी पर पहुँच गया है। अत उसकी आवाज मे आध्यात्म की ध्वनि स्वाभाविक सी लगती है। लेकिन इन गीतो में कवि की प्रसन्न वाग्धारा सूखी नहीं है, वह मन्थर गति से प्रवहमान है—

'अब तुमको अर्पित करने को मेरे पास बचा ही क्या है'

अथवा

'काम जो तुमने कराया, कर गया, जो कुछ कहाया कह गया।'

इन कुछ गीतो मे कवि की सम्पूर्ण जीवन यात्रा और उपलब्धि के प्रति एक नाटकीय दृष्टिपात प्रतीत होता है।

हर जीन जगत की रीत, चमक खो देती है
हर गीत गूँजकर कानों मे धीमा पडता
हर आकर्षण घट जाता है, मिट जाता है
हर प्रीति निकलती जीवन की साधारणता! • •
मुसकाता हूँ,
मैं अपनी सीमा, सबकी सीमा से परिचित
पर मुझे चुनौती देती हो
तो आता हूँ।

(फिर चुनौती)

क्या मुसकानों के बचपन मे
क्या अल्हड़पन के यौवन मे
उदासीनता के, मरघट की
और खिसकते चरण चरण में
श्रम सीकर के सघर्षण में
और थकन की मौन शरण में
क्या न ऋचाएँ क्या न मत्र हैं, ढाई-ढाई अक्षर वाले
क्या सब कुछ पोथी से ही सीखा जाएगा ओ मतवाले?

(ढाई अक्षर)

× × ×

जब इतने श्रम सघर्षण से
मैं कुछ न बना, मैं कुछ न हुआ
तो मेरी क्या, तेरी भी इज्जत इसमें है
मुझ मिट्टी से तू अपना हाथ हटाए रह।

(मिट्टी से हाथ लगाए रह)

× × ×

इन की कुछ सीढ़ियों को खोलते ही
मूँदते ही उम्र मेरी कट गई है

तुम प्रतीक्षा में हमेशा से खड़े थे
और मैंने ही न देखा ।

(मैंने ही न देखा)

भावों की अभिव्यक्ति, त्वरा और सुसम्बद्धता बच्चन जी के गीतों की अपनी विशेषता है। डा० बलभद्र तिवारी के कथनानुसार 'गीत-योजना में एक सूत्रता और अन्विति के बच्चन जी कुशल शिल्पी रहे हैं। इन उत्तर छायावादी काव्य की तीन प्रतिमाओं (बच्चन) अंचल और नरेन्द्र शर्मा में बच्चन का नाम प्रथम है, (आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका पृ० २९६-२८७) वस्तुत जीवन का प्रत्येक स्पन्दन कवि के स्वर की सन्धता का यहाँ भी साक्षी है—

उन्माद मिलन का झूठ नहीं हो सकता
अवसाद विरह का झूठ नहीं हो सकता
मंजिल जब तक उम्मीद न देती जाये
कोई जीवन का भार नहीं ढो सकता
इस दर्द, खुशी, आशा की सच्चाई को
इन द्वंद्वों में जीने की कठिनाई को
छंदों में कुछ साकार किया है मैंने
तेरी दुनिया को प्यार किया है मैंने

और त्रिभंगिमा के तीसरे भाग में मुक्तछंद की कविताएँ हैं । यहाँ लगता है कि जग-जीवन की विषम स्थितियों और ज्वलन्त अनुभवों को वाणी देने के लिए कवि का मुक्तछंद जैसे समर्थ साधन या साँचा ही बन गया है—

वह समर्पण क्या
कि जिसमें रह गया कुछ
दूसरे को, तीसरे को
या कि चौथे पाँचवें को, सातवें को·········

(दर दर निछावर)

× × ×

नाम का जादू बड़ा है
क्रान्तिकारी वह न था छोटा
कि जिसने कह दिया था—
नाम में भी क्या धरा है ?

(अमर बेली)

× × ×

जिन्दगी के वास्ते निर्वाण ही काफी नहीं है,
घास भी वह मांगती है

(विकृत मूर्तियाँ)

× × ×

कंकाल से मिल, कंकाल जो बन जाय
दीवाना वही है (दीपक, पतिंगे और कौए)

लेकिन कुछ कविताओं में शब्दों की कलाबाजी भी है, डिटेल भी, कहने के साथ वहाँ अनकहना भी कहा गया है, जबकि सुन्दर ढंगसे तराश की जा सकती थी। वस्तुतः श्रेष्ठ कविताएं व्यंग्य प्रधान होती है, वर्णन प्रधान नहीं। त्रिभंगिमा में 'चेतावनी' 'महागर्दभ' और गणतन्त्र दिवस कविताएँ अपने सूक्ष्म व्यंग, ओज और मर्म आशय में बहुत समर्थ बन पड़ी हैं। बच्चन जी की इस प्रकार की कविताएँ पढ़कर कभी-कभी ध्यान जाता है उनकी ऊँची और उत्तरदायी कुर्सी की ओर (यहाँ तक लेख तभी लिखा गया था जब वे वैदेशिक मन्त्रालय में अधिकारी के पद पर थे) और इधर उनकी तीखी, व्यंग्य ओजमयी कविताओं की ओर। दोनों का माध्यम कवि बच्चन, लेकिन दोनों में कितनी दूरी, कितनी असपृक्तता, कितना मुक्तभाव चिंतन और अभिव्यंजन! फिर सरकारी कर्त्तव्य भी सफल और कवि-कर्म भी समर्थ! कवि और व्यक्ति के समन्वय की यह चेष्टा अनुकरणीय कही जायेगी।

'महागर्दभ' कविता के प्रतीक और रूपक पढ़ने वाले के मन मस्तिष्क पर अपनी गहरी छाप छोड़ते हैं। मेरे विचार से 'बुद्ध और नाचघर' शीर्षक कविता की यह कविता दूसरी चोटी है। बहुत पहले 'निराला' जी ने 'सहस्राब्दि' (अनामिका) कविता लिखी थी जिसमें वैदिक काल से लेकर मुगलों के आक्रमण तक की भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल परिचय प्रस्तुत किया गया है। 'महागर्दभ' कविता में भी संस्कृतियों के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में भोली भ्रमित जनता की जो राजनीतिक गति अगति रही है उसका व्यंग-पूर्ण, अंगारे-सा दहकता हुआ यथार्थ वर्णन है। इन ('सहस्राब्दि' तथा 'महागर्दभ') दोनों रचनाओं को यदि एक साथ, भाव शिल्प शैली की दृष्टि से, पढ़ा जाये तो छायावादी और छायावादोत्तर कालीन काव्य के भाव शिल्प शैली का सूक्ष्म अन्तर बहुत कुछ स्पष्ट होता है। इसकी विवेचना हम यहाँ नहीं करेंगे।

त्रिभंगिमा की कविताओं में भी कुछ विदेशी शब्द जैसे, फैशन, ड्राइंग रूम आदि आए हैं। पर वे अजनबी से लगते हैं। मुक्तछन्द की कुछ ऐसी भी कविताएँ हैं जैसे, 'विशुद्ध कविता' जिन्हें पढ़कर कवि के ऊपर अध्ययन का पूरा प्रभाव पड़ा लगता है। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिये कि हिन्दी का यह प्रसिद्ध कवि देशी विदेशी साहित्य का गम्भीर स्कॉलर भी है।

चार खेमे : चौंसठ खूंटे—

इस कृति में सन् १९६०-६२ में लिखित कविताएँ संग्रहीत हैं। इस कृति का अर्थ है लगभग पचपन वर्ष के प्रौढ़ कवि का आत्माभिव्यंजन या गत तीस वर्ष के अनवरत काव्य-साधक का काव्य शब्द शिल्प! इतना समय किसी उपलब्धि की अनवरत साधना के लिये यदि बहुत नहीं तो कुछ कम भी नहीं कहा जा सकता। आज बड़ी से बड़ी फौजी या तकनीकी ट्रेनिंग बाखूबी इससे बहुत कम समय में पूरी करके सुयोग्य व्यक्ति

ऊँचे और उत्तरदायी पद पर पहुँच जाते हैं। इसे ध्यान मे रखकर हम बच्चन जी के प्रस्तुत काव्य संग्रह के बारे मे बहुत संक्षेप मे प्रकाश डालेंगे।

प्रस्तुत कविता-संग्रह में मुख्यत तीन प्रकार की कविताएँ हैं—कुछ लोकगीत शैली पर लिखे गीत, कुछ साहित्यिक गीत और शेष मुक्त छन्द मे लिखी कविताएँ। यही बात 'त्रिभंगिमा' मे थी। "दयाँड मगल" तथा "भू पुत्रों को चुनौती" कविताओं को कवि ने 'मच गान' कहा है। इनमे एक प्रकार की नाटकीय मुद्रा भी शामिल है जो सम्भवत गाते समय प्रयोग मे किसी नवीनता का आभास दे।

चार खेमे चौंसठ खूँटे कविता-संग्रह के नाम की सार्थकता या नवीनता उसकी ६४ कविताओं के रागों मे नही है। वह तो इन कविताओं की ध्वनि या व्यजना मे है। यह ध्वनि या व्यजना न नन्दनवन की है और न किसी अज्ञात लोक की छायावादी रहस्यवादी चिंता की। इसका उत्स तो जीवन-जगत और धरती है। प्रारम्भ की दस कविताएँ एकदम पढ जाइये तो आपको लगेगा कि कवि का खेमे का रूपक बहुत कुछ कवित्वमय भाषा मे अपनी भूमिका पेश कर रहा है। कविनिर्मित काव्य रूपी खेमे का मात्र आधार धरती है। धरती भी न नई दिल्ली की है न पुरानी की और न लन्दन की। यह धरती भारतीय लोक-सामान्य जीवन की है—ऐसी, जहाँ बजारे (कवि) का खेमा गढ सके—यानी मुक्त धरती, सबकी धरती, और जहां से कुतुबमीनार चाहे नजर न पडे लेकिन मुक्त आकाश, मुक्त खेत-खलिहान और जीवन जीने की कशमकश, परिश्रम और पसीना साफ़ दिखाई पडे—

> मेहनत ऐसी चीज कि निकले
> तेल छलाछल रेत मे
> आशा घर मे दीप जलाए
> सपना खेले खेत मे (छोडने वाली नही)

'चौंसठ खूँटे' संज्ञा से कोई गम्भीर आशय सिद्ध नही होता। उसका साधारण अर्थ है चार खेमे के चौंसठ खूँटे—यानी ६४ कविताएँ। तो साफ़ बात रूपक से परे यह हुई कि उक्त संग्रह मे कवि (बजारे) ने अपने काव्य संग्रह (खेमे) मे चौसठ कविताएँ (खूँटे) रखी हैं, जिनका आधार लोक-सामान्य जीवन की धरती है। और कवि का अभी गतिवान जीवन है, क्योंकि वह बजारा है। एक बात यही स्पष्ट और कर ली जाय कि इसी संग्रह मे कुछ कविताएँ प्रभु सम्बन्धी हैं, जिन्हे विनयपरक कहा जा सकता है। किंतु ध्यान से पढने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमे भी इस भूमन और जीवनार्पण मे बीतराग नही है—

> जिन्दगी की इस नदी में कौन रुकता
> भले ही खेवे न खेवे,
> कौन पीछे लौटता, चाहे अगर भी,
> साथ हो या हो अकेला (डूबने वाली नावें)

वहाँ उर्ध्व सन्चरण और अनिचेन मन की दार्शनिक गुत्थी नही सुलझाई गई है। उदाहरण अभी हम नही दे रहे हैं। यहाँ तक हमने विवेच्य कविता संग्रह की कविताओं के रहस्य रूपक को स्पष्ट करने की बात संक्षेप मे कही है।

अब अभिव्यंजना या कवि की गत तीस बत्तीस वर्ष की शब्द-साधना की बात आती है जो बहुत महत्वपूर्ण है। किसी पुराने आचार्य का कहना है—"शब्दार्थों सहितो काव्यम्'! तो शब्द अर्थ के सहित पर ही हम कविवर बच्चन के आलोच्य कविता संग्रह पर थोड़ा कहना चाहेंगे। कवि की भाषा के विषय मे अन्यत्र विस्तार से लिखा गया है। यहाँ इसकी विवेचना नही की जायेगी।

× × ×

प्रणय पत्रिका के बाद कविवर बच्चन की कविता मे, उनके काव्य प्रेमियो की दृष्टि से, एक अप्रत्याशित परिवर्तन (कुछो के मत से असगत अनचाहा परिवर्तन) आया है कि उसमे नैसर्गिक गीत-तत्व गायब होता गया है, कि उसका स्थान मुक्तछंद ने ले लिया है। और लोक गीतो मे वह बात नहो है—यानी जनमन सरसता! लोक-गीत तत्व के सदर्भ मे यह आक्षेप या आरोप एकदम अस्वीकार्य भी नही किया जा सकता। मेरे विचार से बच्चन की कविता की सबसे बड़ी अपनी गीतात्मकता रही है। और गीतात्मकता की अनूठी आभा अनुभूति की त्वरा और भावसम्बद्धता तथा जीवनगत सच्चाई है। इस दृष्टि से *'प्रणय पत्रिका'* के उपरान्त की उपलब्धि कुछ भी और कैसी भी रही हो पर रसमय कम रही जिसकी आत्म स्वीकृति आलोच्य कृति की "बुलबुल को आह्वान" शीर्षक कविता मे स्वयं कवि ने दी है—

"किन्तु जब विपरीत सब कुछ हो
तभी तो गीति, प्रीति, प्रतीति की होती परीक्षा
बाहरी सतही विपर्यय से
नहीं विश्वास मेरा कम हुआ है
राग मधुवन के लिये कुछ बढ़ गया है
स्वप्न सामजस्य कोई कहीं
आकृतिवान होने के लिये सघर्ष रत है
शक्ति मधुवन की वहीं कण-कण निरत है
आज ही इसकी जरूरत है
कि गायन आस्था का बन्द मत हो
इसी से टूटी सवों से भी
बराबर गा रहा हूं।
प्राण-बुलबुल!
मौन मत हो
द्रुत प्रकट हो
साथ मेरा दो

समय को लो चुनौती
वह अभागा कौन जिसको
गीत, प्रीति, प्रतीति से
निस्मत न लौटी !

इन पक्तियो म कवि ने स्वय अपनी इधर की 'टूटी लया' को देखकर एक ठेस खाई है। और यह भी कि उसका गीतिकार पुन मधुदन के राग और स्वप्न सामजस्य को आकृतिवान देखने के लिए आकुल ह। अभी भी गीति प्रीति, प्रतीति पर उसे पूर्ण आस्था है। शेष जो कुछ उसने गत १० १२ वर्ष मे (वतमान कृति तक) वाणीमय किया है वह बाहरी सनही विषयय का तकाजा था, शायद सामाजिक ऋण था, कत्तव्य था या कवि की युग-वातावरण जन्य विदशना थी। जो भी हो बच्चन का कवि छद-मुक्त होकर आज आसानी से पहचाना नही जाता। कवि बच्चन की ध्वनि मैं गीतो म ही पूणत पाता हूँ।

'चार खेमे चौसठ खूंटे' कविता सग्रह की कविताओ मे त्रिभगिमा' की अपेक्षा कई दृष्टियो से वाणी विकास के चिह्न दीख पडते हैं। यहाँ के लोक-गीतो मे पिछले गीतो की अपेक्षा तन्मयता तथा शब्द शिल्प का नियोजन अधिक स्वाभाविक तथा सगीतमय है। 'बजारे की समस्या' 'फूटी गागर, 'कुम्हार का गीत', 'वर्षामगल' और 'जामुन चुती है' कविताओ म लोक-लयमान पदावली और भाव प्रवाह अनूठा है—

खाली गागर ले घर जाऊँ
घर वालो की गाली खाऊँ
भीगी आऊँ भीगी जाऊँ,
बाहर हँसी कराऊँ रे !
जगह जगह से गागर फूटी
राम, कहाँ तक ताऊँ रे ?
ताऊँ रे मइ ताऊँ रे

× × ×

चाक चले चाक !
अम्बर दो फांक—
आधे मे हँस उडे, आधे मे काक !
धरती दो फांक—
आधी में नीम फले आधी में दाख
जीवन दो फांक—
आधे में रोदन है आधे में राग।

× × ×

नव धान उठे
नव गान उठे

सदके खेतों से सब घर से,
घन बरसे गीत भरा गमक
घन बरसे !

× × ×

मधु की पिटारी
भौरे-सी कारी
डालों में पैठे न चोर
कि जामुन चूती है !
अब गाँवों में घर घर शोर
कि जामुन चूती है ।

इन कुछ उद्धरणों से लोक जीवन की स्वर लहरी और हँस उड़ नीम फले, मधु की पिटारी भौंरे-सी कारी (यानी जामुन) कहने से लोक सामान्य जीवन के मानस को रसीली छलक ललक की गूंज गूंजती है। यह बात 'त्रिभंगिमा' के लोक-गीतों की शैली पर लिखे गीतों में इतनी सफाई स्वाभाविकता तथा कलात्मकता से नहीं उतर सकी है। इसलिये कहना होगा कि इस दिशा में कवि का प्रयोग या प्रयास कुछ आगे बढ़ा है। प्रस्तुत कृति के दो गीत 'गन्धर्व ताल' तथा 'आल्हा' ही बहुत ऊँचे बन पड़े हैं। इनका रहस्य स्वयं कवि ने पुस्तक में टिप्पणियाँ लिखकर खोल दिया है। प्रणय विषय और कथोपकथन की सरलता सरसता और गम्भीरता के साथ ही इन दोनों गीतों में सांस्कृतिक मूल्य भी आँका गया है। लछिमा यदि भारत की भोली भाली सुन्दर-सरल चेतना है तो सावर सच्चे सीधे सरल प्रेम तथा विश्वास का प्रतीक है। लयात्मकता तथा कल्पना सूक्ष्मता की दृष्टि से सम्भवतः ये दोनों गीत अपनी भंगिमा में बेजोड़ हैं। 'मालिन बीकानेर की' कविता में राजपूताने की ऐतिहासिक रोमांटिक भावना शब्दों में सजीव कर दी गई है, जिसकी लय मनोमुग्धकारी है—

ओढ़नी आधा अम्बर ढक ले
ऐसी है चित्तौर की
चोटी है नागौर नगर की
चोली रनथम्भौर की
घघरी आधी धरती ढकती है मेवाड़ी घेर की
फुलमाला से लो
लाई हूँ मालिन बीकानेर की
मालिन बीकानेर की ।

प्रस्तुत संग्रह में बच्चन की पूर्व अनुभूतिपरक गीतधारा का एक ही गीत उभर कर आया है 'बरस-बरस' जो निःसन्देह अपनी स्निग्धता तथा सरसता में मिलन-यामिनी के गीतों की याद ताजा कर देता है। लगता है कि

यदि यह गीतिधारा फिर कभी फूटी (जिसकी आशा अब नही है) तो कवि बच्चन के गीतिरस-पिपासु पाठको को फिर से रसस्नात कर सकेगी।

यहाँ कुछ साहित्यिक गीत प्रभु-वदना सम्मत हैं। जैसे, 'प्रभु मदिर यह देह री', 'मैं तो बहुत दिनो पर चेता' आदि। लेकिन इन गीतो मे विनय के पदो का जैसा प्रभाव नहीं है। यहाँ वृद्ध होते हुए कवि की प्रभु-विनय विषयक अस्वाभाविक-सी अभिव्यजना प्रतीत होती है। इनमे कवि की, विशिष्टता नही प्राप्त हुई है।

'भारत के यौवन का गीत' 'त्रिभगिमा' के 'प्रयाण गीतो' (थल सेना का, नौ सैनिक का) की टक्कर का नही कहा जा सकता।

× × ×

और अब मुक्त छद की कविताओ के बारे मे थोडा कहा जाना ठीक रहेगा। जहाँ तक मुक्त छद मे भाषागत प्रौढता, अभिव्यञ्जना तथा प्रवाह की बात है, 'त्रिभगिमा' के मुक्तछद के मुकाबले यहाँ कोई विशेष परिवर्तन या विकास प्रतीत नही होता। कुछ तो होगा ही जो अपनी सूक्ष्मता मे विशिष्ट होगा और जिसकी सम्यक विवेचना यहाँ सभव नही है। सामान्यत एक बात यहाँ बढी हुई लगती है और वह है लोक अध्ययन से अधिक आत्म विश्लेषण तथा सूक्ष्मचिन्तन। इस दृष्टि से सभी कविताएँ पठनीय है। इन मुक्तछदी कविताओ की एक विशेषता प्राय किसी रूपक के माध्यम से किसी तथ्य-सत्य और जग-जीवन के यथार्थ को वाणी देने की है। इसके लिये 'अनजिए विश्वास' 'पानी मरा मोती, आग मरा आदमी' तथा 'ध्वस्त पोत' शीर्षक कविताएँ बहुत शक्तिशाली है। मुक्तछदी कविताओ मे रूपक के बल के अलावा प्राय: कवि का यथार्थदर्शी चित्र-विधान भी हैं। चार खेमे चौसठ खूंटे' की कविताओ मे जितना जीवत चित्र विधान मुझे एक स्थल पर ही मिला है वैसा किसी दूसरे काव्य सग्रह मे नही मिला। यहाँ कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति और उसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति जैसे सामर्थ्य की सीमा पर खडी बोल रही है। इसके लिये 'मरणकाले' (पुस्तक की अतिम कविता) बहुत प्रभावशाली है। इस कविता मे बच्चन की मुक्तछदी कविताओ की भाषा तथा भाव चित्रगत सारी विशिष्टता एक स्थल पर सिमट कर सामने आती है। तीन मरे जतुओं के जीवित-मृतक रूप शब्दध्वनि के कारण अपनी भयकरता मे अद्‌भुत लगते हैं। शब्दो का यथावत् प्रयोग उनका सांचा ही नही प्राण बन गया है—

मरा मैंने गरुड़ देखा
गगन का अभिमान
धराशाही, धूलि धूसर, म्लान।
मरा मैंने सिंह देखा
दिग्दिगत दहाड जिसकी गूंजती थी
एक झाडी में पडा चिरमूक
दाटी दाढ़-चिपका थूक
मरा मैंने सर्प देखा

स्फूर्ति का प्रतिरूप लहरिल
पड़ा भू पर बना सीधी और निश्चल रेख

और उसके बाद कविता जीवन के अस्तित्व अनस्तित्व का चिंतन प्रधान अभिव्यंजन करती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि गरुड, सिंह और सर्प की जीवित मृतक जिन आकृतियों विकृतियों का यहाँ गिने चुने शब्दों में चित्र खींचा गया है वह शब्द साधना का भारी परिणाम है। दिग्दिगत दहाड, दाढ़ी-दाढ़ चिपका थूक, स्फूर्ति का प्रतिरूप लहरिल, और मरे सर्प के लिये 'भूपर सीधी निश्चल रेख' कहना चित्रांकन की सिद्धहस्तता का प्रमाण है। यहाँ शब्दों में यथासंगत ध्वनि साकार हुई है। ऐसे स्थलों में यह उक्ति सार्थक लगती है—

'अर्थ अमित अति आखर थोरे'

आलोच्य कृति की मुक्तछंदी कुछ दार्शनिक कविताओं में, जैसे—'अनुरोध' 'प्रत्यावर्तन' 'इस संसार में' आदि कवि की परा शक्ति के प्रति आत्म निवेदनीयता बड़ी निश्छल तथा प्रौढ़ लगती है। किंतु यहाँ रहस्य नहीं, स्पष्ट चिंतन, आत्म-निवेदन और आत्मनिरीक्षण है—

जिए क्षण को
जिया जा सकता नहीं फिर
याद में भी
क्योंकि वह परिपूर्णता में थम गया है।

(स्वाध्याय कक्ष में बसंत)

× × ×

बाहरी ही नहीं
जीवन माँगता है
भीतर भी बल ?

(भीतरी काँटा)

× × ×

आह, रोना और पछताना इसी का
एक भी विश्वास को
पूरी तरह मैं जी न पाया...
जिया जिसको जान भी उसको न पाया।

(अनजिए विश्वास)

पर यह सूक्ष्म चिंतन और आत्मनिरीक्षण जग जीवन के प्रति उदासीनता अथवा निष्क्रियता के भाव नहीं जगाता—

भाग्य लेटे का सदा लेटा रहा है
जो खड़ा है भाग्य उसका उठ खड़ा है
चल पड़ा जो भाग्य उसका चल पड़ा है (ध्वस्त पोत)

और इस सबसे महत्वपूर्ण और महान है इस राग-विरागमय विश्व के प्रति जीव का असीम आकर्षण और जीवन के प्रति उसकी अटूट आस्था और यही तत्व बच्चन की कविता को न 'नयी कविता' की व्याख्याओ के व्यूह मे फँसने देता है और न पुराने काव्य-वादो के चक्कर मे पडने देता है। जीवन अपने बाहरी भीतरी परिवेशो मे जितना नया और जितना पुराना हो सकता है, उसी की साधिकार अभिव्यक्ति बच्चन की कविता है। 'चार खेमे चौंसठ खूंटे' सग्रह की कविताओ मे कवि का यही दृष्टिकोण व्यक्त होता है। सन् १९६३ के प्रथम दिन बच्चन जी ने मुझे अपनी नई कृति 'चार खेमे चौंसठ खूंटे' आशीष उपहार स्वरूप देते हुए ये महत्वपूर्ण शब्द अकित किये—

'जो न नियोजित हूँ न वालटियर हो क्या उन्हे अपनी बात कहने का अधिकार नही? उसी अधिकार से जो कहता रहा हूँ उसे मेरे साथियो ने कविता मान लिया है।'

इससे जाहिर है कि इस कवि ने अपना काव्य लिखने के लिये नही लिखा, न साहित्य सेवा के भाव से बल्कि जीवन मे जो बातें कहने का व्यक्ति को मूल अधिकार प्राप्त है—इस कवि ने उसे बरता है, कहा है। अत इस सृजन मे कविता या कला कितनी है, यह तो मर्मज्ञ जानें। पर उसमे जग-जीवन की पूर्ण सच्चाई है, यह समझना कुछ कठिन नही है।

दो चट्टानें

इस कृति की कविताएँ कवि ने सन् १९६२-'६४ मे लिखी है। 'बुद्ध और नाचघर' 'त्रिभगिमा' और 'चार खेमे चौंसठ खूंटे'—पिछली तीन कृतियो की मुक्त छन्द की कविताओ की चर्चा पीछे की जा चुकी है। 'दो चट्टान' कृति की कविताएँ उक्त कृतियो की मुक्त छद की कविताओ की अपेक्षा शिल्प-शैली की दृष्टि से किसी नये क्षितिज की सूचना नही देती। विषय वैविध्य होना तो स्वाभाविक है। लेकिन आलोच्य कृति की कुल ५३ कविताओं मे केवल एक गीत है—भिगाए जा रे···, बाकी सब मुक्त छद की कविताएँ हैं। यह एक गीत अपनी सरलता, तन्मयता और मधुर स्वर-लहरी से हृदय के रागात्मक तारो को छूकर कहता है, कि जीवन मे कविता का सगीत अभी मरा नही है। और मेरा तो अब भी यह विश्वास है कि घोर बहिष्कार के बावजूद बच्चन की गीति-प्रेरणा अगर सृजन मे रूपायित हो जाय तो गीत के धु धले भविष्याकाश मे फिर ताजे गुलाबो की लाली फैल सकती है। लेकिन मुझे सग्रह की 'सृजन और साँचा' कविता पढकर कवि की असमर्थता पर असतोष होता है। मुझे तो उनकी 'त्रिभगिमा' मे व्यक्त 'गीत-निष्ठा' पर ही आज भी निष्ठा है। पर काश ये कवि याद करता —

'गीत गाने जा रहा हूँ
मत्रद्रष्टा पूर्वजो की ओर अपनी
शक्ति को मैं आजमाने जा रहा हूँ
धुंध के, दुर्गंध के, गतिरोध के

दम घोटने वातावरण मे
एक सिहरन भी हुई तो
विद्रूतियों के छत्ता भरे
षड्यन्त्र का विस्फोट होगा
मलय के झोंके चलेंगे
अमृतवर्षी मेघ
उमड़ेंगे झरेंगे

आलोच्य कृति की कविताओं का मूल स्वर बाह्य परक है। अधिकांश कविताएँ तो बिल्कुल सामयिक सघर्ष और युगीन मूल्यों अवमूल्यना के ऊहापोह पर आधारित हैं। उदाहरण के लिए प्रारम्भ की चीनी आक्रमण से सम्बन्धित कुछ कविताएँ, 'लुमुम्बा की स्मृति म, भोलापन की कीमत', बाढ पीडिता के शिविर मे', 'युग और युग, 'द्वीप लोप (नेहरू निधन पर) २७ मई, मूल्य चुकाने वाला', '२६ १ ६३', 'शिवपूजन सहाय क देहावसान पर, ड्राइग रूप म मरता हुआ गुलाब, (गजानन माधव मुक्ति बोध की स्मृति म), विक्रमादित्य का सिहासन', 'गांधी', 'युगपक' 'युग ताप', आधुनिक निदक क्रुद्ध युवा बनाम क्रुद्ध वृद्ध', शृगालासन', 'गेंडे की गवेषणा, काठ का आदमी, 'मास का फर्नीचर, सात्र के नोबल पुरस्कार ठुकरा देने पर' कविताएँ ऐसी ही कविताएँ है। कुछ इनसे अलग ऐसी कविताएँ भी हैं जिनमे कवि अपने अतर की प्रतिक्रिया को स्वानुभूति, और सूक्ष्म अनुभव अध्ययन गत सीधी सच्चाई स व्यक्त कर देता है। उदाहरण के लिए 'दयनीयता सघर्ष ईर्ष्या कवि से कुँआ, सृजन और साचा, दिये की माँग', ऐसा क्यो करता हूँ', दो रात जीवन परीक्षा आभास, एक फिकर एक डर, माली की साँझ', धरती की सुगध, शब्द शर, नया पुराना,—कविताएं ऐसी ही हैं। सग्रह म ऐसी भी कविताएँ हैं जो केवल सख्या वाचक हैं—नैस, 'कु क डू कूँ', और 'सुबह की बाग'। पर दो चट्टानें की तीन कविताएँ ध्वनिधारा, भावचिंता धारा और गम्भीर स्थाई प्रभाव की दृष्टि से प्रतिनिधि विशेष हैं— खून के छापे', 'सात्र के नोबेल पुरस्कार ठुकरा देने पर' तथा दो चट्टानें अथवा सिसिफस बरक्स हनुमान।'

कवि की इस कृति को पढकर अहम प्रश्न यह उठता है कि यहाँ जिस युग-यथार्थ को वाणी बद्ध किया गया है क्या वह अभिव्यजना के उन आयामो के अनुकूल (अनुसार नही) है आज का पाठक जिसकी अपेक्षा महसूस करता है? शायद इसका उत्तर अनुकूल न मिले।

प्रस्तुत कृति की अनेक कविताओं। निसदेह युग यथार्थ जन्य प्रतिक्रिया को ईमानदारी से व्यक्त किया गया है। अभिव्यजना मे मापागत वैभव भी है। अनेक स्थलो पर कथन म सयमित ऊर्जा भी है। प्राय गम्भीर सूक्ष्म बोध और तीखे युग-सत्य को सक्षिप्तता व ध्वन्यात्मकता और कहीं वर्णन विस्तार के द्वारा भी व्यक्त किया गया है। आज का प्रबुद्ध पाठक मन वचन कर्म की सूक्ष्मता तथा सक्षिप्तता के द्वारा विस्तार और

व्यापकता को समेटकर उसका सम्पूर्ण सुख या लाभ उठाना चाहता है। इस चाहना के पीछे विशुद्ध वितानवादी दृष्टिकोण है। लेकिन जहाँ इस कृति की कविताओं में वर्णन-विस्तार नहीं है वे युग-यथार्थ के प्रभावाभिव्यंजन द्वारा पाठक को अभिभूत कर लेती हैं। 'दो चट्टानें' कृति में ऐसी विशिष्टता से पूर्ण कई कविताएँ हैं। उदाहरण के लिए 'सूर समर करनी करहिं', 'उघरहिं अंत न होइ निबाहू', 'खून के छापे,' 'शृगालासन', 'गैंडे की गवेषणा', 'कवि से केंचुआ' आदि कविताएँ गम्भीर सूक्ष्म-बोध और तीखे युग-सत्य को संक्षिप्तता ध्वन्यात्मकता तथा व्यंगमय शैली द्वारा अभिव्यक्त करने की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। ये कविताएँ अपने युग-जग-जीवन के प्रति जागरूक बने रहकर जीवन जीने वाले पाठक को प्रभावपूर्ण लगने वाली हैं। क्योंकि इनमें न तो अति बौद्धिकता की अभिव्यंजनागत पेचीदगी है और न अनर्गल आवेश को उगलने वाला कोरा शब्द-जाल है। यहाँ विषय और वाणीगत संयम और संतुलन है। देखिये—

शब्द की भी
जिस तरह संसार में हरएक की
कमजोरियाँ, मजबूरियाँ हैं
शब्द सबलों की
सफल तलवार हैं तो
शब्द निबलों की
नपुंसक ढाल भी हैं।

× × ×

जिस तरह जयकार सुनने का
किन्हीं को रोग होता
मर्ज होता किन्हीं को
जय बोलने का।

× × ×

ध्वनि संघ-विधान से
जब जूझता है
जीतता भी तो,
बहुत कुछ टूटता है।

इस कृति को पढ़कर दूसरा प्रश्न यह उठता है कि इसमें जो है वह विशुद्ध अनुभूतिपरक कितना है? उत्तर में कहा जा सकता है कि जिन कविताओं में (और कई कविताओं के कई अंशों में) कवि ने सामयिक प्रभाव से गहरे उतर कर अपनी मुक्त मानसिक स्थिति को सम्प्रेषित किया है। यहाँ बहुत कुछ विशुद्ध अनुभूतिपरक भी व्यक्त हुआ है। यहाँ कवि का मानसिक असन्तोष, उसका आत्म पीडन और युग चिंतन वर्तमान मन जीवन की स्थितियों का साक्षी या सहभोक्ता बन जाता है। यहाँ

कवि और उसका सृजन वस्तुतः महान लगता है। उदाहरण के लिये 'दयनीयता संघर्ष ईर्ष्या,' 'दिये की माँग', 'ऐसा क्यों करता हूँ', 'आभास', 'एक फिकर एक डर', 'शब्द-दार' कविताएँ पठनीय हैं। ये कविताएँ वर्तमान व्यक्ति की उस मन स्थिति और आत्म-पीड़न को ध्वनित करती हैं जो आज अस्तित्व के विघटन के कारण उत्पन्न हो रहा है। इन कविताओं मे कवि बाह्य स्थूल-तत्वों को अतिक्रांत करता हुआ जान पडता है और आन्तरिक अकुलाहट पर काबू पाने का साधारणीकृत प्रयास ध्वनित करता है। यह सारा कुछ कवि के अर्तमथन और उसकी साधना का अनुपम साक्ष्य है। यहाँ बाह्य द्वन्द, अद्वंद के धरातल पर पहुँच कर समाप्त होता हुआ जान पडता है। देखिये—

यात्रा पूरी हुई
या नहीं ?—,
इसको कौन निश्चय से बताए,
किंतु यात्री
आज पूरा हो गया है।

× × ×

वह परीक्षा कौन जिसकी
सब परीक्षाएँ लेशरी,
और देने मे जिसे,
मिट जायगी काया विचारी,

× × ×

किंतु चिंतन मनन पर
जीवन ठहर सकता नहीं है
क्या न उल्टे और तेजी से गुजरता ज्ञात होता,

× × ×

क्षरण होता है प्रतिक्षण कुछ
कि जीवन प्रस्फुरण हो.........
क्षरण रोको, मरण रोको
और जीवन प्रस्फुरण स्वयमेव रुकता
प्रकृतिगत अमरत्व कितना
रुग्ण है, दयनीय है, करुणा-जनक है।

× × ×

अपने युग मे
अपने गुण का ढोल पीटने,
स्वार्थ सजोने वालो को
हमने कम देखा ?

धारा कि उनको सयत रखती
हनूमान के आत्मत्याग की
उदाहरण की, लक्ष्मण रेखा ।
× × ×
फारमूलों मे कभी बधता न जीवन
शब्द-संख्या फारमूले ही नहीं तो और क्या है ?
तथ्य केवल,
व्यष्टि करके मुख्यता भी प्राप्त
अपने आप मे सब कुछ नहीं है····· ····
सिद्ध प्रतिमा तो वही है
सामने जिसके निखिल ससार
मुँह बाएँ खड़ा हो ·········

विशिष्टता यह है कि यहाँ व्यक्ति-जीवन की कटुता अथवा अनास्था की ध्वनि न हो होकर आस्था एव समवेदना की ध्वनि प्रधान है—

"पथ के कुश-कटकों औ'
क्रूर पत्थर ककड़ों ने
जो किये थे घाव निर्मम
आज मुझको वे पुरे-से लग रहे हैं ।
दर्द, पीड़ा, टीस ग्रथन;
अब किसी से या किसी भी तरह की
सच, है नहीं मुझको शिकायत !
× × ×
हो किसी का
एक तरफी दान कवि का नहीं होता······
× × ×
इसीलिए ऊँचाई की अन्तिम उठान पर
शक्ति नहीं रे
भक्ति चाहिए
भक्ति विनत है
और उसी का किसी जगह अवरुद्ध न पथ है ।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस कृति की विशेष कविताओं—'खून के छापे','सात्र के नोबेल पुरस्कार ठुकरा देने पर' और 'दो चट्टानें' अथवा सिसिफस बरक्स हनुमान' में कौन-सी विशेषताएँ है ?

'खून के छापे' कविता पढते ही एकदम जिज्ञासा जागती है कि ये छापे किन के हैं और क्यों ये कवि द्वार पर नर-ककालो द्वारा लगाये जा रहे हैं ? कविता पढते हुए

पता चलता चलता है कि कवि द्वार पर लगे ये खून के छापे उन युग श्रमित व्यक्तियों के हैं जो सदियों से शोषकों द्वारा अपना खून चुसवाते आ रहे हैं—मष्ट मारे, मुर्दों की तरह ! क्योंकि शोषण व्यवस्था को अपनी क्रूर नियति मान कर उन्होंने मानवीय संघर्ष के सारे हौसले गवा दिये हैं। ये खून के छापे उन विद्रोहियों के खून के हैं जिन्होंने कभी क्रूर और काले शासन के खिलाफ आत्म-विमुक्त होने के लिये भीषण नारे बुलन्द किये थे, लेकिन वे पीस दिये गये। ये खून के छापे उन देशभक्तों के खून के हैं जिन्होंने अपनी धरती की मुक्ति के लिये स्वतन्त्रता संग्राम के अंगार पथ पर निर्भयता से पाँव बढ़ाये थे, लेकिन आज जो अनीति और तानाशाहियत की चट्टान पर पटके जाते हैं। ये खून के छापे उन मेहनतकशों के खून के हैं जो नगर-सभ्यता के शिल्प को सवारते रहे, लेकिन स्वयं कुलीनों की क्रूरता के कारण बेपनाह, फुटपाथों पर अपने जीने के अधिकार का गला चुपचाप घुटवाते चले गये। ये खून के छापे उनके खून के हैं जो देश विभाजन की रक्तिम ऐतिहासिक रेखा के शिकार होकर अपने ही देश में परदेसी होकर घोर अभाव और उपेक्षा की दमघोटू सांसें गिन रहे हैं। ये खून के छापे उन के खून के हैं जो कभी राष्ट्र रचना के मधुर सपनों का संसार सेते थे, लेकिन आज वे लोभी, स्वार्थी और महत्वाकांक्षी अंध शासकों प्रशासकों के अन्याय के प्रहारों से जख्मी हैं। लेकिन आज अन्याय, क्रूरता, नीचता और जघन्य अपराध करने वालों की तरफ कौन अंगुली उठा सकता है ? अतः ये नर-कंकाल, कवि-कवि के द्वार पर खून के छापे लगाते जा रहे हैं। क्योंकि, इस हत्या-काण्ड के रहस्य की पोल कवि की और मात्र कवि की ही निर्भय वाणी खोल सकती है। कवि अपने उत्तरदायित्व को निभाने से कभी मुँह न मोड़ेगा। वही युग, शासन और व्यवस्था की नृशंसता, अनीति और अमानवीयता के विरुद्ध अपने ज्वलित शब्दों द्वारा जनमन में महान क्रांतिकी ज्वाला जगाने में समर्थ हो सकता है।

इस प्रकार कवि ने इस कविता में इस युग के यथार्थ को, ऐतिहासिक परिवेश में, बुद्धिसात करके उसकी मर्मवेधी और रोमांचकारी अभिव्यंजना की है और अन्ततः कवि के दायित्व और उसकी सद्सामर्थ्य की व्यापकता को ध्वनित किया है। सम्पूर्ण कविता में यद्यपि कवि की बौद्धिक धरातल पर युग समीक्षा की प्रक्रिया प्रधान है, पर उसे एक स्वप्न के माध्यम से व्यक्त किया गया है। कविता का आरम्भ कुछ इस तरह से होता है जो सहसा एक सपने के सहारे क्षिप्रगति से विस्मय और कुछ बीभत्स भावों को जगाता हुआ शोषित व जीवनाहत व्यक्तियों के प्रति मानवीय करुणा के भावों की भूमिका बाँधता चला जाता है। और अन्त में आज के कवि के क्रांतिकारी कर्तव्य की सद्सामर्थ्य को विद्युतगति से ध्वनित कर देता है। यों पाठक कविता के आरम्भ करने और उसके अन्त होने के मध्य में जो कुछ होना महसूस करता है उसकी भूमिका में वही अपने को तो कहीं अपनों को तो कहीं पड़ोसियों को अवश्य पा लेता है। सचाई यह है कि अभी हमारे समाज में अनेक बटुकेश्वरदत्त जैसे व्यक्ति बच्चन की इस कविता की वास्तविकता की साक्षी दे सकते हैं। इतना ही नहीं, विश्व इतिहास में

राजनीति के इस कुचक्र की सनसनीखेज घटनाओं का ब्यौरा ढेर-सा है। आलोच्य कविता इतिहास के इसी ज्वलन्त पक्ष की पीठ पर खड़ी है।

× × ×

हिन्दी के बुद्धिजीवियों की सेवा में 'साव के नोबेल-पुरस्कार ठुकरा देने पर' कविता निश्चय ही पुरस्कार लोलुप तथाकथित साहित्यकारों पर एक करारी चोट करती है। वस्तुत: हिन्दी की मनीषा के लिए यह एक दुर्भाग्य की बात कही जायगी कि उसका सर्जक अपने सृजन को (स्वाभिमान को भूलकर) हथकंडों के बल पर पुजवाने की कामना करता है। सम्भवत: अपनी कृति पर मिले इनाम को वह अपने मूल्यवान सृजन की महानता का सर्वोच्च प्रमाणपत्र भी मानता है और फिर 'नोबेल पुरस्कार'? यह विश्वमान्य पुरस्कार प्राप्त करने की कामना किसे न होगी? सत कवियों का जमाना कभी का लद गया है। नोबेल पुरस्कार की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा है। ससार भर के पत्र इसे पाने वाले साहित्य सिकन्दर की पनिष्ठा को ही प्रचारित नहीं करते बल्कि वे तो इतने उदार हैं कि जिन साहित्यकारों का नाम तक नोबेल पुरस्कार पाने की सूची में प्रस्तावित होता है उसकी भी 'ध्यानाकर्षक' सूचना छापते हैं। सन् ६५ में आपने हिन्दी के साहित्यकार 'अज्ञेय' जी की नोबेल पुरस्कार विषयक प्रस्तावित सूचना पत्रों में पढ़ी होगी। पर ये पुरस्कार उन्हें नहीं मिला—शायद कहीं कुछ पुरस्कारोपलब्धि के अनुकूल न बैठा हो। खैर ··· ··

बच्चन की साव सम्बन्धी कविता की साहित्यिक अड्डों अखाड़ों में यदा कदा मैंने अजीब-अजीब प्रतिक्रियाएँ जानी। बुद्धिजीवियों की बातें कभी-कभी बड़ी निराली होती हैं। एक ने कहा—'भई, बच्चन भी साठ के नजदीक हैं। उन्हें तो कोई पुरस्कार नहीं, मिला। अत उन्होंने पुरस्कार विरोधी कविता ही लिख दी।' दूसरा बोला—बंधु, बच्चन ने अच्छा मोहरा पकड़ा।' तीसरा बोला—'क्या फर्क पड़ता है? कभी जब बच्चन को नोबेल पुरस्कार मिलने की बात चलेगी तब बात करेंगे।'

लेकिन मुझे हिन्दी के तथाकथित बुद्धिजीवियों की बुद्धि का ये हाल देखकर दुःख नहीं होता, दया आती है। मैंने कई बार इस कविता को यह जानने के लिए बहुत जागरूक होकर पढ़ा है कि क्या कहीं इसमें कवि की अपनी कुण्ठा या हीनता की ध्वनि है? लेकिन मुझे हर बार निराश होना पड़ा है।

उस दिन आकाशवाणी के लान पर मुद्राराक्षस से इस कविता के बारे में चर्चा चली तो उन्होंने एक मार्के की बात कही। बोले, 'भले ही बच्चन जी की यह कविता आज के पुरस्कार वादी युग में नक्कारखाने में तूती की आवाज हो, लेकिन जोशी जी, बच्चन प्रतिभावान के स्वाभिमान के प्रति आस्थावान और ईमानदार कवि हैं। और इसमें किसे शक होगा?

इस कविता के लिखे जाने के लगभग-दस साल पहले, तिथि २०.११.५७ को, मुझे बच्चन जी का एक पत्र मिला था। उससे मुझे लगा कि इतने वर्ष पहले ही बच्चन के दिमाग में साहित्यिक पुस्तकों पर पुरस्कार मिलने वाली बात पर एक विरोधी धारणा

की जड जमी हुई थी—यह कविता जैसे उसकी प्रस्फुटित शाखा है।

इस कविता मे कवि ने अपनी 'एकांत सगीत' की ६३वी कविता की ये पक्तियाँ प्रस्तुत की हैं—'जिन चीजो की मुझे चाह थी, जिनकी कुछ परवाह मुझे थी, दी न समय से तूने, असमय क्या ले उन्हें करूँगा। कुछ भी आज नही मैं लूँगा।' एकांत-सगीत की रचना लगभग २६-२७ वर्ष पहले हो चुकी थी। और इच्छित चीजो को असमय देने की दरियादिली दिखाने वालो के प्रति कवि मे तभी कितना आक्रोष था, यहाँ स्पष्ट है। अत इन तथ्यो के आधार पर मैं यह कहने मे पूरी तरह आश्वस्त हूँ कि बच्चन ने सात्र के प्रति यह कविता अपनी किसी व्यक्तिगत कुंठा या कुढन से नही लिखी। यह कविता उनकी मुक्त धारणा की बलवती काव्याभिव्यक्ति है जो सात्र के नोबेल पुरस्कार ठुकरा देने वाली अनुकूल घटना के कारण विद्युत गति से फूट पडी।

इस कविता मे कवि ने कुछ महत्वपूर्ण पक्षो पर प्रकाश डाला है जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति का अस्तित्व, उसका स्वाभिमान, उसकी प्रतिभा की शक्ति, उसकी उपेक्षा अवमानना, उसका असमय सम्मान, विश्वविद्यालयो, अकादमियो और सरकारो की बुन्द परख, कुटनीतिज्ञता, क्षुद्रता। यहाँ प्रतिभावान व्यक्ति के अस्तित्व की रक्षा के प्रति कवि ने जो कुछ कहा है वह हृदय से कहा है। इस कविता मे शास्त्रीय काव्य-तत्वो का समावेश न होते हुए भी कोरा बुद्धिबल और तर्क-जाल नही है। इस कविता का सम्पूर्ण प्रभाव उसमे निहित कवि की प्रतिभावान के प्रति आस्था और उसकी अस्मिता की सहज अभिव्यजना मे है। प्रतिभाशाली व्यक्ति के जीवन मे एक समय आता है जब उसके लिए सस्थागत पुरस्कारो या सम्मानो का मूल्य सर्वथा सतही और व्यर्थ हो जाता है। यही उसके व्यक्तित्व का चरम बिन्दु या विराट्त्व है कि—

> मान या अवमानना अथवा उपेक्षा
> इस समय पर
> इ च भर ऊपर उठा सकती न उसको
> इ च भर नीचे गिरा सकती न उसको···
> मान औ' अपमान खोते अर्थ अपना
> कर चुका अभिव्यक्त जब व्यक्तित्व
> सब सामर्थ्य अपना।

इस कविता मे कवि ने प्रतिभा का पक्ष मात्र ही नहीं लिया वरन उसके प्रति अगाध आस्था व्यक्त की है—

> सस्थाए हों भले हों विश्व वदित
> यह नहीं अधिकार उनको—
> क्योंकि उनके पास धन बल—
> जिस समय चाहें दिखाएँ मान टुकडा

और प्रतिभा दुम हिलाती
दौड उनके पांव चाटे।

और कविता में क़लम की महनीयता और उसकी महत्ता के प्रति कवि की हिमायत किसी टीकाटिप्पणी की गुँजाइश नहीं रखती।

पूरी कविता में सात्र तो मात्र एक जीवत उदाहरण है। कवि ने उसके व्याज से व्यक्ति और उसकी प्रतिभा, उसके स्वाभिमान और सम्मान की प्रबुद्ध, प्रबल और प्रधान व्यजना की है। सस्थाओ के स्वार्थगत और अन्यायपूर्ण सम्मान तथा पुरस्कार प्रदान करने वालों के प्रति चोट करना कवि का मूल मतव्य रहा है। प्रेमचन्द जी होते तो शायद इस कविता के महत्व पर कुछ कहे बिना न रहते। मुझे एक विद्वान वयोवृद्ध ने बताया कि वे भी अपने महान् उपन्यास 'गोदान' पर पुरस्कार न पाने के सिलसिले मे एक कडुवा अनुभव रखते थे। जो हो, पर ऐसी उपेक्षित प्रतिभाओ की कमी तो नही है। अत आलोच्य कविता के द्वारा कवि की यह चोट भले ही नक्कारखाने मे तूती की आवाज जैसी कही जाय, लेकिन महान प्रतिभा के प्रति प्रतिभावानो और प्रबुद्ध पाठको को कविता पढकर क्या हनुमान को शक्तिबोध कराए जाने जैसा ही महसूस नहीं होता ? इस कविता मे भी बच्चन अन्तत 'रघुपतिवादी' अस्तित्ववाद की जय बोलते हैं। व्यक्ति के अस्तित्ववाद की प्रतिष्ठा के लिए उनका यह भारतीय दृष्टिकोण अत्यन्त आदरास्पद है। इस चिन्ताधारा मे बच्चन का पश्चिमी व्यापक अध्ययन-मनन चिन्तन भारतीय दर्शन की उदात्तता से मडित हुआ लगता है, जिसे मैं उनके कवि की महिमावान एप्रोच कहूगा। इस कविता का अन्त और सिसिफ्स वरक्स हनुमान, कविता का उत्तरार्ध इसी महिमावान एप्रोच का क्लाइमेक्स है।

क़लम की महनीयता पर यदि आस्था है तो कहूँ कि इस कविता को पढ़कर प्रतिभा के प्रति अखण्ड आस्था का बोध होता है। और आपको ? और अगर आपका उत्तर अनुकूल है तो आलोच्य कविता की सार्थकता और शक्ति अपने आपमे स्वय सिद्ध है।

× × ×

आलोच्य कृति की सबसे लम्बी और अन्तिम कविता है 'दो चट्टाने या सिसिफ़स वरक्स हनुमान।' अध्ययन, चिन्तन और मनन की दृष्टि से कवि की यह अत्यन्त शक्तिशाली कविता है—सम्भवत मुक्तछद की कवि रचित सर्वश्रेष्ठ कविता।

कविता से पूर्व स्वय बच्चन जी ने इस के सृजन के कथा-कारणसूत्र सुलझा दिये हैं। दतकथाओ के आधार पर कविता स्थूलत चलती है। इस विषय पर अधिक कुछ कहना सगत नही। कवि का सकेत ही काफ़ी है। यहाँ कवित्व के विषय मे कुछ कहने की गुजाइश है।

कविता के सामान्यत दो भाग हैं—पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। इनका प्रतिनिधित्व दो पौरुष करते हैं—पहला सिसिफ़स का और दूसरा हनुमान जी का। पौरुष के इन दो प्रतीको की शक्तियाँ दो चट्टानें कही जा सकती हैं। ज़रा अधिक गहराई से सोचने

से ये दो शक्तियाँ क्रमश पश्चिमी और पूर्वी ससार की लगती हैं। सिसिफस पश्चिम का प्रतिनिधित्व करता है तो स्पष्ट है कि हनुमान जी पूरब का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये दोनो प्रतीकपात्र पौराणिक चरित्र हैं और इनके चरित्र चित्रण के मूल मे जिस पौरुष का ज्वार उठता है कवि ने उसका वर्णन सशक्त शब्दावली मे किया है। पौरुष के प्रतीक सिसिफस और हनुमान के प्रचण्ड व्यक्तित्व को शब्दो मे जैसे यहाँ सजीव कर दिया गया है। यहाँ उदाहरण देकर काम नही चलेगा। रस तो पूर्ण कविता पढकर ही आता है। पर सकेत रूप में कहा जा सकता है कि सिसिफस का उद्धत रूप इस स्थल पर महसूस करते ही बनता है—'श्याम गिरि पर वह खड़ा है····· कि पूरे शैल पर शासन करे वह।'' हनुमान जी के भव्य रूप-चरित्र के वर्णन मे कवि ने जिस सयम और कौशल को प्रदर्शित किया है वह अद्भुत और अपूर्व है।

इस कविता मे मौत के प्रति कवि का अभिव्यजन अत्यन्त प्रबल और प्रभावशाली है। मौत के भयकर कदम कवि के जीवन पर बहुत पहले ही अपनी गहरी छाप छोड गए थे। इसलिए इस कविता मे मौत की मर्मवेधी, सहज व सत्य ध्वनि सुनाई पडती है।

जीवन और यौवन के प्रति कवि की सत्य-कल्पना मिश्रित भावाभिव्यजना 'किन्तु जीवन मनन पर'' से लेकर ''कामिनी, वन सगिनी, अर्द्धांगिनी बन गई नित की'' तक बहुत रग रूप-रसमई बन पडी है। सिसिफस के प्रसग मे अभिव्यक्ति आधी की तरह चलती है। पर हनुमान जी का चरित्र चित्रण आरम्भ होते ही कवि की वाणी में पूर्ण सयम और वैदग्ध्य आ जाता है। उद्दाम भावना आंधी की तरह सहमा ओझल हो जाती है। भक्ति-रस की बदली जैसे बरस पडती है—

> नील शिखा इस पुण्य पीठ को
> आओ पहले शीश झुकाएँ
> कहने की आवश्यकता है?
> उसके आगे
> क्या न तुम्हारा शीश
> स्वय झुकता जाता है?

यही तो राम भक्त महावीर हनुमान का पुण्य-स्थल है!

सम्पूर्ण उत्तरार्ध मे हनुमान जी के चरित्र के प्रति कवि का भक्ति भाव पुरित हृदय बोला है। 'राम' उसके केन्द्र हैं। इस स्थल को पढ़कर सहमा निराला जी की प्रसिद्ध कविता 'राम की शक्ति पूजा' की याद आ जाती है। निराला जी की कविता मे यदि भक्ति-शक्ति का उदात्त समन्वय और ओज है तो बच्चन जी की इस रचना मे इसके साथ ही व्यक्ति के अस्तित्ववाद की आत्म-परमात्ममई चिन्ता का सहज शैली मे विराट बोध भी ध्वनित है।

'शक्ति' का साकार व स्थूल जड-सकुचित प्रतीक है सिसिफस! और 'शक्ति' का साकार, सूक्ष्म चैतन्य तथा विराट् प्रतीक हैं हनुमान जी! कविता के इन दोनों प्रबल प्रतीको की सार्थकता अपने मे स्वत सिद्ध है। निश्चय ही आज पश्चिमी

व्यक्ति-शक्ति की अपेक्षा पूरब की शान संतुलित-सर्वहितकारी व्यक्ति शक्ति की अपेक्षा है, जो महान और महिमावान है।

कविता मे स्थल-स्थल पर कुछ एसी उक्तियां भी आती हैं जो अपनी शक्ति-दीप्ति से मन मस्तिष्क पर गहरे चिह्न डाल जाती हैं, जैसे—"एक तरफा दान कवि का नहीं होता,"—'मृत्यु ! मानव, सृष्टि के सम्राट् की कितनी बडी असमर्थता है। किन्तु चिंतन-मनन पर जीवन ठहर सकता नहीं है।' यहा नारी प्रतिनिधि या प्रतीक है प्रकृति की जो सृजन की अधिष्ठात्री है। (यहाँ संकेत दे दूं कि प्रेयसी के रूप से विशिष्ट नारीत्व को कवि बच्चन ने सम्भवत इतने शुद्ध रूप म प्रथम बार वाणी दी है)।

मौन जग जीवन के प्रस्फुरण के लिए अनिवार्य है। इस प्रकृत व शाश्वत सत्य को कवि ने इस कविता मे नये ढग से व्यक्त किया है— मौन आए की सदाएं लगीं उठने', से लेकर 'उत्साह बन उल्लास बनकर मुस्कराने' तक स्थल पठनीय हैं। इस स्थल पर सहसा गीता का यह श्लोक याद हो आता है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा,
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।

(गीता अध्याय २-२२)

पर बच्चन ने इस स्थल पर आत्म-परमात्म तत्व-बोध से अधिक जीवन-मरण विषयक सहज सत्य-तत्व को महत्व दिया है जो विज्ञान सम्मत होते हुए भी शास्त्र या तर्क सम्मत नहीं वरन् विशुद्ध कवित्वमय है सरस है।

और कुल मिलाकर सिसिफस बरक्स हनुमान कविता अभिव्यक्ति की दृष्टि से अत्यन्त शक्तिशाली रचना है जो कवि की एक सुदीर्घ शब्द शिल्प साधना और प्रौढ-परिपक्व मानसिक चिन्ता की दीप्ति से मंडित है। वह कि यह रचना खडी बोली की गिनती की उदात्त रचनाओं मे एक और महत्वपूर्ण कडी है।

दो चट्टानें कृति को पढकर सम्पूर्ण प्रभाव यह पडता है कि कवि वर्तमान युग के ऊबड-खाबड धरातल पर एक ऐसी जगह पर खडा है जहाँ से यह देख पा रहा है कि विषम परिस्थितियो और विघातक विकृतियो से सामान्य युग जीवन घिरा है। वहाँ कुछ ऐसा असगत है जिसे नहीं होना चाहिये था और शायद इसके साथ ही कवि सामान्य व्यक्ति-जीवन के जीने का और उसकी मुक्ति का एक नवक्षितिज भी देखा चाहता है। कवि के इन हलचली बिम्बो और प्रतीकों का संतुलित और शक्ति-शाली अभिव्यंजन दो चट्टानें कृति की सारी कविताओं को ध्यान से पढने पर ज्ञात होता है।

और इसमे कोई सन्देह नहीं कि दो चट्टानें कृति मे कवि अपने वर्तमान युग-जीवन का संश्लिष्ट, सूक्ष्म, समन्वित और समर्थ चित्रण करने मे (व्यापक ऐतिहासिक परि-

वेश मे) सामाजिक, राजनीतिक और इन सबसे ऊपर मानवीय दृष्टि से निर्विवाद रूप से सफल हुआ है, जिसकी पूर्ण महत्ता चाहे अभी स्थापित न हुई हो लेकिन भविष्य उसका है ।

और सारत .—

दो चट्टानें सग्रह की कविताओ मे पचास प्रतिशत अनुभव, पच्चीस प्रतिशत अध्ययन और पच्चीस प्रतिशत अनुभूति-कल्पना का समाहार है। अत रस सिद्धान्त की कसौटी पर इस कृति को कसना और मूल्याकन करना न्यायसगत न होगा। इस कृति की कसौटी युग-जीवन मन की सच्चाई हो सकती है। इस सच्चाई के प्रति सजग रह कर ही इस कृति का सही मूल्यांकन हो सकता है।

दो चट्टानें सग्रह की कविताओ की बाह्य और अन्तर परक अभिव्यजना की उपलब्धियो का पूर्णत भावन करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जहाँ अभिव्यजन बाह्य परक है वहाँ प्रभाव विशिष्टि नही है। पर जहाँ अभिव्यजन अतर परक है वहाँ प्रभाव विशिष्ट होकर भी साधारणीकृत है। यो कवि अपनी सब्जेक्टिव सर्जना मे अगर पूर्णत सफल है तो आब्जेक्टिव अभिव्यजना मे अधिक सफल नहीं भी है।

यहाँ भाषा मे समाहार शक्ति विशेष है। 'तेरा हार' से लेकर दो चट्टानें यानी इक्कीस मौलिक काव्य सग्रहो मे मुहावरो और लोकोक्तियो का जितना अधिक काव्य-सगत और समर्थ प्रयोग इस कवि ने किया है, पूरे विश्वास से कहा जा सकता है कि किसी दूसरे समर्थ कवि ने नही किया निराला जी ने भी नही किया। शब्दो की सरलता के द्वारा बच्चन ने अपने काव्य को जितना सम्प्रेषणीय बनाया है खडी बोली काव्य में ऐसा दूसरा प्रयास देखने को नही मिलता। परिणाम स्वरूप, बच्चन का काव्य सच्चे अर्थों मे लोक प्रिय होने का सदा अधिकारी बना रहेगा। देशज, उर्दू, तद्भव, आँचलिक व अंग्रेजी शब्दो और 'त' प्रत्यय के (इवानियत, आदमियत साधारणता आदि) प्रयोगों द्वारा बच्चन की जिस समाहार पूर्ण काव्य भाषा का स्वाभाविक विकास हुआ है। खडी बोली काव्य की एक बडी उपलब्धि है, जिसकी जब भी सम्यक समीक्षा की जायगी तो मेरा अनुमान है कि बच्चन की शब्दशिल्प साधना अपनी महत्ता मे अकेली सिद्ध होगी।

बच्चन की मुक्तछदी नवीन काव्य सर्जना मे प्रतीको का प्रयोग वस्तुत बहुत सशक्त और सुलझे रूप में हुआ है। ये प्रतीक परदेसी नही लगते और नही ये अपने अजनबीपन से पाठक को अचम्भे मे डालते हैं। प्राय प्रत्येक प्रतीक भाव विचार के क्षेत्र मे ऐसा प्रकाश डालता है जिससे हमे अपने कुछ महत्वपूर्ण गुम हुए का सहसा पा जाना-सा महसूस करते हैं। और इस दृष्टि से मैं बच्चन के नए काव्य-सृजन को 'नयी कविता' के सृजन से अधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ। मेरे मत से प्रतीक को 'सायरन' या 'सर्च लाइट' के जैसे प्रभाव को लेकर व्यक्त होना चाहिए। मुझे यह स्थापना बहुत सही लगती है कि जो प्रतीक भारतीय चेतना के प्रवाह

मे उल्काम्रो की तरह ग्रतरिक्ष से गिरे हैं उन्हे जन-चेतना स्वीकार नही करेगी बच्चन के प्रतीक भारतीय जन चेतना मे से उभर कर ग्राते हैं—जैसे सिसिफ़स बरक्स हनुमान कविता मे हनुमान का प्रतीक[1]

बहुत दिन बीते

कोई बीस वर्ष बीते मैंने बच्चन जी की मधुशाला पढी थी। तब मेरी रेख॰ उठान जवानी थी। इसके बाद मैंने उनका प्रत्येक काव्य सग्रह पढा। पढा क्या, उसमे ग्रपने को ही पाना गया, खोता गया। न जाने कितने गीत मेरे गले मे ही रुँधे रह गये। कितने गीत गला फाडकर गूँजे ग्रौर कितने साँसो ही साँसो मे सुनाई पडते रहे हैं। पर बहुत दिन बीते 'बुद्ध ग्रौर नाच घर' पढा तो मेरे मन ने पूछा—'तुम' ग्रब गीत नही लिखते? ग्रापही उत्तर मिला—'हाँ, गीतकार बच्चन ग्रब बदल जाना चाहता है।' मैंने सोचा, शायद उसके गीत गाने की उमर निकल गई है। शायद मेरी गीत गाने की उमर भी निकलती जा रही है। पर इससे क्या फ़र्क पडना है? नौजवानो के लिये मधुबाला, मधुकलश, निशा निमत्रण, सतरगिनी ग्रौर प्रणय पत्रिका मे क्या कम गीत हैं? फिर ससद मे, बडे दफ्तरो मे, मत्रालयो मे, थानो मे, कारखानो मे ग्रौर राजनीतिक जल्सो-जलूसो मे भला गीत गाने-सुनाने की क्या जरूरत है? फिर फ़िल्मी गीत क्या कम हैं जो बच्चन जी गीत रचें। जय हो रेडियो सीलोन ग्रौर विविध-भारती की! मगर फिर भी ग्रगर तुम चाहोगे तो बच्चन गीत भी रचेगा। तो लो बच्चन से खलयुग के कोरस! इन्हें गला फाड-फाड कर गाम्रो ग्रौर कानो मे जो तेल डाले मस्त रहे हैं उन्हे सुनाम्रो।' है हिम्मत? खैर, कुछ भी हो, पर 'बुद्ध ग्रौर नाचघर' के बाद बच्चन की किताबो मे ग्रधिकाश ग्रगीत हैं गो ये सिलपट व गद्यात्मक न होकर लय ग्रौर ध्वनि के समन्वय की ऊँची उपलब्धि लिये प्रतीत होते हैं। इसकी सबसे ऊँची चोटी है 'दो चट्टानें' कृति। ग्रौर उसके बाद, इस लेख को लिखते वक्त तक की (८-२-६८) नवीनतम कृति है 'बहुत दिन बीते'। दो कम साठ के कवि

---

१ लायक, फायक, नायक डरकर ग्रन्दर बैठे;
लठ, लफगे, लुच्चे बाहर मूछें ऐंठे
कूद रहे हैं, फाँद रहे हैं मार कुलाचें।—
जुल्म सुना तो तुमने कानों उँगली कर ली,
भ्रष्टाचार दिखा तो ग्राँखों पट्टी धर ली,
चुप्पी साधी, खुलकर लेनी गुडागर्दी,
ग्रौ गांधी के बदर तीनो, लाज-हया हो,
लाल करो मुँह ग्रपना ग्रपना मार तमाचे।
नगा नाचे, चोर बलैया लेय,
भैया, नगा नाचे।

(खलयुग का कोरस . बहुत दिन बीते)

बच्चन ने इसे लिखना शुरू किया था और पूरे साठा पाठा होने पर पूरा लिखकर जनता को भेंट कर दिया।

× × ×

आलोच्य कृति की मैंने अन्तिम कविता 'यात्रान्त' अभी पढ़कर समाप्त की है। इससे पहले भी आलोच्य पुस्तक को पढ़ने के लिये मैं कई बैठकें मार चुका हूँ। इतना ही नहीं; इससे पूर्व की 'दो चट्टानें', 'त्रिभंगिमा' और 'बुद्ध और नाचघर' पुस्तकें भी मैंने पढ़ डाली थीं। इस पढ़ाई के बाद मेरा दिल और दिमाग अब यह कहना चाहता है—कविवर, अब मैं तुम्हारे 'बहुत दिन बीते' पर कुछ कह सकने का विश्वास रखता हूँ।

× × ×

और अब मेरी दृष्टि 'बहुत दिन बीते' पर स्थिर है। लगता है, मेरे युग में सिद्धों की जमातें जमती जा रही हैं। ये नये जमाने के सिद्ध तो बड़े ही चमत्कारी हैं। इनके जादू से बिचारी भोली भाली जनता, भेड़ चाल' में बदली-बदली नज़र आती है। देश की आकृति टेढ़ी-मेढ़ी दीखती है। हर सिद्ध ऊँचा से ऊँचा पहुँचने के लिये 'शार्ट कट' की फ़िकर-फ़िराक में मतवाला है। नये जमाने का सून खोटा हो गया है। पहली कविता में कवि प्रभु से प्रार्थना करता है—'हे प्रभो, सिद्ध करने-वाली चाल फ़रेब से मेरे युगधर्म को मुक्ति दिला।'[1] इस तरह बिस्मिल्लाह ही बड़े पैने व्यंग से होता है। और आगे की दस-पन्द्रह कविताओं में उसका व्यंग्य प्रक्षेपास्त्र के वार की तरह बढ़ता जाता है। छल-युग के हथकंडों, निम्नवर्गी विपन्नताओं, इन्सानियत को खोखला करने वाली झूठी रस्मों, शासन-प्रशासन के सफ़ेद साँपों की काली करतूतों, उनकी जाली दस्तावेज़ों, गांधीवादी दर्शन की दुर्दशाओं, खलों की खुलकर खेलती, नंगी नाचती 'गांधीवादी मंच पर गुण्डागर्दी, क़यामत के दोज़खी फैसलों, नामों-बदनामों की साज़िशों तथा उनकी तिकड़मों और बुद्धिजीवियों को 'एक्सप्लायट' करने वाले विज्ञा, मूल्यहीन अभिनन्दनों आदि के द्वारा उभरने वाले युग-वैषम्य को कवि ने विषैले व्यंग्य द्वारा व्यक्त किया है।[2] 'बहुत दिन बीते' की इन रचनाओं को पढ़ते वक्त मैं सोचता रहा हूँ कि बच्चन के कवि ने यूनिवर्सिटी के वातावरण से वहाँ के अनुकूल कविताएँ लिखने वाला अगर मीठा मसाला संचित किया तो आलोच्य कृति में थोड़े समय में ही संसद् से भी वह काव्य का इतना कड़ुआ मसाला बटोर सका है। देखें, आगे क्या होता है!

× × ×

---

1. लेकिन हे भगवान! इस देश में, फिर इस खोटे जमाने में, सिद्ध करने की कला का विकास कभी न हो; क्योंकि तब तो दिन को रात, रात को दिन—साले को दिन, हाथी को चींटी,—सिद्ध करना भी कठिन न होगा।
2. देखें होली, भारत के चोर, दो प्रतीक, बाढ़ दस्युता का लोकतंत्र, 'क़यामत का दिन, ईंट और पत्थर हम, मेरा अभिनंदन वन्दनाएँ।

हाँ तो इन व्यगपरक (प्रधान ?) प्रारम्भिक दस पन्द्रह कविताओ को छोड, शेष लगभग ५०-५५ कविताओ मे (सग्रह मे कुल ६६ कविताएँ हैं) साठ वर्षीय एक सजग सवेदनशील प्रौढ-कवि का गहरा आत्म विश्लेषण व्यक्त हुआ है। पर यह विश्लेषण किताबी ढग का न होकर व्यवहार सम्मत है, सहज है। इसके द्वारा कवि ने भोगे हुये युग-जीवन के कटु सत्य को वाणी दी है और यह वाणी अपने आप मे दुर्दमनीय प्रतीत होती है। इसे कटु सत्य की वाणी मैंने इसलिए कहा है क्योंकि जीवन के इतने सघातक श्रम-सघर्ष के बावजूद इस जगत से क्य कुछ ऐसा मिला है जिससे एक अध्यवसायी और प्रतिभाशाली व्यक्ति को यह सन्तोष तो हो सके कि अगर उसके जीवन का घोर श्रम सघर्ष अधिक सार्थक सिद्ध नही हुआ तो वह सर्वथा निरर्थक भी नही है—

> क्या यह सुती जगत्
> यहाँ पर बहुत करो मायापच्चो तब
> लग पाती है बस थोडी सी खाक भाल पर।
> (तिलक इसे दुनिया कहती है) ...
> ईर्ष्या, कुंठा, द्वेष, रोष के बढ जाते हैं।

'सुधियाँ सपने औ' 'सच्चाई'

यह निराशा निश्चय ही एक चिन्त्य वस्तु है। किंतु अदृश्य रूप मे इसे ही आदमी की नियति माना जा सकता है। नियति की निममता से बचने का दावा कौन कर सकता है ? बच्चन का कवि ३-४ दशक पूव से इस नियति का शिकार होता आया है। पर इसके खिलाफ उसने सम्पूर्ण मानवीय साहस वक्ष मे भरकर और गला फाडकर स्वर भी जगाया है। पर जो होना था वही हुआ, और होगा भी। कवि की नियति विषयक प्रतिक्रिया 'दो पाटो के बीच' शीर्षक कविता मे विशेषत पठनीय है। जीवन की आकस्मिक दुर्घटनाओ से कौन बच पाता है ? नियति की निर्ममता को न मानकर तो आदमी का जीना और भी मुश्किल है। इसकी ध्वनि इस कवि के काव्य मे शुरू से ही मिलती। खडी बोली काव्य म मृत्युवादी भावनाओ का कारण भी यही नियतिवाद रहा। पर यह नही भूलना चाहिये कि बच्चन ने इसके विरुद्ध 'मधुकलश' तथा 'हलाहल' मे मे विशेषरूप से और अन्य कृतियो मे सामान्यत जीवन की इयत्ता का अमर स्वर भी मुखरित किया है। आलोच्य कृति मे इस स्वर का सम्बन्ध बच्चन के पूर्व काव्य से है। इस प्रसग मे एक तथ्य और भी है। अगर बडी प्रतिभावो मे कुछ बडा लिखने की लपटें होती हैं तो उसकी एवज मे अतत यश पाने की ऐषणा भी अधिक प्रबल होती है।[1] यह एक मनोवैज्ञानिक दुर्बलता है। पर आदमी इससे बच

---

१. शायद 'रस्किन' ने कहा है :
'पब्लिक फेम इज द फर्स्ट इनफरमिटी ऑफ धीरु माइन्ड, लास्ट इनफरमिटी ऑफ नोबिल माइन्ड।'

नही पाना। अपवाद की वात और है। बच्चन जी को निश्चय ही इसका अहसास है कि उन्हे उनके किये का बहुत कम मिला है।[1] असलियत यह है कि इस कवि को मिलने के नाम पर बुद्धिजीवियो की ईर्ष्या और उपेक्षा ही अधिक मिली है। इसे अन्याय कहना अधिक ठीक होगा। इस सबकी स्वाभाविक प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति अत्यत मार्मिक ढग से 'बहुत दिन बीते' की कविताओ मे हुई है। पर मैं समझता हूँ कि 'दो चट्टान' की ही नही बल्कि खडी बोली मे लिखी मुक्तछद की इनी गिनी दो-चार सशक्त कविताओ मे से एक 'सिसिफस बरक्स हनुमान' कविता मे बच्चन का कालजयी जीवनदर्शी कवि सृजन शक्ति की जिस सीमा पर पहुँचा उसका ध्यान कर यह कविता कुछ निराशा देती है। असल मे इसके पीछे कुछ मनोविज्ञानिक कारण हैं। मेरे विचार से बच्चन की सृजनात्मक जीवनी शक्ति की परीक्षा हमारा शिखडी आलोचक वर्ग (मुझे इस कथन के लिये क्षमा करें) नही कर सका। और जनता बच्चन के इतर काव्य की शक्ति को पूरी तरह समझने के लिए कुछ समय लेगी। जो हो, पर कवि को अपनी इस शक्ति के अपव्यय का तीखा अहसास हुआ है, जो होना व्यक्ति के लिए स्वाभाविक है। इस कारण 'बहुत दिन बीते' कृति की अनेक कविताओ के आत्मविश्लेषण के पीछे जीवन की घोर थकान और मन की घुटन-टूटन का पीडन व्यक्त होता है। पर इसी सन्दर्भ के एक महत्वपूर्ण प्रश्न उभरता है—क्या इन कविताओ के ध्वनित मे जीवन की निष्क्रियता ही व्याप्ती है ?

इस प्रश्न का सही उत्तर इस कृति की कविताएँ देती हैं। 'यात्रांत' कविता को जरा गहरे पैठकर पढने पर उसकी शक्ति का ही पता नही चलता वरन् सारे जीवन को शिरा शिरा की शक्ति कौंध उठती है। 'रथ-यात्रा' का रूपक रचकर एक व्यक्ति के मन-जीवन की अप्रतिहत, अव्याहत, आँधी-सी जिस शक्ति का यहाँ बोध होता है वह भला निष्क्रियता को ही देगी ? व्यक्ति के जीवन के शरीर रथ को खीचने वाले मन के तुरग का कैसा वेग होता है, उसमे कितनी शक्ति होती है, इसी बलबूते पर वह अपनी यात्रा का अन्त वहा करता है जहाँ 'सर्वशक्तिमान' का दरवाजा है। जीवन का यह 'यात्रांत' क्या कोई ट्रेजडी है ? मैं समझता हूँ कि यही जीवन का सच्चा सघर्ष व पुरुषार्थमय आनन्द है, परमपद है ?[2] यह आसानी से किसी को उपलब्ध

१ दुनिया के क्षेत्रो मे नहीं कम, जिनमे से कुछ ठोस लक्ष्य मे आ सकता था, ठोस काम कुछ कर सकता था, जिसके होते ठोस नतीजे—तभी अचानक आई शामत, 'गिर्ई गिरा मति फेर' और अब चार दशक के बाद देखता हूँ अपने को—केवल कवि हूँ! (कविता, 'बहुत दिन बीते')

२ रथ बडे बीहड पहाडो बियाबानो, जगलो, जन मर, निर्जन रास्तो से गुजरता, रात दिन चलता, कभी पीछे नहीं मुडता, कहीं क्षण भर भी नहीं रुकता, पौर पर आकर तुम्हारे थम गया है। अश्व थकनाचूर थक कर, और रथ की धूल चूल हिली हुई, ढली पडी हुई—थके घोडो को जरा-सा थपथपा दो—प्यार भरनाते दृगों से कहो, 'आओ घर तुम्हारा ?' —'यात्रांत' कविता

होने वाला आनन्द नही। पर इसके लिये समाधि की जरूरत न होकर संघर्ष को ओट कर आगे बढने के साहस की जरूरत है। जीवन के प्रति प्रतिबद्ध होकर ही ऐसा सुखद 'यात्रांत' हासिल हो सकता है। और यदि यह सच है तो 'बहुत दिन बीते' काव्य-संग्रह सृजन का एक ऐसा कैनवास है जिस पर अंकित है दशको भोगे हुए नियति संचालित जीवन का खट्टा-मीठा अनुभव। उसके प्रति धडकते हुए परिपक्व दिल-दिमाग की प्रतिक्रिया और जीवन और इन्सान के प्रति प्रतिबद्धता का सफल संकल्प।[1] और इस सबसे ऊपर सर्वशक्तिमान के प्रति जीवन की सच्ची, सहज, ऋत-आस्था।[2]

अत संक्षेप और साररूप मे 'बहुत दिन बीते' कृति जगजीवन की गति व्यापने वाले एक जागरूक कवि के निश्छल आत्म-शोध और बोध की एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है जिसे भविष्य की प्रबुद्ध और भावुक पीढियाँ वर्तमान युग-जीवन के कटु-सत्य को समझने के लिये बार-बार पढकर भी ऊबेंगी नही।

× × ×

आलोच्य कृति की विषयवस्तु के प्रति इतना कह लेने पर तद्विषयक अभिव्यंजना पर कहना भी जरूरी हो जाता है। इसके लिये जो बात विशेष है वह है व्यंग के प्रयोग की। बच्चन के व्यंग को मै 'डंक' की संज्ञा देना पसन्द करता हूँ। इस व्यंग मे सौन्दर्य का पानी फेरने के लिये, उसे धारदार बनाने के लिये, कवि ने कुछ पैने-प्रतीको का हत्था पकडा है। मिसाल के तौर पर 'भारत के साँप', 'दो प्रतीक', 'सतयुग का कोरस' आदि कई कविताएं पठनीय हैं। ये व्यंग कवि की दृष्टि का पैनापन तो प्रकट करते ही हैं लेकिन प्राय वर्णन-विस्तार मे व्यंग का असर हल्का भी हो जाता है।[3] डंको का डंक तो संक्षिप्ति मे ही सार्थक होता है।[4] बच्चन व्यंग की जगह जब विवरण देते है, तब प्रवक्ता-से लगते है।

---

१. यागा-भागा नहीं कि जीवन तोड़ दिया जाए जब चाहे, कवि की नियति यही, कवित्व से, कविता से, अपने से भी निर्वासित होकर, शापित इन्सानियत निबाहे। कविता 'कवि की नियति'

२. —जीवन गैर जरूरी कामो मे ही बीत गया है, और सब जरूरी काम मेरे दूसरे जन्म की प्रतीक्षा कर रहे हैं। कविता 'जरूरी गैर जरूरी'
बाढ़ हद गई, उम्र घट गई, सपने-सा लगता बीता है, आज बड़ा रीता-रीता है, कम शायद उससे ज्यादा हो, अब तकिए के तले उमर-सैयाम नही है, जनगीता है ? कविता 'क्यों जीता हूँ'

३ देखें पहली कविता के 'दिन को रात' से लेकर 'गरुड या गिद्ध' तक वर्णन-विस्तार को।

४. शेक्सपियर ने ध्वनि सौंदर्य की स्थापना मे 'ब्रिविटी इज दि सोल ऑफ विट' कह कर 'व्यंग' के प्रभाव को पैदा करने की जो कांटे की शर्त रखी बच्चन की अनेक असरदार कविताओ मे उसका ध्यान रखा जाता तो व्यंग का सौन्दर्य बेजोड़ होता।

मुझे लगता है कि आलोच्य कवि की कविताओं में अभिव्यंजना का सर्वाधिक सौंदर्य ऋजुता में है। यहाँ कहीं पर अस्पष्टता की गाँठें नहीं हैं। कहीं पर प्लास्टिकी फूलों या नन्दन-कानन के कुसमों से अभिव्यंजना की सजावट नहीं की गई है। अधिकांश कविताओं[1] का अंत भी ऐसे नाटकीय ढंग से होता है जिससे एकबारगी जग-जीवन का आस्तीन का साँप जैसा कोई सत्य या अजूबा आँखें नटेरता-सा बिल में घुस जाता है।

और अन्त में, आलोच्य कविताओं की अभिव्यंजना की अन्यतम विशेषता यह भी है कि वह कवि की किसी विशेष मन स्थिति या उसके 'मूड' को इस तरह से सम्प्रेषित करती है कि बाह्य परिवेश और मानसिक प्रतिक्रिया की प्रक्षिप्ति अपने आप पाठक के मन पटल पर अंकित हो जाती है। निश्चय ही ऐसी दशा में दार्शनिक मतव्य से पृथक 'तुम' ही 'मैं' और 'मैं' ही 'तुम' हो जाता है, क्योंकि तब पाठक और कवि की मानसिक स्थिति तथा 'मूड' की ताल मेल बैठ जाती है। इसे 'साधारणीकरण' होना कहा जा सकता है। यह साधारणीकरण इन कविताओं की अभिव्यंजना का प्राण है। अत यहाँ 'तुम' की सीमा की बात करना ही व्यर्थ है। विषय तथा वाणी के विकास के क्रम की दृष्टि से आलोच्य कृति की अभिव्यंजना तक वच्चन ने साधारणीकरण को निभाया है और अपनी अभिव्यक्ति के प्रति जीवन की प्रतिबद्धता की पूरी ईमानदारी बरती है। इस ईमानदारी को नजरदाज करने का मतलब होगा अपने को बेईमान बनाना। ऐसा कौन चाहेगा ?

---

१. जैसे 'कयामत का दिन', 'पार्वात' वक्त का ऐलान, 'साठवीं वर्षगांठ, 'क्यो जीता हूँ' आदि कविताए।

बच्चन के गीतों में दुखवाद

बच्चन के गीतों में दुखवाद

मूलत दुख मन का वह मूलभाव है जो प्राणी को किसी अभाव से अवगत कराता है। यह अभाव पूर्णत लौकिक हो सकता है और वह बहुत कुछ अलौकिक भी हो सकता है। लौकिक भाव स्थूल होता है। अत उस के दुख मे गहनता नही होती, सत-हीपन होता है। लेकिन अलौकिक अभाव सूक्ष्म होता है। प्रश्न उठता है कि दुख जीवन की गति का सम्बल है या अगति का विराम-चिन्ह ? गति से तात्पर्य है जीवन की सक्रियता से और अगति से तात्पर्य है जीवन की निष्क्रियता से। दुख जीवन मे सक्रियता का सचार भी कर सकता है और निष्क्रियता भी ला सकता है। बच्चन के गीतो मे दुख की निष्क्रियता है। पर वहा जीवन की सक्रियता सहसा टक्कर भी मारती है। बच्चन के गीतो मे व्यजित दुख महादेवी के गीतो मे व्यजित दुख की तरह से व्यष्टिपरक है। किन्तु कौन-सा दुख और किसका दुख व्यक्तिपरक नहीं होता ? पर उसकी प्रतिक्रिया और प्रभाव मे अतर हो सकता है। 'घायल की गति घायल जाने' उक्ति मे व्यक्ति के दुख के सहवेदन, संवेदन और प्रसार की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति की गई है। दुख का सहवेदन, संवेदन और प्रसार ही 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' कहने का कारण है। यही व्यक्ति के दुख के उदात्तीकरण का तरीका है। दुख ही व्यक्ति (कवि) की वाणी को समष्टि की वाणी बना देने का जीवन-तत्र है।

× × ×

बच्चन के काव्य में ध्वनित दुख निश्चय ही बच्चन के जीवन का भुक्त दुख है। किन्तु किसी का भी दुख समाज से सर्वथा अछूता कब होता है ? वह हो ही नही सकता। जीवन के दुख के समाज से अछूते क्षण सम्भवत विरल होते हैं। अत यह सोचना भ्रातिपूर्ण है कि बच्चन के जीवन का दुख केवल उन्हीं का नितात निजी है। दुख किसी का सगा नही होता। पर वह परायेपन को अपनेपन मे बदलने की अद्-भुत क्षमता रखता है। यह ध्वनि हरेक कवि के दुख परक काव्य मे होती है। अत बच्चन और महादेवी के गीतो के कई आलोचको की यह धारणा ठीक और ठोस नहीं है कि उनका काव्य व्यष्टि के दुख से ही घिराघुटा है, कि उसमे कुंठा या पीडा प्रधान है। पीडा या कुंठा व्यक्ति की नही, मन की वस्तु है। और मन किसके पास नही होता ? इसलिये बच्चन के गीतो मे ध्वनित दुख किसी आरोप अथवा आक्षेप से मुक्त है। दुराग्रह बात दूसरी है।

महादेवी वर्मा और बच्चन के दुखपरक गीतों मे वैयक्तिकता समानान्तर चलती है। किन्तु महादेवी का दुख अपने अज्ञात प्रिय से केन्द्रित है। वह दिव्य है, स्वय

साध्य है, जबकि बच्चन का दुख या तो 'मैं' से यानी व्यक्ति के स्वय से सम्बद्ध है या प्रणय पक्ष मे अपनी प्रिया से। महादेवी ने दुख की जो उदात्त अभिव्यक्ति की है वस्तुत वैसी किसी अन्य कवि ने नही की। किन्तु बच्चन के दुख गीतो मे दुख का स्वर आत्मा से नही प्राण मन से उभरता है। आत्मा, जिसकी ध्वनि दार्शनिक सुनते हैं। मन, जिसकी ध्वनि भोगी सुनते हैं। यही बच्चन और महादेवी के गीतों की दुख-ध्वनि एक दूसरे से पृथक पहचानी जाती है। इसके लिये एक तरफ महादेवी के दीप शिखा व साध्य-गीत के गीत पढ़े जा सकते हैं और दूसरी तरफ बच्चन के निशानिमन्त्रण और सतरंगिनी के गीत पठनीय हैं। इन्हे पढकर यह पता चलता है कि महादेवी के गीतों से अगर मानवता की मांगलिक ध्वनि गूंजती है तो बच्चन के गीतो से मानवता के मन की ध्वनि गूंजती है। मांगलिकता के महत्व को जीवन मे प्राय कम ही महसूस किया जाता है। पर मर्म की ध्वनि को जीवन मे महसूस न करने का अर्थ है मानव का सभी सम्बन्धो और सन्दर्भों की भावना से अर्थहीन हो जाना। बच्चन के गीत इसी सम्बन्ध भावना को ध्वनित करते हैं।

× × ×

दुख भोग के प्रति व्यक्ति या तो जीवन मे निराशावादी हो जाता है या फिर संघर्ष-वादी। कही वह तटस्थतावादी भी होता है। इससे पृथक दार्शनिक दृष्टि होती है। पर यह दृष्टि प्राय जीवनेतर-सी होती हैं जिससे यथार्थ जीवन कम सम्बद्ध होता है। इस दृष्टि का व्यापक प्रसार उपनिषदो मे हुआ है। छायावादी काव्य मे यह दृष्टि प्रधान रही है। मेरे विचार से दुख की अलकृत अभिव्यक्ति भले ही हो सकती हो लेकिन निश्चय ही वह कृत्रिम होगी। कल्पना मे दुख भोगने की ध्वनि चाहे कितनी भी उदात्त क्यो न कही जाय किन्तु वह सदिग्ध ही लगेगी। जीवन में सबसे बड़ा यथार्थ दुख भोगना है। भोगे हुए दुख मे कल्पना कैसी ? महादेवी वर्मा के दुख-गीतों मे प्रिय विरह की छटपटाहट तो प्रतीत होती है पर चूंकि यहाँ इस प्रिय का प्रतीकार्थ प्रधान है अत उसके दुख की अभिव्यक्ति अस्पष्टता के कारण सदिग्ध बन जाती है और उसी अनुपात मे कम मर्मस्पर्शी हो जाती है। किन्तु बच्चन के दुखपरक गीतो मे चूंकि जीवन मे भोगे हुए दुख के मनोभावों का विवर्त होता है अत वह सीधा मर्म को कुरेदता है। निश्चय ही इन गीतो की अभिव्यक्ति प्राय अनलकृत है पर वह पर-पीडा को छूकर उसे दर्द के दायरो से मुक्ति भी दिलाती है। एवं दुखी के दुख को दुखी जितनी सवेदना से समझता है इसका महसास करने मे इस अभिव्यक्ति का प्रयोजन सिद्ध होता है। बच्चन के पूर्वाध के काव्य को आलोचको ने प्राय 'आह' का काव्य कहा है। अर्थात्, उस पर आरोप है कि उसमे जीवन के अवांछित विषाद को *व्यक्त किया गया है। अत उसमें क्षयी रोमास का राग है। किन्तु सत्य यह है कि* केवल बच्चन ने ही पहली बार जीवन के दुख की यथार्थ अभिव्यक्ति की है और इस अभिव्यक्ति मे दुख जीवन को विषाद की शृंखलाओ मे जकडता नही है बल्कि मन मे विषाद की जमी विषैली पर्तों को उधेडता है और सहज, सुखकर मानवीय संवेदना को

जगाता है। यो यहाँ जीवन मे व्याप्त सुख दुख की मन-क्रीडा का राग है। इसके लिये कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

प्यार पास आए प्यारों के सुख, सुखियों पर छाए
आशिष आशिषवालो पर, मुझ दुखिया पर दुख आए
(प्रारम्भिक रचनाएँ प्रथम भाग—दुखो का स्वागत गीत)

× × ×

तू अपने दुख मे चिल्लाता आँखो देखी बात बताता
तेरे दुख से कहीं कठिन दुख यह जग मौन सहा करता है
मुझसे चांद कहा करता है।
(निशा निमत्रण गीत ३१)

× × ×

साथी, साथ न देगा दुख भी!
काल छीनने दुख आता है, जब दुख भी प्रिय हो जाता है
नहीं चाहते जब हम दुख के बदले मे लेना चिर सुख भी।
(निशा निमत्रण गीत ९६)

× × ×

मैने गाकर दुख अपनाये!
कभी न मेरे मन को भाया जब दुख मेरे ऊपर आया
मेरा दुख अपने ऊपर ले कोई मुझे बचाए।
(एकांत सगीत गीत १८)

× × ×

हरवत समय का जो लगता भारी विपदत नहीं होता
दुख मानव के मन के ऊपर सब दिन बलवत नहीं होता।
(मिलन यामिनी मध्य भाग गीत १०)

× × ×

सुख की घडियों के स्वागत मे छन्दों पर छन्द सजाता हूँ
पर अपने दुख के दर्द भरे गीतों पर कब दहलाता हूँ
जो औरों का आनन्द बना वह दुख मुझ पर फिर फिर आए
रसके भीगे दुख के ऊपर मैं सुख का स्वर्ग लुटाता हूँ।
(मिलन यामिनी, मध्य भाग गीत १३)

× × ×

बडभागी है दर्द बसाए रह सकता है जिसका अंतर
जो उससे वचित हैं उनको फूंकों फूस चिता पर धरकर
दुख की मारी दुनिया को ये क्या समझेंगे, समझायेंगे।
(प्रणय पत्रिका गीत १८)

दुख से जीवन बीता फिर भी शेष अभी कुछ रहता
जीवन की अन्तिम घड़ियों में भी तुमसे यह कहता
सुख की एक साँस पर होता है अमरत्व निछावर।

(सतरंगिनी)

× × ×

बच्चन के निशा निमन्त्रण, एकांत संगीत और आकुल अंतर के गीतो मे जीवन के दुख का दुर्दमनीय स्वर है। लेकिन इस स्वर की शक्ति को प्राय समझा नही गया। व्यक्ति के जीवन का एक सलोना नीड लुट गया। सत्य मिट गया, सपना टूट गया सगिनि छूटी, सगी भी छूटा और वह एकदम अकेला रह गया और इस सारे दुख को झेलकर कवि ने जीवन मे सदा दुखी रहने का आदर्श बनाने की बात भी सोची। पर यह आदर्श उसे थोथा लगा। इस थोथेपन की अभिव्यक्ति सहसा कवि के सतरंगिनी गीत सग्रह मे हुई। पर दुख का महान मूल्य तो कवि ने पहले ही चुका दिया था साथ ही उसने अपनी सम्पूण मानवीय शक्ति बटोर कर दुख से दुर्द्धर्ष सघर्ष भी किया। जीवन के सुख की खातिर दुख से सघर्ष करने के लिए जिस साहस और सकल्प को जुटाने की जरूरत पडती है, व्यक्ति को जितना 'वर्क अप' होना पडता है उसकी तीखी ध्वनि बच्चन के निशानिमत्रण, एकांत सगीत और आकुल अतर के गीतो मे सुनाई पडती है। इसके बाद सतरगिनी जीवन के महान दुख पर फहराती महान सुख की विजय पताका सी प्रतीत होती है। सतरगिनी के गीत दुख की विदा और सुख के स्वागत के अनूठे स्वरो से युक्त हैं। पर जीवन मे सुख के स्वागत का आधार दुख और उसके साथ व्यक्ति का सघष है। इस प्रकार कुल मिलाकर बच्चन के काव्य मे सुख दुख का यथार्थ ससार ही गु जित हो उठा है।

ईमानदारी से दुख-सुख की पूर्ण अभिव्यक्ति के क्षण भी तो सीमित होते हैं। अत श्रेष्ठ सृजन का सीमित होना भी स्वाभाविक है।

सक्षप मे, बच्चन के दुख गीत और गीतांश खडी बोली गीतकाव्य मे प्रथम श्रणी के हैं। पर यह भी सच है कि ऐसी रचनाएँ सख्या म अधिक नही हैं। हो भी नही सकती।

★

अस्तित्व के दो अबुझ अंगारे

मधुकलश और हलाहल

अस्तित्व के दो अबुझ अंगारे

मधुकलश और हलाहल

व्यक्ति और उसके अस्तित्व के विषय में निश्छल आत्माभिव्यंजन करना बच्चन के काव्य का लक्ष्य है। व्यक्ति के अस्तित्व के विषय में, विभिन्न दार्शनिक सीमाओं में, भिन्न भिन्न मत हैं। समाज शास्त्र का दावा है कि समाज से अलग व्यक्ति का अस्तित्व कुछ भी नहीं है। नास्तिक, व्यक्ति (अर्थात् जीव) के अस्तित्व को स्वीकारता है। भारतीय शुद्ध आध्यात्मिक दर्शन जीव का जगत में आविर्भाव और अस्तित्व परम-शक्ति (ब्रह्म) की इच्छा का परिणाम मानता है। नाम रूप की उपाधि से परे होकर चेतन (जीव) का अस्तित्व असीम में तिरोहित हो जाता है। यही जीव की मुक्ति है। यह शुद्ध आस्थावादी चिन्ता है, जिसमें जीव या चेतन का, 'मैं' या, अहम् का, (अर्थात् व्यक्ति का) अस्तित्व विराट् का बिंदु प्रतीत होता है—

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है
जित देखों तित पानी
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना
यह तत कह्यो गयानी

(कबीर)

'मैं' (अर्थात् जीव) ब्रह्म हूँ—'अहम् ब्रह्मास्मि'। 'मैं' के इस अस्तित्व-बोध में अणु और असीम या जीव और ब्रह्म मूलत: एक दूसरे से पृथक् नहीं हैं। मूलत: भेद में अभेद निहित रहना, यह तो 'मैं' का ही घनत्व है। इस प्रकार भारतीय चिन्ता में व्यक्ति का यानी 'मैं' का अस्तित्व दुर्बल दृष्टि से नहीं देखा गया। अपने 'मैं' को भगवान् के समक्ष रखने के लिए भक्तों ने कवित्व चातुर्य से उसे अत्यन्त दीन-हीन भले ही अभिव्यक्त किया है किंतु, 'मैं' को नकारा कहीं भी नहीं है। 'मैं' की इससे बड़ी महत्ता और किस बात से सिद्ध होगी? वर्तमान वैज्ञानिक क्रांति ने पुरानी अन्तर व बाह्य जर्जर मान्यताओं को दबा लिया है। आज जग, जीवन, प्रकृति, व्यक्ति और समाज के सूक्ष्म-स्थूल रूप का प्रत्येक पार्श्व वैज्ञानिक चिन्तन और अनुसंधान के आलोक से चमत्कृत हो उठा है। पुराने आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक रूढ़ संस्कार रेडियो धर्मी प्रकाश पुंज के आघात से ढहने लगे हैं। इस ढहन प्रक्रिया में निश्चित ही मनुष्य का भीतरापन विघटित हो रहा है। व्यक्ति व्यक्ति के मन में अपनी ही दुर्बलता का अहसास कचोटने लगा है। अपने अस्तित्व के प्रति उसे एक खतरा महसूस हुआ है। इस खतरे ने व्यक्ति-मन में अपने अस्तित्व को बनाये रखने की प्रबलतम् भावना का विस्फोट भर दिया एवं मानसिक

असन्तोष ने व्यक्ति को विद्रोही बना दिया। इन विद्रोहियों का एक समाज भी बना। इस समाज ने जग जीवन के भिन्न भिन्न क्षेत्रों मे क्रांतिकारी धर्म कल्पना के तंतु बुने। विगत लगभग दो शताब्दियों का मानवीय कर्म कल्पना का इतिहास इस बात का साक्षी है। औद्योगिक क्रांति राजनीतिक क्रांतियाँ सामाजिक मूल्यो के उतार चढाव आदि के ऐतिहासिक तथ्यो को हम झुठला नही सकते। और अभी यह विद्रोही समाज रचनात्मक है। हम यहाँ परिणाम की बात नही करेंगे। परिणाम दो ही होते हैं, शुभ या अशुभ! मानव समाज इन दोनों को सहभता आया है और भोगता भी आया है। अनिष्ट की आशका से कभी महान् सृजन और परिवर्तन नही रुका। यही सृजन की अद्भुत शक्ति है!

× × ×

बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे विश्व के व्यक्ति ने अस्तित्व की रक्षा का भाव *अत्यन्त तीव्रता से अनुभव किया है। अस्तित्व की रक्षा के लिए डार्विन, मार्क्स, फ्रायड* और जुंग आदि मनीषियो ने अनेक क्रांतिकारी विचार तथा सिद्धान्त सुझाये। अस्तित्ववाद के दार्शनिक पक्ष की बौद्धिक गुत्थी को सुलझाने के लिए कुछ आचार्य सामने आये। स्पेंगलर ने सांस्कृतिक भाव सस्कार के ध्वस पर कहा कि बाह्य वैज्ञानिक विकास करना चाहिए जिससे कि अस्तित्व की रक्षा हो सके। जीवन के अस्तित्व के प्रति जो एक आंतरिक सकट पैदा हो गया था उससे बचने के लिए व्यक्ति को अपनी दुर्दमनीय शक्ति को जगाने और जानने की जरूरत पडी। यो अस्तित्ववादी दर्शन "मैं" की (या व्यक्ति की) सूक्ष्म विराट् शक्ति का दोषक है। अब प्रश्न यह उठता है कि यह "मैं" या व्यक्ति का अस्तित्व क्या समाज का शत्रु नही है? इसका उत्तर यह है कि अस्तित्ववादी दर्शन मे व्यक्ति के अस्तित्व को अवश्य स्थापित किया गया है, किन्तु उस समाज से उसका कोई विरोध नही है जिसमे धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक आधार पर अन्याय अथवा अनीति नही है। व्यक्ति और समाज का विरोध तो वही पैदा होता है जहाँ नियमो और पाखण्डो की आड मे व्यक्ति के जन्मसिद्ध अधिकारो का अपहरण या शोषण होता है। जब व्यक्ति को कालकोठरी मे बंद कर दिया जाता है और वहाँ वह मुक्ति के लिए दीवारो से सर पटकता है। उसका यह सर पटकना ही अर्थात् कालकोठरी मे मुक्ति की दमघोटू कामना करना ही 'काफ्का' के विचार से अस्तित्ववादी दर्शन की उग्र चेतना है। ज्यो पाल सात्र ने अपने ढुलमुल दिखावा के बावजूद बडी प्रबलता से यह स्थापित किया कि व्यक्ति मे सघर्ष का अस्तित्व है और उसका मात्र कारण किसी कुछ का अभाव है। फिर कहे कि इस युग मे अस्तित्ववादी व्यक्ति का मूल विरोध नये समाज से नही है। उसका विरोध तो उस बर्जुआ समाज से है जो वास्तविकताओ को झुठलाकर आदर्शों के खोखले भजन गाता है और जो जीवन की स्वाभाविक मांगो की उपेक्षा कर व्यक्ति को अभाव का अहसास कराता है—

प्राण प्राणों से सके मिल किस तरह दीवार है तन
काल है घडियाँ न गिनता बेडियों का शब्द झन-झन

वेद लोकाचार प्रहरी ताकते हर चाल मेरी
बद्ध इस वातावरण मे क्या करे अभिलाष यौवन ?

(कवि की वासना)

यहाँ अस्तित्ववादी दर्शन की इस सक्षिप्त-सी पृष्ठभूमि को जानकर हम बच्चन के व्यक्तिवादी काव्य पर एक दृष्टि डालेंगे।

बच्चन की अधिकांश (विशेषत पूर्वकालीन) रचनाओ मे व्यक्ति के अस्तित्व की व्यजना प्रधान है। कवि का मूल व्यापक भावदर्शन किसी माध्यम से, प्रतीक रूप मे, अभिव्यक्त होता है। तुलसीदास जी का भाव-दर्शन राम के प्रतीक द्वारा मूर्तिमान हुआ है। तुलसीदास के काव्य को समझने के लिए राम को समझना और उसे आत्मसात करना आवश्यक है। प्रकारातर से राम भी 'मैं' हैं। उन्हे 'मैं' से पृथक कर उनके महान जीवन चरित्र को समझने का दावा कौन करेगा ? तात्पर्य यह है कि काव्य म 'मैं' किसी खास व्यक्ति का सूचक नही है। वह तो एक माध्यम है, एक प्रतीक है, जिसस कवि का पूर्ण व्यक्तित्व व्यक्त होता है। और व्यक्तित्व के निर्माण मे, समाजशास्त्र की मान्यता के अनुसार व्यक्ति मे सामाजिक भले बुरे दोनो प्रकार के तत्व समाहित होते हैं। मूलत व्यक्ति 'बायलाजिकल' है। और इसलिए उसकी अपराधवृत्ति उसे अपराधो से सर्वथा पृथक नही कर देती। क्योकि कोई भी व्यक्ति अपने आदिम सस्कारो से सर्वथा रिक्त नही हो पाता। अत सामाजिक दृष्टि से व्यक्ति के बहुत से अपराध प्रत्यात्मक रूप म उसी के न होकर समाज के सभी व्यक्तियो के होते हैं। इसी तथ्य की प्रखर अभिव्यक्ति, सहजता से मधुकलश के कवि ने की है—

क्या किया मैंने नहीं जो कर चुका ससार अब तक
वृद्ध जग को क्यो अखरती है क्षणिक मेरी जवानी
मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधू समझता
शत्रु मेरा बन गया है छल रहित व्यवहार मेरा

(कवि की वासना)

× × ×

इस कुपथ पर या सुपथ पर मैं अकेला ही नहीं हूँ
जानता हूँ क्यो जगत फिर उगलियाँ मुझपर उठाता
मौन रहकर इस लहर के साथ सभी बह रहे हैं
एक मेरी ही उमगें हों उठी हैं व्यक्त स्वर मे ··
पाप की ही गैल पर चलते हुए ये पाव मेरे
हँस रहे हैं उन पगों पर जो बँधे हैं आज घर मे

(पथ भ्रष्ट)

असल म 'मैं' (चाहे वह अपराधी हो या उपकारी) को मजाक बनाकर नही उडाया जा सकता। सम्पूर्ण सत काव्य में 'मैं' परमात्मा के पास पहुँचने का एक महत्वपूर्ण माध्यम रहा है एक सुदृढ सेतु-सा ? 'मैं' को समझना, उसको धुनना और उसके

अस्तित्व के प्रति अटल विश्वास बनाये रखना बड़े जीवट का काम है। जो 'मैं' को समझ सकता है वह अपने जी से दूसरा के जी की बात जान लेने का दमदार दावा भी कर सकता है। 'मैं' को मिटाकर मरा जा सकता है जिया नहीं जा सकता। जीने की सबसे बड़ी शर्त है 'मैं' की शक्ति को समझना, उसे परखना।— मैं', जो जीव के अस्तित्व का अकेला और अमर साक्ष्य है।

× × ×

खड़ी बोली काव्य में 'मैं' के अस्तित्व को मैंने 'मधुकलश' में पहली बार कवित्व के माध्यम से समझा है। और मुझे सहज ही यह महसूस हुआ कि 'मधुकलश' के 'मैं' का कवि बहुत सशक्त, संघर्षशील और संवेदनशील (भी) है। वह बहुत टूटा है, पर अपने अर्थात् जीव के अस्तित्व को लघु जानकर भी वह उस रचनात्मक समझता है, उसे महान मानता है—

> अग्रसर होता अधर में कल्पना दृग पर सँवर जब
> अरब द्वादश अंशुमाली के न पा सकते मुझे तब
> पल चढ़ा आकाश में हूँ, पल पड़ा पाताल में हूँ
> चंचला को भी चपलता मिल सकी मुझ सी भला कब ?
> आज मिट्टी के खिलौने हाथ हैं मुझ तक बढ़ाते
> छू नहीं सकते कभी वे स्वप्न में भी छाँह मेरी

(कवि का उपहास)

सोचता हूँ, व्यक्ति जब अपने आपका ही दर्पण, दृश्य और दृष्टा जान लेता है तब उसका सामाजिक ह्रास अथवा अलगाव क्या सम्भव है ? अपने को समझने की शक्ति बहुत महान होती है। इसे समझ लेने पर सभी आलोचनाएँ ठंडी पड़ जाती हैं। 'मधुकलश' में मैं एक ऐसे ही कवि व्यक्ति को देख सका हूँ—

> मैं हँसा जितना कि खुद पर कौन हँस मुझ पर सकेगा
> और जितना रो चुका हूँ रो नहीं निर्झर सकेगा
> मैं स्वयं करता रहा हूँ जिस तरह प्रतिशोध अपना
> मानवों में कौन मेरा उस तरह से कर सकेगा

'मधुकलश' व्यक्ति की विवशता के प्रति खीज और आक्रोश को रागात्मक पद्यो-छंदो में रूपायित करने का प्राणवन्त प्रयास है। विशिष्टता यह है कि यहाँ संयम है, तटस्थता है। यहाँ सहृदयता है, सहजता है, भाव-स्वरा और सम्बद्धता है। देखिए—

> जीवन में दोनों आते हैं मिट्टी के पल, सोने के क्षण,
> जीवन से दोनों जाते हैं पाने के पल, खोने के क्षण,
> हम जिस क्षण में जो करते हैं हम बाध्य वही हैं करने को
> हँसने के क्षण पाकर हँसते हैं रोते पा रोने के क्षण

(मधुकलश)

मधुकलश' के कवि में अपने सृजन के प्रति जिस आत्म विश्वास का बोध व्यक्त

होता है वह किसी एक का नहीं वरन उन सबकी अनुभूति का सगा है जो अपने जी से दूसरे के जी की बात जानने की इच्छा रखते हैं। यों 'मधुकलश' के 'मैं' परक कवि का आत्म-प्रसार हुआ है, जो खोट मिला हुआ सोना नहीं, कुंदन प्रतीत होता है। देखिये—

उस जगह जलधार बहती जिस जगह पर हैं तृणांकुर
फूल हैं उस ठौर फूले बोलती जिस ठौर बुलबुल .....
वृष्टि का होना सफल यदि एक भी तृण हो धरणि पर
एक भी तरु मंजरित यदि व्यर्थ कोयल का नहीं स्वर
वायु का बहना निरंतर मैं नहीं कहता निरर्थक
एक सर लहरा उठे यदि कर उठे द्रुम एक मरमर... ....

और सतत कवि का आत्म विश्वास है कि—

हूं नहीं निष्फल कभी यह गीतमय अस्तित्व मेरा
प्रतिध्वनित यदि एक उर में एक क्षीण कराह मेरी
(कवि का उपहास)

'मधुकलश' के गीतों की उर में प्रतिध्वनित होती हुई यह कराह, यह चोट, यह चीत्कार, कृति को तीव्र प्रियता प्रदान करती है।

'मधुकलश' का कवि मानवीय सहज आकांक्षाओं एवं भावनाओं को खूब समझता है और उनकी कद्र करता है। इस कवि ने इतने पर भी जीवन के किसी पक्ष के प्रति नकारात्मक या उपेक्षा के भाव-विचार व्यक्त नहीं किए। आप सारी रचनाएँ पढ़ जाइये, जीवन की परिक्रमा ही परिक्रमा प्रतीत होगी। इस कवि का काव्य कोरे कागज पर नहीं जीवन-मानस पर लिखा हुआ है। जीवनानुभूति के रस को ध्वनित करने के लिए मधुकलश का एक उदाहरण प्रस्तुत है। यहाँ शुष्क तर्क नहीं है प्रत्युत रसास्था है—भाव और बोध का सहज संतुलन इस अंश का आकर्षण है—

शंख की ध्वनि यदि जरूरी झांझ की झंकार भी है
काठ की माला जरूरी यदि, कुसुम का हार भी है
शुष्क ज्ञानी चाहिये तो चाहिये रस सिद्ध कवि भी
सत्य आवश्यक अगर है स्वप्न की दरकार भी है
(कवि का उपहास)

× × ×

एक स्थल पर किये हुए को अ-किया हुआ कहने करने की सामर्थ्य भी यदि मनुष्य में नहीं रहती तो नियति जन्य विवशता को स्वीकार करने में क्या फ़र्क पड़ता है? पर नियति से पराजित होकर भी अपराजेय, और क्रियाशील बने रहने का सन्देश मधुकलश के कवि ने सर्वथा नई भंगिमा से दिया—

पाँव चलने को विवश थे जबकि विवेक विहीन था मन
आज तो मस्तिष्क दूषित कर चुके पथ के मलिन कण

मैं इसी क्या करूँ अच्छे-बुरे का भेद भाई
लौटना भी तो कठिन है चल चुका युग एक जीवन
हो नियति इच्छा तुम्हारी पूर्ण मैं चलता रहूँगा
पथ सभी मिल एक होंगे तम भरे यम के नगर मे !

'मधुकलश' मनोनुकूल जीवन जीने की व्यक्ति की अदम्य महत्वाकांक्षाओं, क्षमताओं स्वच्छदताओं और उसके लांछित किंतु अटूट अस्तित्व व्यक्तित्व को प्रबल पदों छंदों मे स्थापित करने का एक अनूठा प्रयास है । यदि उसे व्यक्ति के अस्तित्व का चीत्कारित धूमकेतु या 'मैं' के अस्तित्व बोध का उद्‌घोष कह दिया जाय तो अत्युक्ति न होगी । देखिये—

थी तृषा जब शीत जल की खा लिये अंगार मैंने
चीथडों से उस दिवस था कर लिया शृंगार मैंने—
राजसी पट पहनने की जब हुई इच्छा प्रबल थी......
वासना जब तीव्रतम थी बन गया था सयमी मैं
है रही मेरी क्षुधा ही सर्वदा आहार मेरा

(कवि की वासना)

×   ×   ×

राग के पीछे छिपा चीत्कार कह देगा किसी दिन
हैं लिखे मधुगीत मैंने हो खडे जीवन समर मे

(पथ भ्रष्ट)

×   ×   ×

देख सूखे होठ मेरे और कुछ सन्देह मत कर
रक्त मेरे ही हृदय का है सना मेरे अधर में. ..... .
रक्त से सींची गई है राह मंदिर-मस्जिदों की,
किंतु रखना चाहता मैं पाँव मधु-सिंचित डगर मे
है कुपथ पर पाँव मेरे आज दुनिया की नजर मे

(पथ भ्रष्ट)

×   ×   ×

मधु-कलश को बारबार पढ कर मैंने यह सोचा है कि उसमे तो बच्चन नाम के कवि (व्यक्ति) ने अपने ही जीवन की घटनाओं, पीडाओं और उसे मुक्ति दिलाने वाली मानवीय शक्तियों को ध्वनित किया है । जग निंदा के प्रति कडी सफाई भी पेश की है । फिर मधुकलश से हमारा क्या नाता है ? हम उससे क्या मिलता है ? और मूल आपत्ति तो यह है कि मधुकलश नितांत व्यक्ति परक काव्य है । वहाँ एक बौना व्यक्ति समाज के प्रति कितना विध्वंसक है—

हाय ले दुनिया मनाले जग चला मुझको रुलाने
जल उठी धधक मुझे दे धन्य अन्तर्दाह मेरी ।

निश्चय ही 'मधुकलश' मे एक बौने व्यक्ति का विराट् से होड लेने का ओछा अभिव्यजन है। लेकिन जब पिटे हुए, पुराने मूल्यो से प्रभावित पाखडी समाज प्रतिभावान नवयुवक वर्ग की क्षमता का अवमूल्यन करे, उसकी स्वच्छद भावना को लाछित करें तब सिवाय विद्रोह करने के और चारा ही क्या रह जाता है ? और व्यक्ति जब कवि हो तो यह विद्रोह काव्य-वाणी-वनकर व्यक्त होता है। नेता हो तो नारो-भाषणो मे व्यक्त होता है। इसी प्रकार भिन्न भिन्न प्रतिभाओ का विद्रोह भिन्न-भिन्न रूपो मे प्रकट होता है। ऐतिहासिक सदर्भों म व्यक्ति विद्रोह की ऐसी जलती हुई मिसालें क्या कम है ? चाणक्य, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, झासीकी रानी, मीरा, कबीर, तुलसी आदि ने जन मन क्रांति की अभिव्यक्ति व्यक्ति के विद्रोह को जगाकर ही की है। यह दूसरी बात है कि प्रत्येक की ध्वनि-धारा और उसका दिशि पथ पृथक हो। राजनीति मे क्राति समाज के स्वर से शुरू होती है साहित्य मे व्यक्ति के स्वर से ।

बच्चन ने अपनी सीमा म प्राय व्यक्ति के विद्रोह को प्रबल वाणी दी है। 'मधुकलश' मुझे इस दृष्टि से हिन्दी का अपने ढग का अकेला सृजन लगता है।

और हलाहल ? हलाहल का स्वर व्यक्ति के खडित अस्तित्व की जय का स्वर है।

गरल पी भी मेरी आवाज अमरता का गाएगी गान,

'हलाहल' म मधुकलश के स्वर की दुर्दमनीय अक्खावल शक्ति प्रधान न होकर एक सूक्ष्म दार्शनिक चिता भी चलती रहती है। इस चिता का आधार जीवन का सत्य अथवा युग का यथार्थ है—

न जीवन है रोने का ठौर, न जीवन खुश होने का ठौर
न होने का अनुराग, विरक्त, अगर कुछ करके देखो गौर
रहे गु जित सब दिन, सब काल, नहीं ऐसा कोई भी राग
गया उस देश न आया लौट, अरे, कितना उसका विस्तार
कि उसकी जब करता हूं खोज स्वय खो जाता खोजनहार
ताज का एक एक पाषाण कहा करता दिन रात पुकार—
मुझे खा जाएगी दिन एक इसी यमुना की भूखी धार

अणु-परमाणु के अस्तित्व और उसकी अपरिमित शक्ति (ऊर्जा) का लोहा आज का विज्ञानवादी स्वीकार करता है। परमाणु की शक्ति-ऊर्जा आज विराट् से होड ले रही है। यही सूक्ष्म सत्य 'अहमृब्रह्मास्मि' सम्बन्धी दार्शनिक निरूपण मे हमारे दिग्गज मनीषियो ने मथा है जो सम्पूर्ण भारतीय दार्शनिक चिता का सार है और आधुनिक व्यक्तिवादी अस्तित्वबोध का सर्वस्व है। 'हलाहल' का भावबोध और चिंतन कल्पना वैभव इसी चिता के अन्तरगत चलता है—

अहर्निश मेरा यह आश्चर्य कहाँ से पाकर बल विश्वास
बबूला मिट्टी का लघुकाय उठाए कधो पर आकाश

और लघु मानव के अस्मिता बोध की यह अभिव्यक्ति कितनी प्रखर है—

दासरा मन ऊपर का देख सहारा मन नीचे का माग

अत मेरा सुभाव है कि व्यक्ति के मर्म और उसके अस्तित्व को समझने के लिये 'हलाहल' का पाठ अपेक्षित है—

मरण या भय के अदर व्याप्त हुआ निर्भय तो विष निस्तत्व
स्वय हो जाने को है सिद्ध हलाहल से तेरा अपनत्व

तभी तो, एक बार जब मैंने अपने पेट के मेजर ऑपरेशन की खबर बच्चन जी को टेलीफोन पर मरी-मरी सी आवाज़ मे दी तो उन्होंने तपाक से कहा, 'हाँ-हाँ करालो। *और देखो, आज रात तुम मेरा 'हलाहल' पढना।'*

दर्द बहुत था। रात भर नीद नही आई। मैं रातभर हलाहल पढता रहा। और दूसरे दिन सवेरे डाक्टरो ने ऑपरेशन करने की कोई जरूरत नही समझी। दर्द दवाओ से एकदम दब गया। और अब सोचता हू कि मुझ पर शायद हलाहल पाठ का ही यह 'सायकोलोजिकल' असर था। सच, मेरे लिये तो वह चमत्कार बन गया, पुर्नजीवन बन गया।

पर मुझे यह जानकर आश्चर्य नही खेद होता है कि हमारा पाठक अभी तक केवल 'मधुशाला के कवि को ही जानना है। शायद वह 'मधुकलश' और 'हलाहल' के पास तक पहुँचने मे कतराता है। तो क्या यह असमर्थता है? क्या हमारी रुचि, रूढ़ि-ग्रस्त है?

× × ×

'हलाहल' की पूर्ण कवित्व शक्ति को समझने के लिए जीवन के निर्मम भुक्त से, व्यतीत से और क्रूर काल-कर्म से व्यक्ति को जूझने की तीव्र प्रेरणा और मानवीय शक्ति अर्जित करनी होगी। यदि व्यक्ति का व्यतित्व इस प्रकार का बन चुका है, यदि उस का व्यतित्व काल-क्रम जयी बन गया है तो 'हलाहल' की कवित्व-शक्ति को समझना कठिन नही होना चाहिए। पर ऐसी कितनी कृतियाँ होती हैं, और कितने कवि जीवन को इस भाति जीकर आस्थावान और सृजन रत रहते हैं? जो सचमुच ऐसे हैं 'हलाहल' का उन्ह सौ सौ बार निमत्रण है। पर एक खास बात भी है—

सुरा पीने को थी बाजार
हलाहल पीने को एकाँत,
सुरा पीने को सौ मनुहार
हलाहल पीने को मन शाँत
हलाहल पीकर भी यदि साथ
किसी का चाहो, तो नादान,
अकेलापन है पहला घूँट
हलाहल का लो इसको जान।

अपने चारो ओर की युगीन (राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक) परिस्थितिया *और परम्पराओ से मधुकलश का कवि इतना जागरूक था कि उसे अपना पथ निश्चित* करना कठिन हो गया। उसे पिटी चीजें पसद नही थी। अपने लिए वह

'नवीनता' का पथ चाहता था। मन मे, तन मे, जीवन मे सब जगह प्यास थी। और उसे उस प्यास के लिए मधु अथवा विष, जो कुछ भी हो, जुटाने की, उसे पी जाने की प्रबल आकांक्षा थी। क्योंकि सबसे बडी बात ये थी कि उसे अपने कवि पर सभी कवियो से अधिक बडा विश्वास था। देखिए—

स्थल गया है भर पथो से
नाम कितनो के गिनाऊं
स्थान बाकी है कहाँ पथ
एक अपना भी बनाऊ
विश्व तो चलता रहा है
थाम राह बनी-बनाई
किन्तु इस पर किस तरह मैं
कवि-चरण अपने बढ़ाऊ ?
राह जल पर भी बनी है
रूढि, पर न हुई कभी वह
एक तिनका भी बना सकता
यहाँ पर मार्ग नूतन !

'जल पर राह बनने पर भी वह कभी रूढि नहीं बनती'—इस भाव-विचार के बल पर इस कवि ने छायावादी-रहस्यवादी काव्य से कट कर 'मधु-काव्य' की रचना की। और निश्चय ही बच्चन की मधु-काव्य की सर्जना स्वय किसी और के लिए तो क्या, उनके लिए भी रूढि न बन सकी। इसके उपरान्त बच्चन ने कुछ और तरह से लिखा है। पर उनके मधुकाव्य का मूल्य अपने मे स्थिर है। और कुल मिलाकर बच्चन के सम्पूर्ण काव्य सृजन मे 'मधुकलश' अजेय पौरुष का प्रतीक-सा अनुभव होता है। और हलाहल ? वह तो अजेय मन का मथित पदार्थ है, प्रसाद है। हलाहल, मधु का सहजन्मा, उसका सहोदर ! जिसे पानकर शिव अमर हैं, असीम है, महिमावान है।

हलाहल पीकर लेगा जान कि तू है कितना महिमावान
नहीं है उनमे तेरा स्थान कि जिनका होना है अवसान
हुई है फिर फिर जग की सृष्टि हुआ है फिर-फिर जग का नाश
कि तू दोनों स्थितयो से भिन्न तुझे हो फिर-फिर यह विश्वास

इन पक्तियो का गम्भीर अर्थ अथवा महत्व तो शैवागमो का कोई गम्भीर ज्ञाता हो बता सकता है। किन्तु प्रतिभावान तथा समर्थ व्यक्ति के अजेय व्यक्तित्व को और उसके मनस्तत्व को समझने के लिए 'हलाहल' का मूल्य और महत्व स्थाई है। यो मेरा मत है कि अस्तित्ववादी दर्शन की यदि सशक्त अभिव्यजना आपको देखनी है तो पहले कवि की इन पक्तियो को ध्यान से पढ़ा जाना चाहिए—

एक मे जीवन सुधा रस दूसरे कर मे हलाहल

अर्थात् एक हाथ मे मधुकलश और दूसरे मे हलाहल ? और अब आप इन्हें

साथ-साथ पढ़ियेगा। क्योंकि जग जीवन मे मधु और हलाहल को (भावात्मक स्थिति मे) पृथक-पृथक समझना अत्यत कठिन है। पर इन दोनो के प्रति समरसता का भाव अनुभव करते हुए उनका रसास्वादन करना एक महान स्थिति है।

मधुकलश और हलाहल की व्यक्ति परक अभिव्यजना के पीछे मनुष्य की नियति है। आगे जग समाज का क्रूर विधान है। बीच मे आकाक्षाओ के धधकते हुए अगारे हैं। इस सबकी अभिव्यक्ति अनिवार्य थी नही तो व्यक्ति-विस्फोट हो जाता अत नियति समाज-जन-जीवन और अन्तर्दाह के परिवेश मे कवि की (जीव की) महत्वाकाक्षा का, उसके आत्म साहस और सघर्ष का, उसके टूटे-जुडे अस्तित्व के प्रखर स्वर का मुखरण बच्चन के कवि को खडी बोली की सभी समर्थ कवियो से पृथक कर देता है। यह पृथकता उसके कृतित्व और व्यक्तित्व को समाज और सृजन की दृष्टि से 'इन फीरियर, या 'आयसोलेट' सिद्ध नही करती बल्कि उसका 'सिगनिफिकेन्स' सिद्ध करती है। कई मानो मे वह 'सुपिरियर' भी है। चोट खाए हुए अहम् तथा अस्तित्व की कितनी भावशवलताएँ और कितनी दुर्दमनीय दर्पोक्तियाँ होती हैं, सदर्भवश कहूँ कि बच्चन कृत एकांत सगीत तथा मधुकलश के गीतो को पढ़कर पता चलता है। इन गीतो मे विपिन्नता की हीन अनुभूति से ग्रस्त मध्यवर्गी महत्वाकाक्षी युवक-वर्ग की 'मानसिक हलचल ध्वनित होती है। इस स्वर पर' आत्म-केन्द्रिकता' का सामाजिक आरोप लगाया गया है। किन्तु कौन व्यक्ति आत्म केन्द्रित नही होता ? महात्मा गाधी कितने होते है ? व्यक्ति की दुर्दमनीय महत्वाकाक्षा की तथा सकटकाल मे धैर्य रखने एव सघर्ष करने का सकल्प करने की अभिव्यक्ति करना क्या औरो के लिए प्रेरणाप्रद नही है ?

और इस तथ्य को ध्यान मे रखते हुए इन दोनो कृतियो को पढ़ना अपने आप मे लघु व्यक्ति को विराट् रूप मे देखने, समझने की भावरमक दृष्टि बनाता है। (इस विषय मे आगे लेख सख्या आठ भी पठनीय है।)

●

बच्चन की काव्य-भाषा

बच्चन की काव्य-भाषा

बच्चन कोर्स के कितावी कवि नहीं है। वे लोक प्रिय कवि है। उनकी कविता मन की वस्तु है। अत शायद ही कही बच्चन की कविता को समझने के लिए कोष कन्सल्ट करने की आवश्यकता पडती हो। उनकी कविता का प्रत्येक शब्द ऐसा लगता है मानो हमारी बोलचाल का हो। साधारण बोलचाल की भाषा मे जैसा उत्कृष्ट काव्य बच्चन जी ने लिखा है वैसा खडी बोली के किसी अन्य प्रसिद्ध कवि ने नहीं रचा। तात्पर्य यह है कि उनकी काव्य भाषा की विशिष्टता है सामान्यता, ऋजुता, सरलता। और भाषा की ऋजुता-सरलता मे भावो की उत्कृष्टता समायी होती है। खडी बोली के प्राय सभी समर्थ कवियो के काव्य की अपेक्षा बच्चन के काव्य मे सधियो व समासों का प्रयोग नगण्य सा है। छायावादी कवियो के बीच रह कर भी यह कवि छायावादी डिक्शन या इडियम से पृथक लोक-जीवन की भाषा मे अपने उत्कृष्ट काव्य की सर्जना करने के लिए अग्रसर हुआ, यह उसकी भाषागत नवीन स्वच्छद प्रवृत्ति का सूचक है। निश्चय ही जन मन को वश मे करने वाली अद्भुत सरलता जितनी बच्चन की काव्यभाषा मे है वह समग्रत अपना उदाहरण आप है। छायावाद के उत्तरार्ध के समर्थ कवियो (दिनकर, नेपाली अचल, नरेन्द्र शर्मा) का काव्य वैशिष्ट्य पूर्व छायावादी कलात्मक अभिव्यजना के रूपो के सरलीकरण मे है। और इससे भी विशेष बात यह कि इन कवियो ने जन-जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए जन भाषा अर्थात् ग्रामफहम भाषा का सहज, सशक्त और सार्थक प्रयोग-उपयोग किया। और इस दृष्टि से बच्चन की काव्योपलब्धि अपने समकालीन सभी समर्थ कवियो की काव्योपलब्धि से कही अधिक महत्वपूर्ण है। पर अभी तो नयी कविता और पुरानी कविता के प्रतिमान निश्चित करने की कशमकश चल रही है। जब कभी इससे नजात मिलेगी तब कही छायावाद के उत्तरार्ध के इस कवि की काव्योपलब्धि का सम्यक विवेचन हो सकेगा।

इस सदर्भ मे हम पहले काव्यभाषा और उसकी शक्तियो के विविध पहलुओं पर विचार करेंगे और छायावाद तथा उसके उत्तरार्ध की काव्य भाषा पर एक तुलनात्मक दृष्टि डालेंगे ताकि उसके परिप्रेक्ष्य मे उत्तरार्ध के प्रतिनिधि कवि बच्चन की काव्य-भाषा का सही व स्वतन्त्र मूल्यांकन महत्वांकन हो सके —

× × ×

भाषा का निर्माण शब्दो द्वारा होता है। शब्द विहीन भाषा की महत्ता या कल्पना रचनात्मक कभी नहीं हो सकती। शब्दो के सुव्यवस्थित प्रयोग से भाषा मे

ऐसी श्रदभुत शक्ति श्रा जाती है कि वह मानव के अन्तरजगत के अनंत अर्थ आशयों को अभिव्यक्त करती है। अत यदि भाषा अर्थ आशय को अभिव्यक्त करने वाली अद्भुत शक्ति है तो शब्द-प्रयोग उसकी रचना का मूल तत्र है। इससे यह तथ्य निकलता है कि काव्य का प्रथम प्रभाव उसमे प्रयुक्त शब्दो द्वारा ही पड़ता है। शब्द-शिल्प एक ऐसा विधान है कि जिसका मात्र ऊपरी महत्व ही नही वरन रसिक या सामाजिक के लिए उसका मानसिक महत्व भी है। इतना ही नही स्वय कवि अपनी शब्द क्षमता से प्रेरित होकर काव्य रचना के लिये प्रवृत्त होता है।

× × ×

काव्य सृजन मे अर्थ प्रधान है या शब्द, यह प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि एक के अभाव में दूसरे की सत्ता कुछ नहीं है[1]। अब तक शब्दहीन काव्य की रचना नहीं हुई है और न अर्थहीन काव्य ही रचा गया है। सामाजिक या रसिक तो शब्द योजना अर्थात् काव्य भाषा (डिक्शन) के माध्यम से ही काव्य का रसास्वादन करता है। आलोचकीय दृष्टि से पृथक काव्य की सामाजिक शक्ति की कसौटी काव्य भाषा है। किन्तु इस कसौटी पर काव्य का अर्थ रूपी स्वर्ण ही कसा जाता है। अर्थात् काव्य के अर्थ का सामाजिक महत्व अतिमरूप से है। पर उसकी प्रारम्भिक कसौटी तो भाषा ही है। संस्कृत काव्यशास्त्र के दिग्गज आचार्य भामह के इस सूत्र म काव्य के लिए शब्द के बाद अथ की सहितता का मेरे विचार से यही प्रयोजन है। जादू वह जो सिर पर चढ कर बोले— शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्[2] पर सन्निष्टत काव्य सृजन और रसास्वादन के लिए शब्द और अर्थ का सम्बन्ध समान, पराश्रित और अटूट है। एक के अभाव मे दूसरा नही हो सकता। आलोचक एच रीड, के विचार से वाच्यार्थ तथा शब्दार्थ म कुछ भी भेद नहीं है। वे तो यहाँ तक कहते है कि जो शब्द का अर्थ है वही काव्य का भी अथ है।[3] अर्थात् शब्द की जो अभिधा नाम की शक्ति है जिसके आधार पर सामान्य जन अपना सामाजिक जीवन बर्तता और व्यवहार मे लगाता है, वही काव्य में महत्वपूर्ण है। किन्तु यही काव्य के सन्दर्भ में भाषागत मतभेद पैदा होता है।

यहाँ तक तो ठीक है कि काव्य सृजन में भाषा अथवा शब्द प्रयोग का निर्विवाद महत्व है। किन्तु क्या यह प्रयोग रूढ़िमय रूप में ही होना चाहिए? इससे तो काव्य को हानि पहुँचने का खतरा है। शब्द की सामान्य शक्ति का नाम 'अभिधा है। उसका वाहक कहलाता है वाचक शब्द या पद। इस अभिधा शक्ति से प्रसूत अर्थ 'वाच्यार्थ' कहलाता है। जैसे—

---

१ गिरा अरथ जल बीच सम कहिअत भिन्न न भिन्न
तुलसीकृत रामचरित मानस बालकांड: दोहा १८।

२ काव्यालंकार प्रथम परिच्छेद, १६।

३ फार्म इन मोडर्न पोयट्री पृ० ४५ एच० रीड।

रीतिकालीन आचार्य देव ने साफ साफ अभिधा का समर्थन ही नही किया है अपितु लक्षणा-व्यजना वाले काव्य की अच्छी भर्त्सना की है।[१]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और गुलाबराय दोनो ही ने अभिधा के वाच्यात्मक महत्व को माना है। गुलाबराय जी का कहना है कि—'लक्षणा और व्यजना अभिधा पर ही आश्रित रहते हैं।'[२] आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कहा है—'कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज मे समझ ले और अर्थ को हृदयगम कर सके—यदि इस उद्देश्य की सफलता न हुई तो लिखना ही व्यर्थ हुआ। इसलिये क्लिष्ट की अपेक्षा सरल लिखना सब प्रकार वांछनीय है—मुहावरो का भी विचार रखना चाहिये।'[३] और काव्य-भाषा की सरलता के प्रति तो महाकवि तुलसीदास जी भी आकर्षित रहे—

सरल कवित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान[४]

उपर्युक्त विचारो के परिप्रेक्ष्य मे यह स्पष्ट होता है कि काव्य भाषा के प्रयोग मे काव्य की अभिधा शब्दशक्ति का मूल महत्व स्वीकार किया गया है। किन्तु 'वाच्यार्थ' मात्र से उत्कृष्ट अथवा महान काव्य नही रचा जा सकता। कारण यह है कि उसके प्रयोग से काव्य मे नवीन उद्भावनाओ का अर्थ-सौन्दर्य उत्पन्न नही हो सकता जिससे रस निष्पन्न होता है।

माइकेल राबर्ट्स के विचार से 'भाषा की सम्भावनाओ की तलाश का नाम ही कविता है।'[५]

इस कथन से जहाँ काव्य मे भाषा का अन्यतम और अन्तिम महत्व इगित किया गया है वही उसकी शक्ति का आयाम असीमता से भी जुडता है। निस्सन्देह काव्य-रचना मे कवि सामान्य शब्दो के द्वारा महान सत्यो और कल्पनाओ को रूपायित कर देता है। शब्द की गूँज अर्थ की विराट् परिक्रमा करने पर भी विलीन नही होती, इसे सिद्ध करना प्रत्येक कवि के बस की बात नही होती। कालिदास, तुलसीदास कबीर, गालिब और शेक्सपीयर अधिक तो नही होने। महान कवियो का सम्पूर्ण

---

१. अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा लीन। अधम व्यंजना रस कुटिल उलटी कहत नवीन।

शब्द रसायन. पत्थेय प्रकाश' पृष्ठ ७२' आचार्य देव।

२. सिद्धान्त और अध्ययन २१६। गुलाबराय।

३. रसज्ञ रजन कवि के कर्तव्य के अन्तर्गत (भाषा) महावीर प्रसाद द्विवेदी। उद्धरण लिया आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका पृ० १२५' डा० बलभद्र तिवारी।

४. रामचरित मानस-बालकांड-दोहा १४ (क)

५. दे फेबरिट बुक आफ माडर्न वर्स। सम्पादक माइकेल राबर्टस की भूमिका: पृ० १८: सन् १९३६

व्यक्तित्व शिल्प और उनका विषय-व्यक्तित्व उनकी भाषा मे ही समाया होता है। उनकी भाषा का शब्द शब्द नूतन सृजन की सम्भावनाओ की तलाश होती है। उनकी भाषा मे अभिधा शक्ति, जिसे शब्द की मूल शक्ति कहना चाहिये, होते हुए भी शब्द प्रयोग की ऐसी भगिमा होती है (गालिब का अदाजे बया) जिसमे अलकार, वक्रोक्ति, ध्वनि और औचित्य सभी कुछ समन्वित होकर व्यक्त हो जाता है। यहाँ यह कहने की गुजायश नही होती कि यह लक्षणा प्रधान काव्य है, यह व्यजना प्रधान काव्य है। यहाँ अभिधा मे लक्षणा-व्यजना का महत्व आप द्योतित होता है— जैसे स्वच्छ सरोवर के जल मे आकाश की नीलिमा तथा चन्द्र-किरणो की रगीन आभा आप ही झलमलाती है। जहाँ भाषा की सरलता-ऋजुता को हेय समझ कर कवि लक्षणा-व्यजना के सौंदर्य के लिये नवीन उक्तियो एव प्रतिबिम्बनाओ की खोज मे लग जाता है वही अर्थ से अनर्थ होने लगता है। ऐसी कृतियो के पठन-पाठन मे कोई सहृज रुचि नही रखता।

सक्षेप मे काव्य भाषा का सरल होना नितात आवश्यक है। इसके लिए शब्द की मूलशक्ति अभिधा की महत्ता का बोध होना अनिवार्य है। किंतु मात्र अभिधा ही काव्यभाषा के लिए उपयुक्त नही है। इसके लिये उसमे अभिव्यक्ति के अन्य तत्व, अलकार, छन्द, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य आदि का सहज समाहार होना चाहिये। किन्तु यह सब कुछ आयासजन्य नही होना चाहिये नही तो उससे अनुभूति का दम घुट जायेगा।

महान कोटि के कवियो मे अनुभूति के सगीत को मुखरित करने के लिये शब्दों के प्रयोग आप से आप इस तरह होते हैं जैसे अनेक साज एक मधुर आवाज के साथ उसके प्रभाव और सौंदर्य को बढाने के लिये बजते जाते हैं। ऐसा तभी होता है जबकि कवि मे विभिन्न भावो को सहज ढग से व्यक्त करने वाले शब्दों की समाहार शक्ति होती है। देशकाल और वातावरण के प्रभाव से कवि बच नही सकता। आधुनिक युग मे तो यह बचाव कभी भी सम्भव नही।

हिन्दी साहित्य के प्रथम महाकवि चन्द्रवरदाई की काव्य-भाषा मे विविध भाषा के शब्दो की समाहार शक्ति का अद्भुत परिचय मिलता है। मध्यकालीन सत-भक्त कवियो के काव्य मे इस शब्द-समाहार शक्ति का परिचय मिलता है। कबीर का काव्य इसका ज्वलत प्रमाण है। तुलसीदास जैसे कवि ने उर्दू-फारसी के शब्दों का प्रयोग किया है। रीतिकालीन कवियो ने तो भाषा की समाहारशक्ति का खूब परि-

१ 'षट् भाषा पुराणं च। कुरान कथितमया।'
संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो
आदि पर्व श्लोक ३५
सम्पादक हजारी प्रसाद द्विवेदी
तृतीय संशोधित सस्करण १९६१

चय दिया है। छायावाद-पूर्व काव्य मे समाहार शक्ति का परिचय मिलता है। किन्तु छायावादी युग मे कवि संस्कृतनिष्ठ पदावली रचने की ओर प्रवृत्त हुए। और इसमे क्षति हो गई। भाषा की ऋजुता समाप्त हो गई। भाषा की ऋजुता का तात्पर्य है प्रसयुक्त शब्द, सीधे विशेषणो से युक्त पदावली तथा अलकारो बिम्बो से अधिक अभिव्यक्ति मे अनुभूति की तीव्रता का अकन। पर छायावादी काव्य मे इस ऋजुता का ध्यान नही रखा गया है।

शब्दो में ध्वनि विस्फोट होता है, एक नाद होता है। वैयाकरणो के विस्फोटवाद, नाद-बिन्दु और शब्द-ब्रह्म की दार्शनिक व्याख्या न कर हम यहा केवल यह सकेत देना चाहते हैं कि इस दृष्टि से 'ध्वन्यात्मकता' का काव्य में विशिष्ट स्थान है। व्यजना शक्ति का सम्बन्ध भी इसी ध्वन्यात्मकता से है। काव्य शास्त्र मे ध्वनि का दर्जा 'रस' के बराबर माना गया है। ध्वनि सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य आनदवर्धन हैं। वे उसी काव्य को महान मानते हैं जिसमें व्यंग्यार्थ प्रधान हो। वे अभिधा और लक्षणा का क्रिया-व्यापार केवल शब्द से सम्बन्धित मानकर व्यजना को उससे ऊपर की सूक्ष्म शब्द अर्थ वस्तु मानते हैं। किन्तु मेरे विचार से शब्द की अभिधा शक्ति ही व्यग्यार्थ की नीव की ईंट है। किसी वास्तविक वस्तु या कथ्य को मानसिकता में मूर्त करने वाली शक्ति मूलत अभिधा ही है। यदि कवि के पास वास्तव में कुछ कहने की वस्तु है तो उसके कथ्य को कथन में रूपायित करने वाली शब्द-शक्ति अभिधा ही हो सकती है। और यदि वास्तव में कुछ कहने की वस्तु होगी ही नही, सब कुछ कल्पनामय होगा, तो निश्चय ही कवि चमत्कारपूर्ण उक्तियो का प्रयोग करेगा। ऐसी दशा में यह समझ लेना चाहिए कि वहाँ केवल शब्द का मोहजाल ही बुना गया है। इस क्रम में क्रोचे का एक महत्वपूर्ण मत रखना उचित होगा। वे लिखते हैं—

'*He who has nothing definite to express may try to hide his emptiness with a flood of words.*[1]

इस परिप्रेक्ष्य में छायावादी काव्य मे निश्चय ही शब्दो का व्यामोह या मोहजाल प्रधान है जिसे आलोचको ने लक्षणा व्यजना के सौन्दर्य-शास्त्र के सिद्धान्तो द्वारा बहुत सराहा है। किन्तु चूँकि उत्तरार्ध के तरुण कवियो के पास जग-जीवन की अन्तरमथित कुछ वस्तु थी अत उन्होंने मानसिकता को मूर्त करने वाली शब्द की अभिधा शक्ति द्वारा ही कवित्व की रचना की है। इस प्रकार वहाँ अभिव्यक्ति में कुछ छिपाने की भगिमा नहीं है और न शब्दो का करामती शिल्प। अभिधामूलक ध्वनि के असलक्ष्यक्रम व्यगध्वनि और सलक्ष्यक्रम व्यग ध्वनि के मूल में वाच्यार्थ ही सक्रिय रहता है। ध्वनि निश्चय ही भाषा की वह सूक्ष्म शक्ति है जिससे काव्य की पदावली सरस और

---

1. Aesthetic—Intution and Repression page 99/D : Bendetto Croce.

सुन्दर बनती है। काव्य की ध्वन्यात्मकता से अर्थ मूलत. भाषा की भगिमा से है जिससे कवित्व मे कवित्व के गुणों की प्रतिष्ठा होती है। कवित्व की आत्मा अनुभूति है और इस आत्मा की अभिव्यक्ति का स्वर ध्वनि ही है। इस स्वर में निखार लाने के लिए कवि अनेक अलकारो तथा बिम्बो की खोज करता है। पर यही एक खतरा है कि इस खोज में ही इसका खोजनहार स्वय कहीं खो न जाए। शाब्दी या आर्थी व्यजना-व्यापार के द्वारा जब कवि अर्थ-सूक्ष्मता के आकाश पार करने लगता है अथवा प्रतीकों, बिम्बो, रूपको, विशेषण-विपर्ययो, मानवीकरणों एव फीगर्स ग्रा फ साउन्डस (नाद-सौन्दर्य) सूचक वर्णो-व्यञ्जनो-स्वरो का प्रयोग 'ध्वनि' से करने लगता है तभी अनर्थ होने लगता है। शुद्ध छायावादी काव्य में इसकी अति हो गई थी। अत उसका ह्रास अवश्यम्भावी था। काव्य-भाषा विषयक विवेचन के परिप्रेक्ष्य में जब हम छायावाद के उत्तरार्घ के गीतों पर दृष्टि डालते हैं तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि वहाँ छायावादी काव्य की तुलना में भाषा का स्तर बदलता गया है। उदाहरण के रूप मे छायावादी गीत काव्य मे इस प्रकार के बहुत से शब्दो का प्रयोग किया गया है जिनका उच्चारण करते समय सामाजिक को जीभ और जबड़े मे या तो एकदम रिक्तता-सी अनुभव होती है या तनाव पैदा होता है। ये कुछ शब्द इसके प्रमाण हैं—

(मुखरण म रिक्तता-सी अनुभव कराने वाले शब्द) स्वन, स्मृति, स्तब्ध, सस्नेह स्थित, दिक्, अनुक्षण, आदि। (मुखरण मे तनाव-सा अनुभव कराने वाले शब्द) गुह्य, मूर्छना, मर्त्य, जीर्ण, हविष्य, जाड्य, आदि। तात्पर्य यह है कि छायावादी पदावली और उसका छद विधान सामाजिक को उच्चारण की दृष्टि से मुख-सुख सुविधामय प्रतीत नही होता। भले ही उसमे कितना भी कलागत सौन्दर्य का भाव अर्थ क्यों न निहित हो। पर उत्तरार्घ के गीतकाव्य मे शब्दावली का प्रयोग जन जिव्हा एव जबड़े के अनुकूल बैठता है। यहाँ सयुक्त वर्ण-व्यजन का स्वर सा तनने और सिकुड़ जाने वाला प्रयोग न होकर सीधा और सहज प्रयोग हुआ है। छायावादी काव्य भाषा मे व्याकरण के सर्वनाम, लिंग, वचन, क्रिया पद, विशेषण तथा विस्मयादि बोधक शब्दो का शिल्पमय प्रयोग करने का विशेष आग्रह लक्षित होता है। पर छायावादोत्तरार्घ के प्रतिनिधि कवि बच्चन के काव्य मे इनका प्रयोग छायावादी आतंक के स्तर का नहीं हुआ है। यो भाषा विज्ञान की दृष्टि से इस कवि की काव्यभाषा मे विकास के लक्षण प्रतीत होते हैं। छायावादी आलोचक और वैयाकरण सम्भवत इसे ह्रास का लक्षण कहें किन्तु भाषा विज्ञान और काव्य विकास की दृष्टि से यह विकास का लक्षण ही कहा जा सकता है। छायावादोत्तरार्घ के कवि की भाषा अभिव्यक्ति के आतंक से मुक्ति पाने की तलाश है। इस काव्य को व्यजना रहित काव्य कहना असगत है। आलोच्य काव्य की मुख्य विशेषता यही है कि यहाँ जिस भाषा का प्रयोग किया गया है उसमें अभिधार्थ के आधार पर ही वांछित व्यग्यार्थ का द्योतन हुआ है। कोरी व्यजना का कमाल दिखलाने का कमाल उत्तरार्घ के कवियों ने नही दिखलाया।

अनुभूति के आलोक मे इन कवियो ने मन को मथने वाले अर्तद्वदो को भाषा द्वारा व्यक्त किया है। अत प्रतीयमान अर्थ के चमत्कार और वाग्वैदग्ध्य से पृथक इन्होने ऐसी पदावली की रचना की है जिसे पढकर सामान्य पाठक अभिभूत होता जाता है। उसे वह अपने मन की भाषा की भगिमा ही प्रतीत होती है। यहा व्यजना अनुभूति सापेक्ष रही है। कल्पना यहाँ गौण है। यही कारण है कि उत्तरार्ध के गीतो मे एक ही भाव को अनेक बार दुहराया भी गया है। अत यहाँ नवीन अभिव्यक्ति की सकीर्ण परिधि भी प्रतीत होती है। किन्तु इससे श्रेष्ठ रचनाओ के प्रभाव को कोई क्षति नही पहुँची। बच्चन, दिनकर, नरेन्द्र शर्मा अचल तथा नेपाली की अनेक रचनाएँ इस दृष्टि से महान हैं। पर इनके अनुकरण पर जो रचनाएँ रची गई उनका मूल्य सदिग्ध है।

× × ×

बच्चन की काव्य भाषा का सर्वाधिक महत्व उसकी शब्द-समाहार-शक्ति मे निहित है। छायावादी काव्य की भाषा सस्कृत पदगर्भित है। उसमे अभिजात्य तत्व विशेष सक्रिय रहा है। अत सामान्य जनता के बोलचाल के शब्दो का प्रयोग वहाँ वर्जित-सा रहा। किंतु उत्तरार्ध के सम्पूर्ण गीतकाव्य की भाषा मे सामान्य बोलचाल की शब्दावली प्रयोग मे लाई गई और अनेक मुहावरो, उपभाषाओ तथा अग्रेजी के शब्दो का प्रयोग तक किया गया है। इस प्रयोग की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह भाव और भाषा की प्रकृति के सर्वथा अनुकूल बैठा है। यहाँ प्रयोग मे ऋजुता है। कही पर भी आयास आभासित नही होता। कही पर भी न्यूनपदत्व, निरर्थक विशेषण, शिथिल क्रियापद, अव्यय लोप, लिंग अथवा छद विपर्यय-दोष देखने मे नही आता। शब्द की समाहार शक्ति तथा मुहावरो के प्रयोग एव भाषा-ऋजुता की दृष्टि से बच्चन का योगदान महान है। इस दृष्टि से बच्चन का काव्य अपनी तुलना नही रखता। दिनकर', नेपाली, 'अचल', नरेन्द्र शर्मा ने भी इस दिशा मे महत्व पूर्ण योगदान किया है।

ध्वन्यात्मकता की दृष्टि से आलोच्य काव्य छायावादी काव्य की अपेक्षा दुर्बल है। कारण यह है कि उत्तरार्ध के गीतकार कवियो की मूल पूँजी उनकी अनुभूति थी जिसे व्यक्त करना ही उनका ध्येय रहा। अत कोमलकात पदावली, विम्ब-विधान नूतन अलकृतियाँ एव प्राकृतिक दृश्यो का छाया-प्रकाशमय सौन्दर्य यहाँ छायावादी काव्य की कोटि का नही है। किंतु यहाँ अनुभूति की ऐसी ध्वनि है जो सहज ही मन को आन्दोलित करती है। सम्प्रेषण की शक्ति इस काव्य मे इतनी है कि पदावली स्वत मन मे मँडराने लगती है। निश्चय ही यहाँ उदात्त स्तर की ध्वन्यात्मकता नही है। किन्तु निश्चय ही वह ऐसे स्तर की है जिसमे सामान्य जन मन अपने श्वासो एव स्वरो का साझा अनुभव करता है।

कुल मिलकर छायावाद के उत्तरार्ध के गीतो की भाषा के विषय मे कुछ विशेष निष्कर्ष हाथ आते हैं—

१ उत्तरार्ध के गीतो की शब्द शक्ति जीवन के आनुभूतिक सत्य के परिप्रेक्ष्य मे परखी जा सकती है। मूलत यहाँ शब्दशक्ति का प्रयोजन प्रतीयमान अर्थ को ध्वनित करना नही है वरन ईमानदार अभिव्यक्ति की प्रतिबद्धता को मुखरित करना है।[1]

और यदि काव्य अतत जीवन का जीवन के लिये सृजन है तो आलोच्य गीत-काव्य की अपरिमित शब्दशक्ति पर सन्देह नही किया जा सकता, फिर चाहे वह व्यजना रहित और अभिधामय ही क्यो न कही जाय।

२ उत्तरार्ध के गीतकाव्य मे लोक व्यवहार मे आने वाले जितने और जितने प्रकार के शब्दो-मुहावरो का समाहार हुआ है वैसा खडी बोली के सम्पूर्ण गीतकाव्य मे नही हुआ है, यह निर्विवाद सत्य है। जीवन की प्रत्येक अनुभूति का व्यक्त करने मे छायावाद के उत्तरार्ध की काव्य भाषा समर्थ है और इसके अनेक ज्वलत प्रमाण अकेले बच्चन के काव्य से ही दिये जा सकते हैं। छायावादी काव्य भाषा के गोरखधधे से पृथक इस कवि ने काव्य की भाषा का एक नया अदाज और नया पथ निर्मित किया। यह वह पथ था जिसको निर्मित करने के सूक्ष्म सकेत माखनलाल चतुर्वेदी ने छायावादी युग मे ही अपने काव्य द्वारा दिये थे और आगे नवीन एव भगवतीचरण वर्मा ने इस दिशा मे स्फुट प्रयास किया। किंतु बच्चन ने शब्द-समाहार-शक्ति का एक नूतन आदर्श-पथ ही निर्मित कर दिया। उनकी काव्य भाषा का अनुकरण कर बहुत से तरुण कवियो ने गीत काव्य रचा किंतु बच्चन का काव्य इस दृष्टि से सर्वथा सदैव गत्यात्मक रहा—

मैं जिस थल पर था कल उस थल पर आज नहीं
कल इसी जगह फिर पाना मुझको मुश्किल है[2]

दिनकर, नेपाली, अचल, नरेन्द्र शर्मा, उत्तरार्ध के इन चार कवियो के काव्य मे भी शब्द समाहार शक्ति के नूतन आयाम आभासित होते हैं किंतु उसकी महत्ता बच्चन की उपलब्धि की अपेक्षा आशिक ही सिद्ध होता है।

३ उत्तरार्ध के गीत-काव्य की ऋजुता ही उसके सम्पूर्ण शिल्पविधान की विशिष्टता है। भाषागत ऋजुता के कारण ही इस काव्य की अभिव्यक्ति मे भाव-सम्प्रेषणीयता की अद्भुत शक्ति आ गई है। इसी ऋजुता के कारण पदावली अभिधार्थ का सहज अति-

---

१ जो किया उसी को करने की मजबूरी थी
जो कहा वही मन के अदर से उबल चला।

मिलनयामिनी बच्चन।

या—मैं रोया तुम कहते हो गाना, मैं फूट पडा तुम कहते छद बनाना।

आत्मपरिचय कविता बच्चन।

या—राग के पीछे छिपा चीत्कार कह देगा किसी दिन
है लिखे मधुगीत मैंने हो खडे जीवन समर मे।

(मधुकलश बच्चन)

२ मिलनयामिनी बच्चन।

भ्रमण कर पाठक को अनुभूति के अर्थ-रस की भूमिका में लीन कर लेती है। इसी ऋजुता के कारण यहाँ प्रकृति की पृष्ठभूमि इतनी परिचित-सी प्रतीत होती है कि मनोभावों के राग को गूँजने का एकांत अवकाश मिलता है।[1] इसी ऋजुता के कारण इस काव्य में छायावादी छंद और भाषा की शिल्पगत कृत्रिमता एवं क्लिष्टता न होकर प्रसाद गुण सम्पन्न एवं लिंग, विशेषण, क्रियापद, अव्यय आदि दोषों से रहित अभिव्यक्ति की पूर्णता, सुकरता और छंद प्रास का लयलालित्य अर्थात् गेय पदावली का वैशिष्ट्य बना रहा है।

४ आलोच्य काव्य में अलंकृतियाँ और प्रतिबिम्बनाओं के मायावी तत्व प्रधान नहीं हैं। अतः वहाँ ध्वन्यात्मकता अधिक नहीं है। इसके अभाव में निःसंदेह इतस्ततः कवित्व को क्षतिग्रस्त भी होना पड़ा है। अनुभूति की पूँजी के व्यय होने पर अनेक रचनाओं में भौंडापन भी आ गया है। पिसी पिटी नीरस गूँजें भी सुनाई पड़ती हैं। फिर भी छायावादी ध्वन्यात्मकता से कुछ लाभ उठाकर अचल ने अपने भावभीने गीतों का सृजन किया है। समकालीन कवियों से पृथक्, निश्चय ही अचल के गीतों की ध्वन्यात्मकता

---

१. अस्त हुआ दिन, मस्त समीरण मुक्त गगन के नीचे हम तुम।

मिलनयामिनी वच्चन।

× × ×

चाँद चमकता, वायु ठुमकती छन छन हिलती तरु की छाया।

मिलनयामिनी वच्चन।

× × ×

मधु पी लो मौसम आज बड़ा प्यारा है।
अठखेली करती चलती है आज हवा मदमाती
वसी धती गीत प्रीति का झूम झूम कर गाती
उभर-उभर उठती सुख साँसों से पृथ्वी की छाती। मधु पी लो—

मिलनयामिनी वच्चन।

× × ×

चाँदनी रात के आँगन में कुछ छिटके-छिटके से बादल
कुछ भटका-भटका-सा मन भी।
जब सारी दुनिया सोई है तब नभमंडल पर चाँद जगा,
कुछ सपनों में डूबा-डूबा कुछ सपनों में उमगा-उमगा
उसके पथ में अनचाहे से कुछ बेबस बादल के टुकड़े
पर पूजन, स्नेह समर्पण से पथ सुन्दरता को दाग लगा
जैसे ये बादल के टुकड़े मुखड़ा का आँचल थामे-से
अनजान किसी पर न्योछावर क्या शोभन स्वागतमय होगा
मेरे मन का पागलपन भी ?

मिलनयामिनी वच्चन।

मासन भावों के सूक्ष्म स्तर तक पहुच कर मन को रोमास के समुधुर भावो-स्तरो मे लीन कर देती है। अचल की रचनाओ मे छायावादी काव्य के जैसे वायवी विम्ब न होकर मन के मासल बिम्ब उतरे है। अलकृतियो, विशेषणो, सम्बोधनो, नवीन क्रियापदो, उपमाओ, रूपको तथा रूप हास रस-गधमय एन्द्रिक ध्वनियो के मुखरण मे 'अचल' उत्तरार्ध के कवियो मे अपने विषय की अभिव्यजना मे अग्रणी हैं ।[1]

नेपाली और नरेद्र शर्मा के गीतो मे भाव एव स्वर की शिल्प सगत ध्वन्यात्मकता है। किन्तु 'बच्चन' के गीतो की ध्वन्यात्मकता मे जीवन के सच्चे साज की एक ऐसी सुव्यवस्थित झकार है जिससे मन की निस्तब्धता बरबस झकृत हो उठती है। इन गीतो म कही पर भी शिल्प या अभिव्यजन की गाठ नही पडी—वे एकदम भाव-स्वर के समन्वय के पृष्ठ पर लिखे जीवन के गीत हैं।

सक्षेप और सार रूप मे छायावाद के उत्तरार्ध के गीत काव्य की भाषा जनमन रजनकारी भाषा है। इस काव्य भाषा से जनमन अनुभव करता है कि उसमे उसी के अतरजगत का अविकल काव्यानुवाद है। इस दृष्टि से बच्चन का गीत काव्य अपना समकक्षी नही रखता। काव्य भाषागत कुछ इन्ही कारणो से उत्तरार्ध के गीत-काव्य का जन जन व्यापी प्रभाव पडा और छायावादी काव्य अपनी शक्ति-सीमा मे सिमट कर रह गया।

यहा तक हमने छायावादी और छायावाद के उत्तरार्ध की काव्य भाषा के विषय मे कुछ तुलनात्मक तथ्य प्रस्तुत किये जिनको प्रस्तुत करने का प्रयोजन प्रकारातर से बच्चन की काव्य भाषा की शक्तियो को परखना है। इस दृष्टि से अब बच्चन की काव्य भाषा पर स्वतत्र विचार करना उचित होगा—

प्रारम्भिक रचनाएँ भाग १-२ से ही बच्चन की कविताओ मे भाषा विकास

---

१ चुप रहो ! सौन्दर्य की बहती विजनगधी हवा
चुप रहो ! सौन्दर्य के टूटे सृजन की शर्वरी
दूर अनजाने अनिद्रित फूल की भीगी हुई
चुप रहो ! प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी—
चुप रहो ! नीले कुहासे मे डुबोये गीत ओ—
चुप रहो ! ओ बालुका के स्वप्न पखी मारुती
चुप रहो ! बंधव्य मे डूबी विवशता के रुदन
चुप रहो ! वन पत्तियों की रूपगधी ओ हवा ।
आज तो कुछ भी कहीं कोई नहीं है—चुप रहो ।
चुप रहो ! अनुगू जते ओ 'मालवर्षा बादलों
गुनगुनाती ओ गुफाओं, दग्दरामा चुप रहो ।
प्रत्यूष की भटकी किरण-यायावरी अचल

के बीच बिखरे दीखते हैं। यहाँ कुछ रचनाओं में छायावादी शैली-शब्दावली को छोड़कर जैसे—

बाल पल्लव अधरों से बात,
ढकेंगी तरुवर गए के गात
× × ×
चुरा खिलती कलियों की गंध,
कराएगा उनका गठबंध,
पवन पुरोहित गंध सुरज से रज सुगंध से मौन।

यहाँ समस्त शब्दावली ऐसी है जिसमें न समास है, न तत्सम रूप है न क्लिष्टता है, न प्रतीक, न रूपक, न श्लेष, न उपमा और न शब्दों में कला की पालिश है। बस, भाषा एकदम खुदी खान की वस्तु प्रतीत होती है। पृष्ठ २५ पर 'स्वतन्त्र आज़ाद' शब्द एक ही जगह एक ही अर्थ की अभिव्यक्ति कर रहे हैं। इसी प्रकार 'डरवाती' शब्द का प्रयोग पृष्ठ १२४ पर हुआ है जो उचित नहीं लगता। लेकिन 'प्रारम्भिक रचनाओं' में इस प्रकार की शिथिलता का कोई अर्थ नहीं होता। लेकिन प्रारम्भिक रचनाओं के दोनों भागों की कविताओं को पढ़कर बच्चन की काव्य-भाषा के विकास क्रम का अच्छी तरह पता चल जाता है। कवि की प्रारम्भिक रचनाओं के दोनों भागों की कविताओं में जिस भाषा का स्वरूप सामने आता है और जो वर्तमान कविताओं में अपने परिपक्व और पूर्ण रूप से विकसित है, उसकी विशेषताएँ मुख्यतः ये हैं—

१ भाषा में ओज माधुर्य गुण तो नहीं के बराबर है पर प्रसाद गुण पूर्णतः है।

२ प्रारम्भिक रचनाओं के दोनों भागों में कुछ उर्दू, अंग्रेजी और कुछ गवारू अनगढ, अनपोलिश्ड शब्दों का प्रयोग जैसे डरवाती (पृष्ठ १२४ प्रा० र० प्र० भा०) बैठाल (पृष्ठ २५ प्रा० र० द्वि० भा०) नाज, नफीरी, आवाज (पृ० ३७ प्रा० र० द्वि० भा) लत (पृष्ठ ८१ प्रा० र० प्र० भ०) रिकार्ड (प्रा० र० प्र० भा०) दीवाना (पृ० ७८ प्रा० र० प्र० भा०) आदि।

६. बच्चन की प्रारम्भिक कविताओं से ही चलते मुहावरों का कहीं कहीं पर प्रयोग बड़ी सफाई से होना शुरू हो गया था। आगे चलकर काव्यभाषा जहाँ भी मुहावरेदार हुई है वहीं कविता चमक उठी है। सिर पर कलंक लगना और सिर से कलंक उतारना मुहावरा खड़ी बोली में प्रयुक्त होता है। प्रारम्भिक रचनाएँ पहला भाग की 'जेल में रक्षा बन्धन' शीर्षक कविता में उसका प्रयोग यों हुआ है—

भूलेगा हमको संसार,
पूरा होगा ध्येय हमारा,
उतर कलंक जायगा सारा
प्रेम-शीश से हम दोनों के कारण जिसका भार !

आगे चलकर बच्चन की काव्य भाषा में न केवल मुहावरे बल्कि प्राचीन कवियों की उक्तियाँ, लोकोक्तियाँ और पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग होने लगा

जो अपने स्थान पर सारगर्भित लगता है। जैसे—निशा निमंत्रण के एक गीत में बच्चन ने तुलसीदास जी की एक प्रसिद्ध चौपाई का संकेत दिया है—

सहसा यह जिह्वा पर आई
घन घमण्ड वाली चौपाई
जहाँ देव भी काँप उठे थे क्यों लज्जित मानवता मेरी।

इसी प्रकार 'आरती और अंगारे' कृति में विद्यापति की 'जनम अवधि हम रूप निहारल नैन न तिरपत भेल कहेगा' पंक्ति ज्यों की त्यों काम में लाई गई है। इस प्रकार के भाषागत अभिनव प्रयोग कवि की 'आरती और अंगारे" नामक कृति में अधिक देखने को मिलते हैं।

बच्चन की प्रारम्भिक रचनाओं के दोनों भागों की कविताओं में जो अनगढ़पन या छायावादीपन था वह आगे की कृतियों से सहसा साफ हो गया लगता है। हाँ, उर्दू शब्दों का उचित प्रयोग बराबर बना रहा। प्रारम्भिक रचनाएं दूसरे भाग की अन्तिम कविता से ही इसका आभास होने लगता है कि कवि उर्दू के शब्दों का आगे सफल प्रयोग कर सकेगा—

"हर कलिका की किस्मत में जग जाहिर स्वयं बताना।"

मधुशाला की भाषा का लोच लालित्य, उससे उत्पन्न संगीत की माधुरी के माध्यम से वातावरण की सृष्टि तथा भाषा के प्रसाद माधुर्य गुण का सूक्ष्म समन्वय आदि ऐसे गुण देखने को मिलते हैं जिन्होंने न केवल बच्चन की कविता को लोकप्रियता दी वरन समस्त परवर्ती खड़ी बोली कविता की भाषा के रंगीन पंख लगा दिये। मधुशाला की भाषा भंगिमा में छायावादी भाषा की झंकार और कला, व्यवहारिक भाषा की सुबोधता और मन की भाषा की मिठास देखिए—

१०

सुन कलकल, छलछल मधु-
घट से गिरती प्यालों में हाला,
सुन, रुनझुन, रुनझुन चल
वितरण करती मधु साकीबाला,
बस आ पहुँचे, दूर नहीं कुछ
चार कदम अब चलना है,
चहक रहे, सुन, पीनेवाले,
महक रही, ले, मधुशाला!

११

जल तरंग बजता, जब चुम्बन
करता प्याले को प्याला,
वीणा झंकृत होती, चलती
जब रुनझुन साकी बाला

डांट डपट मधुविक्रेता की
ध्वनित पखावज करती हैं,
मधुरव से मधु की मादकता
और बढाती मधुशाला।

१२

मेहदी रजित मृदुल हथेली
पर माणिक मधु का प्याला
अगुरी अवगुठन डाले
स्वर्ण वर्ण साकीबाला
पाग बैजनी, जामा ढोला,
डाट डटे पीने वाले
इन्द्र-धनुष से होड लगाती
आज रगीली मधुशाला।

उक्त रुबाइयो की भाषा मे शब्दो की झकृति, मिठास, मादकता और कलात्मकता का नया जादू है जो बच्चन से पूर्व के छायावादी कवियो, प्रसाद पन्त, निराला और महादेवी के काव्य मे नही मिलता। प्रकारांतर से स्वय बच्चन ने "आधुनिक कवि" मे अपने पाठको से मधुशाला की भाषा की स्थापना का सकेत किया है। वे लिखते हैं कि सघर्ष की भाषा, व्यक्ति और समाज के सघर्ष की भाषा, बोलने का कुछ अभ्यास 'नवीन' और भगवतीचरण वर्मा कर रहे थे। जाने-अनजाने अपने उन्ही दो अग्रजो से सकेत पाकर मैंने जिस माध्यम को यथाशक्ति परिपूर्ण करके १६३५ मे 'मधुशाला' मे दिया उसने हिन्दी काव्य-ससार मे एक नई आवाज का आभास दिया।'

एक प्रकार से बच्चन की काव्यशाला का मोहक स्वरूप 'मधुशाला' से प्रारम्भ हो जाता है। मधुबाला की भाषा मे शब्द-शिल्प की व्यवस्था मधुशाला से मिलती जुलती है। अन्तर इतना प्रतीत होता है कि मधुबाला मे आकर कवि विविध गीतो मे भी अपनी रगीली-रसीली भाषा का प्रयोग कर सक पा रहा है। मधुकलश मे भाषा के प्रवाह मे प्रौढता आती प्रतीत होती है। कवि के शब्दो मे भावो को व्यक्त करने की क्षमता बढी प्रतीत होती है। आगे निशानिमत्रण, आकुल-अन्तर और एकांत सगीत की कविताओ की भाषा मे काफी सादगी आ गई है। किन्तु निशा-निमत्रण की भाषा बिम्ब विधायनी अधिक हो गई है और इसके साथ ही उसमे मानवीय भावमयता का सहज स्वर भी निसृत होता प्रतीत होता है जो कम से कम तब हिन्दी गीत काव्य के लिए नया था। यहाँ न भाषा अलकारिक है, न चमत्कारिक, न प्रतीकात्मक है और न अधिक चित्रमय। इन कृतियो मे जिस भाषा का प्रयोग किया गया है वह एकदम उद्गारो की वाहिनी है—उसमे व्यक्ति की पीड़ा की वीणा का राग है।

साथी, साथ न देगा दुख भी !
काल छीनने दुख आता है
जब दु ख भी प्रिय हो जाता है
नहीं चाहते जब हम दुख के बदले मे लेना चिर सुख भी !
साथी, साथ न देगा दुख भी !

उक्त उद्धरण 'निशा निमत्रण' के गीत का है जिसकी भाषा मे उन सभी तत्वो का समावेश है जिनकी हम ऊपर चर्चा कर रहे थे। एकात सगीत और आकुल-अन्तर कृतियो के गीतो की भाषा पिछली कृतियो की अपेक्षा रक्ष हो गई है। लेकिन यहाँ कुछ गीतो मे निराश व्यक्ति की शक्ति के स्वर-सदेश मे पहली बार भाषागत ओजगुण आया है और उसमे निराश किन्तु अविजित, अविचलित मानव का जीवित-जाग्रत अह का आकार जैसे मूर्तिमान कर दिया जाता है। इन कुछ ही इस प्रकार की कविताओ का भाषा-भावगत मूल्य बहुत है। इसके लिए ये उद्धरण देखिए—

अग्नि पथ ! अग्नि पथ ! अग्नि पथ !
वृक्ष हों भले खडे
हों घने, हो बडे
एक पत्र छाह भी माँग मत, माग मत, माँग मत।
यह महान दृश्य है
चल रहा मनुष्य है
अश्रु स्वेद-रक्त से लथपथ, लथपथ लथपथ!

× × ×

प्रार्थना मतकर, मतकर, मतकर
झुकी हुई अभिमानी गर्दन
बधे हाथ, नत निष्प्रभ लोचन ?
यह मनुष्य का चित्र नहीं है, पशु का है, रे कायर !

इन उद्धरणो से यह स्पष्ट है कि यहाँ तक आकर बच्चन की काव्य-भाषा भाव प्रकाशन और भाव का जीवत चित्र खीच कर रख देने मे पूर्णत समर्थ हो गई थी। किन्तु उसमें रस-रग और रूप पहले जैसा नहीं झलक रहा था। बच्चन जीवन के कवि हैं। अत जीवन का एक मधुर स्वप्न टूटने पर उनके पास जो दोष बचा उसका प्रकाशन इसी रूप म और इसी प्रकार की भाषा मे होना स्वाभाविक था। किन्तु इससे उनकी भाषा मे शैथिल्य आने की कल्पना नही करनी चाहिये।

आकुल-अन्तर के अन्त तक एक ज्वार भाटा आया, चला गया। फिर 'सतरगिनी' की सुषमा कवि को दिखलाई पडी। उसके साथ ही कवि की काव्य-भाषा मे फिर लालित्य लौट आया। इस कृति के गीतो से बच्चन की काव्य भाषा मे पिछली रचनाओ की अपेक्षा उर्दू के शब्दो का प्रयोग अधिक हो गया लगता है। लेकिन उर्दू के शब्दो का प्रयोग हिन्दी के साथ इस सफ़ाई के साथ किया जाता है

कि उनकी अलग कोई सत्ता प्रतीत नही होती। इसके लिए 'अंधेरे का दीपक' शीर्षक कविता का अंतिम पद पढा जा सकता है जिसमे उर्दू के शब्दो से निर्मित पूरी चार पक्तियाँ ही हिन्दी की पक्तियो के साथ मिलकर अपनी सम्पूर्ण सत्ता उनमे विलीन किए हुए हैं। यो हिन्दी कविता मे उर्दू शब्दो के प्रयोग की यह सफाई किसी दूसरे आधुनिक कवि मे देखने को नही मिलती।

वातावरण का चित्रण

बच्चन की काव्य-भाषा मे शब्दो के द्वारा वातावरण का चित्रवत चित्रण कर देने की अनूठी क्षमता प्रकट होती है। इस चित्रण मे शब्दो की ध्वनि का विशेष हाथ है। 'मधुशाला' मे इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। वातावरण के यह चित्रण कही ठोस हैं तो कही तरल हैं तो कही कलात्मक हैं। लेकिन यहाँ इतिवृत्त कही नही है। उनमे अनुभूति की सच्चाई या जीवन की धडकन है। कोरी कल्पना के आधार पर शब्दो द्वारा चित्र-काव्य रचने की प्रवृत्ति इस काव्य मे देखने को कही नही मिलती। यहा कुछ उदाहरण प्रस्तुत करने होगे—लोहा पीटने वाले के अग-गठन का ठोस चित्र ये है—

गर्म लोहा पीट, ठंडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है।
सख्त पजा, नस-कसी, चौडी कलाई,
और बल्लेदार बाहें
और आँखें लाल, चिनगारी सरीखी,
चुस्त औ' सीधी निगाहें,
हाथ मे घन और दो लोहे निहाई
पर धरे तो देखता क्या,
गर्म लोहा पीट ठंडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है। (आरती और अगारे)
और ये है वातावरण का एक तरल चित्र—
चांद निखरा, चन्द्रिका निखरी हुई है
भूमि से आकाश तक बिखरी हुई है
काश, मैं भी यों बिखर सकता भुवन मे।
चांदनी फैली गगन मे, चाह मन मे। (मिलनयामिनी)

और ये है एक विराट् चित्र—
मानसर फैला हुआ है, पर प्रतीक्षा
के मुकुर-सा मौन औ' गम्भीर बनकर
और ऊपर एक सीमाहीन अम्बर
और नीचे एक सीमाहीन अम्बर
औ' अडिग विश्वास का है श्वास चलता
पूछता सा डोलता तिनका नहीं है—

प्राण की बाजी लगाकर खेलता है जो
कभी क्या हारता वह भी जुआ है ?
कौन हंसनिया घुमाए हैं तुझे ऐसा कि तुझको मानसर भूला हुआ है ?

कहीं-कहीं पर बच्चन की काव्यभाषा की सरलता भी ऐसे अनूठे वातावरण की सृष्टि कर देती है कि जिसका गद्य में कथन ही नहीं हो सकता। लेकिन उसमें काव्य का पूर्ण अभिव्यंजन होता है। इस प्रकार के अनेक चित्र उनकी कविताओं से लिए जा सकते हैं। देखिये—

तीर पर कैसे रुकूं मैं
आज लहरों में निमन्त्रण !
रात का अंतिम पहर है,
झिलमिलाते हैं सितारे
वक्ष पर युग बाहु बांधे
मैं खड़ा सागर किनारे
वेग से बहता प्रभंजन
केश-पट मेरे उड़ाता
शून्य में भरता उदधि
उर की रहस्यमयी पुकारें,
इन पुकारों की प्रतिध्वनि
हो रही मेरे हृदय में
है प्रतिच्छायित जहां पर
सिन्धु का हिल्लोल कम्पन ! (मधुकलश)

इस उद्धरण में रात का अंतिम पहर, झिलमिलाते, सितारे, सागर का किनारा वहां वक्ष पर बाहें बांधे खड़ा एक मनुष्य, सनसनाता हुआ तूफान, उस मनुष्य के उड़ते हुए केश-पट, आकाश में अपनी रहस्यभरी पुकारों को भरता हुआ वह सागर, और उसकी प्रतिक्रिया से प्रताड़ित कवि का हृदय ! और उस हृदय में सिंधु के कंप-कंपाते हुए असीम जल-समूह का प्रतिबिम्ब ! यों एक ही पद में इतने भावसकुल चित्रों की अलग-अलग स्पष्ट रेखाएं गुंफित होकर मन के पटल पर अपनी जीवित छाप छोड़ देती हैं। मिलन-यामिनी के तीसरे भाग की कविताओं में इस प्रकार के सरल शब्दों में कलात्मक चित्र खींचे गए हैं जो जड़ नहीं जीवन की धड़कन से पूर्ण है।

× × ×

बच्चन की काव्य-भाषा में लक्षणा या व्यंजना शायद कहीं-कहीं पर ही मिले सारा काव्य अभिधा का ही कलेवर है। जैसा हम पूर्व विवेचन कर आए हैं, शब्द की अभिधा शक्ति के अस्तित्व से इंकार नहीं किया जा सकता। अर्थ-आदाय का सारा व्यवहार और व्यापार शब्द की इस शक्ति पर निर्भर है। लेकिन उत्तम काव्य में अभिधा अपना रूपान्तर भी करती है। स्वयं कवि की प्रतिभा से रंजित होकर वह अपनी

नई भगिमा धारण करती है। सूरदास कबीरदास मीरा आदि के पदो मे अभिधा ही काव्य की काति बन गई है। यह ठीक है कि लक्षणा-व्यजना से काव्य मे और ही आभा झलकने लगती है लेकिन इस सत्य से इन्कार नही किया जा सकता कि लक्षणा-व्यजना प्रधान काव्य मे मन-जीवन के अर्थ आशय और भाव सहज रूप मे व्यक्त नही हो पाते। उनको समझने के लिये काव्य के गुण-दोष जानने वाली आलोचक वृत्ति की अपेक्षा होती है। 'टैक्सट' मे रखने के लिये ऐसी कविताओ की महत्ता हो सकती है किंतु मन-जीवन को प्रभावित करने के लिए वही काव्य काम का है जिसमे अभिधा की काति उद्भासित होने लगती है। बच्चन की काव्य भाषा मे इसी प्रकार की अभिधा दर्शित होती है। काव्य मे अभिधा को कातिमय बनने के लिए पहले कवि की प्रतिभा, फिर शब्दो के उपयुक्त अर्थ आशय की पहुँच-पकड की शक्ति का विशेष हाथ होता है। बच्चन की काव्य भाषा म यही विशेषता देखने को मिलती है। इस प्रकार से अभिधा स्वत ही ऐसे शब्दा को खीच लेती है जो किसी बिम्ब, प्रतीक या परिपूर्ण अर्थ आशय के बोधक होते हैं और उनमे से एक भी न तो पर्याय चाहेगा, न स्थान परिवर्तन। काव्य की वह शब्दावली ही अपने मे इतनी पूर्ण और भाव-विचारो से परिपक्व होगी कि उसमे किसी प्रकार का हस्तक्षेप, काट छांट और परिवर्तन और तो और स्वय कवि करने मे असमर्थ हो जाता है। बच्चन की कविता मे अभिधा का प्रयोग, उसकी प्रौढता, परिपक्वता और गम्भीरता का यह चमत्कार विदेश प्रवास के उपरात की रचनाओ मे, यानी मिलन यामिनी के उपरात की कविताओ मे, देखने को मिलता है। वाणी और अर्थ का सजीव रूप बच्चन की भाषा मे पिछले दस-बारह वर्ष की काव्य-साधना मे विशेष देखने को मिलता है। मुक्त लय मे लिखी उनकी कविताओ मे यह वाणी विशिष्टता प्रधान रूप मे मिलती है। 'बुद्ध और नाच घर' तथा, 'त्रिभगिमा' की कविताएँ इसके लिये पठनीय हैं। एक उदाहरण लीजिये, पक्तियाँ त्रिभगिमा की 'कवि से' शीर्षक कविता से हैं—

> अर्थ आखर-बल
> अगर तुझको मिला है,
> तो नहीं उपयोग उसका यह
> कि तू अपनी व्यथाओं को बढ़ाकर कह।
> वे अधिक दयनीय, करुणा-पात्र,
> औ' हकदार हैं सवेदना के,
> जो कि जीवन भार
> जग के जाल,
> काल-कठिन-कॅटीली गाठ से
> दबते, उलझते, देह छिरवाते
> चले जाते अकेले

बिना बोले,
मात्र घावों की निशानी
वे दिखाये,
वे अधिक सुकुमार तलवे थे
कि जो कुसुमावली के पाँवड़े की आस ले
चुनते गए
वन पथ घन कुश-कटकों को
और विष के बुझे शूलों को,......

उक्त उद्धरण मे शब्दो की कसावट, उनका नियोजन और उनकी अर्थ-शक्ति अपने आप बोल रही है।

× × ×

बच्चन की भाषा मे अलकरण-तत्व अधिक नही हैं। "तिमिर समुद्र कर सकी न पार नेत्र की तरी" जैसे विशुद्ध अलकारिक भाषा के प्रयोग बच्चन के काव्य मे अधिक और अधिक बढ़िया नही मिलेंगे। किंतु बच्चन की भाषा मे व्यग्य देखने को मिलता है। पूर्वकालीन कविताओ मे यह व्यग अधिक नही है। किंतु जब से बच्चन की मुक्त छद रचने की प्रवृत्ति प्रकाश मे आई है तबसे भाषा के साथ व्यग ने दृढ गठ-बंधन किया है। इधर भाषा के साथ-साथ प्रतीक और रूपक भी लग गये हैं। त्रिभगिमा की महागर्दभ, इसान और कुत्ते, विकृत मूर्तियाँ, दीपक, पतिंगे और कौए, सड़ा हुआ कमल, खजूर आदि शीर्षक कविताएँ पठनीय हैं। बच्चन की भाषा मे जो व्यग है वह जीवन, समाज और युग की विकृतियो तथा मान्यताओ और स्थितियो पर करारी चोट करता है। यह ठीक है कि उसमे हृदय कम मस्तिष्क, अधिक है। किंतु भाषा की शक्ति और प्रौढ़ता किसी टीका टिप्पणी की आवश्यकता नही रखती।

बच्चन की पदावली की भाषागत एक अन्य विशेषता यह है कि वहाँ क्रियापद, अव्यय, कारक, ह्रस्वत्व दीर्घत्व तथा लय की एकतानता बनी रहती है। 'मिलन-यामिनी' के गीतो मे यह विशेषताए देखने को मिलती हैं। इससे उनके छद-विधान मे एक गति एव श्वासो के अनुरूप आरोह अवरोह का सौंदर्य पैदा हो गया है।

बच्चन की भाषा छायावादी काव्य ससार मे पलकर उत्तरोत्तर युग और मन-जीवन के अनुकूल परिवर्तित होती गई। उसमे लोकतत्वो का समाहार अधिक होता गया और उसकी सीमा है लोक गीतो की शैली मे गीत-सृजन। बच्चन के लोकधुनो पर आधारित गीतो मे ग्रामीण भाषा और आधुनिक खड़ी-बोली के फासले को घटाने का आभास मिलता है। जैसे—

महुआ, सोन नदन की नारी
होती जाती दिन दिन बारी
तुमने ऐसी याद बिसारी, वह जीती कि मरी।

यहाँ शब्द ग्रामीयता लिये है। खडी बोली के भी हैं जिनका योग काव्य भाषा की नवीनता का सूचक कहा जायेगा। बच्चन की भाषा मे इतस्तत अंग्रेजी के चलते शब्द भी प्रयुक्त होते रहे हैं जो अधिकांश खपे लगते हैं किंतु कुछ कही अखरते भी हैं। इस सदर्भ मे यह कहना उचित होगा कि अधिक बोल-चाल के शब्दो व मुहावरो के प्रयोग की झक मे कही-कही बच्चन की कविता को भारी क्षति भी उठानी पडी है। उनके 'सूत की माला' और 'खादी के फूल' कविता सग्रहो मे इसके अनेक सस्ते प्रमाण मिल जाते हैं। ऐसी दशा मे बच्चन की भाषा निताल अनगढ, सपाट तथा असाहित्यिक प्रतीत होती है। उदाहरण देना पर्याप्त न होगा। भाषा का भोंडापन कवित्व के किसी भी सदर्भ में स्वीकृत नही किया जा सकता। इस दृष्टि से यदि बच्चन का कवि कुछ नियत्रण रखता तो बहुत अच्छा होता। एक प्रकार से बच्चन की काव्य-भाषा मे उन सभी प्रचलित उर्दू, ग्रामीय, अंग्रेजी तथा तत्सम, अर्धतत्सम एव प्रतीकवाची शब्दो का समाहार है जिससे उनकी कविता की अभिव्यजना शक्ति तथा शैली का अपने ढग से विकास हुआ है। कलात्मकता उनकी भाषा मे नही है। सरलता ही बच्चन की कविता है।

बच्चन की कविता मे सबसे सफल प्रयोग उर्दू के शब्दो का हुआ है। ऐसा खडी बोली के शायद किसी कवि के काव्य में नही मिलता। बच्चन की कविता मे उर्दू के शब्दो के होते हुए भी वे हिन्दी भाषा-परिवार के ही अभिन्न अग लगते हैं। अपनी काव्य भाषा मे, जैसा कि प्रत्येक सफल कवि करता है, बच्चन ने कुछ क्रिया-पदों तथा मुहावरो आदि को तोडा-मरोडा भी है, जैसे होड करने से होडूँ, उपदेश देने से उपदेशे, स्वीकार करने से स्वीकारे आदि। लेकिन ऐसे गढे या तोडे मरोडे शब्दो का निर्माण काव्य भाषा के ह्रास का नही विकास का सूचक है। इस दृष्टि से आलोच्य कवि का योगदान विशेष है।

सरल-शब्द योजना के द्वारा श्रेष्ठ काव्य का सृजन हो सकता है—इस परिप्रेक्ष्य मे जब खडी बोली काव्य की समीक्षा का कभी समय आएगा तो मेरा अनुमान है कि बच्चन का काव्य अद्वितीय सिद्ध होगा। बच्चन की पदावली मे उत्तर भारत की प्रचलित प्राय सभी प्रातो की बोलियो के लोक प्रचलित इतने अधिक शब्दो और मुहावरो का प्रयोग हुआ है कि खडी बोली के किसी अन्य कवि की पदावली मे नही हुआ।

और कुल मिलाकर बच्चन का काव्य लोक-प्रिय काव्य है। उनकी भाषा भी लोक-भाषा (बेसिक शब्दावली से निर्मित) या जन-भाषा है। और शायद उनकी जन भाषा को ही यह श्रेय प्राप्त है कि बच्चन को आज का लोक-प्रिय कवि मान लिया गया है। लोकप्रियता की दृष्टि से बच्चन की कविता न तो किसी आह के युग की है, न वाह के युग की। वह तो कवि के युग-वय की राह की सीधी-सच्ची प्रतिध्वनि है। और इस प्रतिध्वनि की सार्थकता की कुंजी उनकी काव्य भाषा है। सूत्र रूप मे कहें तो बच्चन का प्राय सम्पूर्ण काव्य जीवन को शब्द शब्द की शक्ति के द्वारा धुन देने का एक महाप्राण प्रयास है।

और अंत में, शास्त्रीय दृष्टि से सर्वथा पृथक भाषा-अध्ययन के परीक्षण का परम्परा से पिंड छूट जाता है। तब उसका धरातल लोक-जीवन का व्यवहारिक पक्ष होता है। और जीवन का व्यवहारिक पक्ष भाषा के उसी रूप को मान्य ठहराता है जो सीधा प्रभावशाली हो। जो अनुभवों को शब्दार्थ का जामा पहना सके। लेकिन कृतित्व के सृजन के लिये यह एक क्रांतिकारी कदम है। इसे सृजन का स्वच्छंद बोध कहा जाना उचित होगा। पर इसको क्रियान्वित करना टेढ़ी खीर है। प्रायः साहित्य सृजेता भाषा की आंतरिक गरिमा के प्रदर्शन पर अपनी सारी शक्ति लगा देता है पर उसका व्यवहारिक पक्ष समृद्ध और शक्तिशाली नहीं बन पाता। इस कर्म मे वे ही सर्जक सफलता पाते हैं जो लोक-जीवन के अनुभवों के साथ जीते हैं और तदनुकूल अपना सृजन करते हैं। वे अपनी पूर्ववर्ती साहित्य की भाषा का कम से कम अर्जन कर अपने लोक-जीवन के अनुभवों से प्रसूत भाषा मे सृजन करते हैं। इस प्रक्रिया मे आपसे आप उनकी भाषा निर्मित होती चलती है। इससे उनके व्यक्तित्व की छाप सबसे पृथक पहचानी जाती है। मध्य-काल में कबीर और आधुनिक काल मे उपन्यास के क्षेत्र मे प्रेमचंद और कविता के क्षेत्र मे बच्चन की तुलना अन्यत्र नहीं की जा सकती। बच्चन की काव्य भाषा जीवन के अनुभवों के अनुरूप चली है। बच्चन के काव्य की विशिष्टता जीवन के अनुभवों को अभिव्यक्त करने की दृष्टि से है। ये अनुभव जिस तरह की भाषा मे व्यक्त हुए हैं उनकी मूक अनुभूति सभी मे होती, सभी उसे उन्ही शब्दो मे अभिव्यक्त करने की छटपटाहट भी महसूस करते हैं लेकिन विवशता यह है कि वे कवि नही होते। पर जिस कवि ने उनकी इस विवशता को, इच्छा को, शब्दो मे रूपायित किया है, स्वाभाविक है कि वे उसे पढ़ेंगे और प्यार करेंगे। बच्चन के बेशुमार पाठकों के होने के पीछे उनकी काव्य-भाषा का यही रहस्याकर्षण है जो उन्हें व्यवहार मे जीते हुए भी काव्यानन्द का सहज-साझीदार बना देता है।

बच्चन की कविता मे बासीपन की बू कहीं नही आती। क्योंकि उनकी भाषा में नवीन शब्द-योजना अनुभवों की अभिव्यक्ति करने की प्रबल प्रेरणा से प्रसूत होती है।

मेरा विचार है कि इस दृष्टि से बच्चन की कविता का परीक्षण करने पर ऐसे अनेक प्रयोग हाथ लग सकते हैं जो खड़ी बोली की अभिव्यंजना शक्ति को बढ़ावा देने वाले सिद्ध होंगे। बच्चन ने ऐसे बेशुमार मुहावरों का अपने काव्य मे प्रयोग किया है जिनका हम दैनिक व्यवहार मे प्रयोग कर अपनी वाक्शक्ति का परिचय देते हैं।

संक्षेप मे, काव्य के माध्यम से बच्चन ने खड़ी बोली की अंतर-बाह्य प्रकृति को लोक व्यवहार में व्यापकता देने की दृष्टि से बेजोड़ काम किया है जिसका जब स्वतंत्र रूप से सम्यक और निष्पक्ष विवेचन किया जायेगा, उसकी गरिमा का सही पता चलेगा।

पुरातन पिपासा का मुखरता : मधु-काव्य

पुरातन पिपासा का मुखरण : मधु-काव्य

मधु के कोष सम्मत कई अर्थ हैं। मधु, पानी को भी कहते है, मकरन्द को भी, दूध को भी, वसन्त ऋतु को भी, शहद को भी और शराब को भी। कुल मिला कर मधु का शाब्दिक अर्थ सूक्ष्मता, तरलता, मृदुता और सुस्वादिता से घुला-मिला है। लेकिन काव्य मे इस शब्द का लक्ष्यार्थ और व्यग्यार्थ भी निकलता है। और यह तभी निकलता है जब कि हम उससे जागरूक हो, उसके प्रति जिज्ञासु हो—जड न हो।

काव्य म शब्द का साधारण अर्थ साधारण जनो के लिए आनन्ददायक हो सकता है। लेकिन जो सर्वसाधारण की कोटि से कुछ ऊपर उठकर काव्य का रस रहस्य अनुभव करना चाहते हैं उनके लिए काव्य के शब्दो पदो का लक्ष्यार्थ या व्यग्यार्थ महत्वपूर्ण हो जाता है। शब्द ध्वनि काव्य की कसौटी है। इसमे कोई सन्देह नही कि उत्कृष्ट काव्य मे कवि अपने प्रमुख पदो शब्दो मे साधारण अर्थ का निर्वाह करते हुए भी कुछ 'उदात्त' अभिव्यक्ति करता जाता है। कबीर ने कहा है कि—

जहवां से आयो अमर वह देसवा।
पानी न पान धरती अकसवा
चांद न सूर न रैन दिवसवा।

इस अभिव्यजना के साधारण अर्थ के पीछे जो रहस्यमय 'उदात्त' अभिव्यक्त हुआ है उसे क्या कहा जा सकता है? क्योकि कबीर ने तो अकथित को यहाँ कथित किया है। अब इससे कम कथित हो ही नही सकता। कहने का तात्पर्य यह है कि सहजता के स्वर मे लिखा गया उदात्त काव्य साधारण हृदय मे भी स्पदन पैदा कर सकता है और असाधारण हृदय को भी हिला सकता है। यहाँ इसी दृष्टि से हम 'मधु-काव्य' पर विचार करेंगे।

× × ×

खडी बोली काव्य मे प्रतीक रूप मे 'मधु' का व्यापक प्रयोग हुआ है। और शायद ही कोई कवि ऐसा हो जो इस 'मधु' से अपने काव्य को वचित रख सका हो। रस को 'ब्रह्मानन्द' सहोदर मानने वाला आचार्य भी शायद मधुवादी काव्य को ही अपनी कसौटी पर फिर फिर कसता रहा होगा। 'मधु' यानी रस। मधुवादी काव्य यानी रसवादी काव्य। खडी बोली काव्य म मधु अधिकाशत रस का ही पर्याय रहा है। सोम रस, मदिरा या हाला का प्रयोग और अर्थ रूढिवादी रूप म कहीं पर भी अभिलक्षित नहीं होता। यह बात दूसरी है कि उसे रूढि रूप मे कुछ लोगो ने प्राय

मदिरा या शराब का ही स्थानापन्न कहा और समझा। और इस तरह कई कवियों और उनके सुन्दर काव्य को लांछित भी किया गया।

मधु न जाने कबसे लोगों का 'पेय द्रव' बना चला आया है। मानव सृष्टि के आदि पिता कहे जाने वाले मनु, जो मन के भी प्रतीक कहे गये हैं, सोमपान की लालसा से अभिभूत हैं—

"ललक रही थी सलिल लालसा
सोम पान की प्यासी।" (कामायनी कर्म सर्ग)

हमारे पुराण इतिहास के अनुसार मधुपान या सोमपान प्राचीन पुरुषों, देवों, किन्नरों, गधर्वो, सम्राटों, सामन्तों और मध्य निम्न वर्ग के लोगों ने सुख-भोग के लिये सुलेआम किया, मदिरापान से अपने को उल्लसित किया या अपने किसी विषाद को विस्मृत किया, गम गलत किया। बात चाहे कुछ हो, लेकिन अभिजात्य कोटि से लेकर निम्न कोटि तक मदिरापान, चाहे क्षणिक सुख की लालसा को लेकर ही सही, किया जाता रहा है। इस सत्य के साथ एक और भी सत्य जुड़ा हुआ है—मदिरापान की वर्जना का, उपेक्षा का, आलोचना का, अधार्मिकता का और असमाजिकता का' मदिरापान और मदिरा पर प्रतिबंध—ये दो द्वंद्वात्मक सत्य समाज मे सदा साथ रहे हैं। भारत मे प्राय मदिरा का विरोधीपक्ष प्रबल रहा है। यहाँ आदर्शवाद का प्रबल आग्रह है लेकिन संभवत मदिरपान कम नही रहा है। विदेशो मे मदिरापान को असामाजिक अथवा अधार्मिक कृत्य प्राय नहीं समझा गया।

पर काव्य मे 'मधु' की अभिव्यंजना व्यापकता से हुई है। अंग्रेजी और इस्लामी काव्य मे तो सुरा और सुन्दरी का महत्व और मूल्य किसी आलोचना की आवश्यकता ही नही रखता। वहाँ मधुवादी काव्य की परम्परा सदियो पुरानी है। सैंकड़ो वर्ष पूर्व उमर खैयाम की मधुशाला खुल चुकी थी और मधुबाला प्रस्तुत हो चुकी थी। इतना ही नही, सूफी फकीरो ने मस्ती-मुहब्बत को मदिरा की संज्ञा से परे की चीज नहीं समझा। सूफी फकीरों का सम्पूर्ण आध्यात्मिक दर्शन सुरा और सुन्दरी के व्याज से वाणी पा सका है। सूफियो के 'इलहाम' मे (मूर्छना में) सुर्ख-सुन्दरता और सुर्ख-सुरा का ही तो 'दरद' है, उन्माद है, इश्क है, नशा है, प्रना है। इस प्रकार समस्त सूफी-दर्शन के पट पर सुरा-सुन्दरी का अनवरत नर्तन चल रहा है। सूफी कवियो ने इसी आध्यात्मिक दर्शन को अपने कलाम यानी काव्य मे ध्वनित किया है। उर्दू के शायरो और उनकी शायरी पर सुरा-सुन्दरी का गहरा नशा चढ़ा हुआ है। उर्दू के महान कवि गालिब के दीवान मे से यदि सुरा-सुन्दरी गायब हो जाय तो क्या रह जावेगा? कहने का तात्पर्य यह है कि मधुवादी काव्य मे मधु, मधुबाला और मधुशाला-प्याला आदि उपकरण सज्ञा सूचक नहीं हैं। न वे शराब नामधारी द्रव के ही द्योतक हैं। सूक्ष्मता से वहाँ वे इस काव्य-आस्वाद्य और आध्यात्म के भावमय प्रतीक हैं। वे नये नहीं हैं। उनकी एक सुदीर्घ परंपरा है। वैसे तो काव्य मे न कोई विषय नया होता है न कोई पुराना। कवि के कहने मे जितनी कला-

कुशलता है, कवि कितना कल्पना और भावना प्रवण है, उसके कथन मे कितनी शक्ति, सहजता, सवेद्यता है, यह बात वस्तुत महत्वपूर्ण होती है।

जैसा कि कहा गया है, मधु-काव्य नया नही है। हिन्दी काव्य के इतिहास मे सत कबीर पहले भ्रातिदर्शी कविमनीषी हैं जिनके काव्य मे सूफी फकीरो के आध्यात्मिक दर्शन का भी चटकीला रग है। उनकी अभिव्यजना मे सूफियाना इश्क आशिकी की ध्वनि भी गूंजती है,। मधु उसका मोहक माध्यम है—

हिरदे मे महबूब है हर दम का प्याला।
पीयेगा कोई जौहरी गुरुमुख मतवाला॥
पियत पियाला प्रेम का सुधरे सब साथी।
आठ पहर झूमत रहै जस मंगल हाथी॥
(कबीर ह० प्र० द्विवेदी)

× × ×

मन मस्त हुआ तब क्यो बोले।
सुरत कलारी भई मतवारी मदवा पी गई बिन तोले।
(कबीर ह० प्र० द्विवेदी)

अन्य सत कवियो (दादू नानक आदि) ने भी इतस्तत मदिर भावो की खुलकर अभिव्यजना की है। इन सत कवियो ने भक्ति रस या हरि-रस को मदिरा के नशे से उपमित भी किया है। मीरा बाई ने भी मधुवादी भाव व्यक्त किये हैं। इनका लक्ष्य कृष्ण के प्रेम मिलन विरह और रूप राग रस की अभिव्यक्ति करना ही रहा है। मीरा ने अपनी शुद्ध मस्ती मे अपने प्रियतम कृष्ण को मधु का विक्रेता तक कह दिया है—

मधुवन जाय भए मधुबनिया,
हम पर डारो प्रेम का फदा।

इन सत कवियो ने सूफियो की तरह मधु को आध्यात्मिक रस-दशन के बहुत कुछ अनुकूल व्यक्त किया है, यद्यपि उसकी सहज चिता भारतीय रही है। पर भारतीय उर्दू-फारसी काव्य मे शराब की अभिव्यजना व्यापकता से हो रही थी। फारसी काव्य मे व्यक्त रहस्यवाद मे शराब का ही अस्तित्व है। भारत के सूफी कवियों, (जायसी, कुतुबन और मझन) के काव्य मे मधुवादी भावो का पर्याप्त प्रकाशन हुआ है। लेकिन यहाँ मधु 'उदात्त' बना रहा है। हाँ अष्टछाप के कवियो ने प्राय मधुवन की बात तो कही है, मधुर की बात भी कही है, मधुरस की बात भी कही है, पर 'द्रव मधु' की बात शायद नही कही है। अपवाद कही हो तो हो। महाकवि तुलसीदास जी ने भी 'सुरा' शब्द को अपने पवित्र काव्य म महत्वपूर्ण स्थान दिया है—

करत मनोरथ बस जियँ जाके। जाहि सनेह-सुराँ सब छाके।
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहबल बचन पेम बस बोलहिं।

रीतिकाल के रस सिद्ध कवियो ने मधु काव्य का सृजन किया है। इन कविता

पर प्राय उर्दू-फारसी के कवियो का नाजुक अन्दाज, उक्ति चमत्कार और महफिली ठाठ हावी हुआ लगता है। यहाँ मदिरा मे आध्यात्मिक गहराई नही के बराबर है। कही-कही प्रेम की पीर मदिर भाव के माध्यम से बाँध कर रह जाती है। जहाँ तक उर्दू शायरी की बात है, इस समय मधु के माध्यम से वह विकल मन की तीखी अभिव्यक्ति कर रही थी। साकी और शराब के माध्यम से उर्दू के शायर शायद अपने गम से नजात पा रहे थे, खुदा की असीमता का अन्दाजा लगा रहे थे—गालिब कहते हैं—

कल के लिये कर आज न खिस्सत शराब मे।
यह सुए-जन है, साकिए-कौसर के बाब मे।

और यह देख कर कुछ आश्चर्य होता है कि इस युग के महान दार्शनिक और मनीषी कवि श्री अरविन्द के काव्य मे भी मधु विषयक अनेक उक्तियाँ है। अपनी 'स्वर्णिम ज्योति' कविता मे एक स्थल पर वे कहते हैं कि 'मेरे शब्दों ने पी ली है अमृत सुरा।''

बृहदारण्यक उपनिषद मे 'मधु विद्या' की गम्भीर परिचर्चा आई है। वहाँ मधु, जीव या प्राण का पर्याय या प्रतीक है। रूपक के माध्यम से वहाँ जीवो को 'मधुभोक्ता पक्षी' भी कहा गया है। मधु, अर्थात् 'जीव प्राण' अनेक योनियो मे भिन्न भिन्न रूप बदलता है। इस प्रकार इस उपनिषद मे वैदिक 'मधु विद्या' का रहस्य गम्भीर बताया गया है। चूंकि प्राण या जीव या जीवन सभी को प्रिय है, अत मधु के प्रति आकर्षण जब तक जीवन की पिपासा है, अमर है (अशोक वाजपेयी के शब्दो मे कहूँ—जहाँ तक इस जीवन की प्यास, तुम्हारी मधुशाला है सग') अस्तु इस सबसे यह तो स्पष्ट ही है कि मधु का केवल बाजारू मतलब ही नही वरन् उसका प्रतीक अथवा रूपकगत गम्भीर दार्शनिक बोध भी है। अत मधु का सस्ता व सरल काव्यार्थ निकालना गम्भीर दृष्टि से भ्रामक है। उसका दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक अस्तित्व हमारे वाङमय मे व्यक्त हुआ है। काव्य मे 'मधु' नितात भाववाचक प्रतीक है—यह मैं कई बार दहुराना चाहूँगा।

× × ×

अब से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व चीन के कवियो ने जीवन की मस्ती के प्रतीक रूप म मदिरा का व्यग्यमय वर्णन किया था। 'टी० यू० एच० यू०' कवि की रचनाओ से इसका पता चलता है। एक उदाहरण देखिये—

They say that clear wine is a saint
Thick wine follows the wayof sage,
I have drunk deep of saint and sage
What need then to study the sprits and fairies ?
Take a whole cugful-l and the world are one
(A Treasury of Arian literature by
John D. Yohanaan Page 259)

इस प्रकार विश्व मे मधु (या शराब ?) सम्बन्धी काव्य की एक लम्बी परम्परा और रचनात्मक स्थिति रही है। यह बात दूसरी है कि उसे यहाँ की तरह 'हालावादी' काव्य नही कहा गया। खडी बोली काव्य मे जिस आलोचक ने 'हालावादी काव्य' के वाद का नारा उठाया उसने कुछ अनर्थ ही किया। सच तो यह है कि 'हालावादी' काव्य कुछ भी नही है। काव्य मे हाला की अभिव्यक्ति मन की मस्ती व भौतिक-भोगवादी रोमाटिक रुचि को व्यक्त करती है। जिस अर्थ मे काव्य मे हाला, प्याला, मधुबाला और मधुशाला आदि का प्रयोग हुआ है उसका रूढिवादी सस्ता अर्थ लेने से अनर्थ और अन्याय होने का खतरा है। काव्य मे मधु का प्रयोग शुद्ध सांकेतिक है और इसी अर्थ मे उसे समझना-परखना भी चाहिये। पर जहाँ वह सस्ता है, संकीर्ण है, उसे काव्य के अन्तर्गत रखना भी उचित न होगा। वस्तुत वह काव्य काव्य ही नही कहा जा सकता जिसमे किसी पदार्थ के प्रचार की ध्वनि आती हो। काव्य की मूल शक्ति कवि की भावनाओ मे होती है—कोरे शब्द, द्रव या किसी पदार्थ विशेष मे नही। काव्य कोटि मे रखा जाने वाला काव्य वही होगा जिसमे शब्द, द्रव या पदार्थ न केवल भाव बन गया हो वरन् वह सर्वसाधारण के लिये रस बन गया हो। काव्य मे 'मधु' (और उसके अन्य उपकरण भी) तरह-तरह के भावो का प्रतीक बनकर व्यक्त हुआ है। प्रसगवश फिर कहूँ कि अपने परिपूर्ण रूप मे यह मधु सत सूफी कवियो के लिये आध्यात्मिक आनद का बोधक रहा है। और खैयाम के अनुसार ये मधु क्षणिक सुख-भोग का सगी या साथी-सा बनकर व्यक्त हुआ है।

रोमाटिक कवियो पर खैयाम के काव्य-दर्शन का अधिक प्रभाव पडा है। खैयाम की रूबाइयो का विश्व मे व्यापक प्रभाव है। खडी बोली मे (कुमारावस्था मे ही) खैयाम की रुबाइयो के कई भावानुवाद प्रकाशित हुए है। और तो और राष्ट्रकवि स्व० मैथिलीशरण गुप्त और 'स्वर्ण-चेतना' के कवि सुमित्रानन्दन पत तक ने खैयाम की रूबाइयो का भावानुवाद किया है। कहूँ कि इन अनुवादो मे कविवर बच्चन का अनुवाद जनसाधारण तक अधिक पहुँचा है। कहना होगा कि बच्चन का किशोर-कवि 'खैयाम की मधुशाला' से अत्यधिक आकर्षित हुआ था और सम्भवत इसके परिणाम स्वरूप आगे उस के काव्य की एक मुक्त मधुधारा ही बह चली।

मेरा अनुमान है कि स्वय बच्चन सन् १९३२ के आस-पास से लेकर सन् १९३७ (मधुकलश) तक मधुवादी काव्य-धारा मे तेजी से बहते रहे। सन् १९३५ अर्थात् खैयाम की मधुशाला के अनुवाद से उनका सर्जक रूप सामने आया। इससे पूर्व कि बच्चन के मधुवादी काव्य पर मुक्त रूप से कुछ कहा जाय यह आवश्यक है कि खैयाम की मधुवादी सूक्ष्म चिता को सक्षेप मे कुछ समझ लिया जाये और उसके साथ ही बच्चन से कुछ पूर्व के और उनके समकालीन (छायावादी) कवियो ने जो मधुवादी काव्य रचा उसके विषय मे एक धारणा बना ली जाये। मधुवादी काव्य के महत्व और मूल्य को जानने-समझने के लिये तो यह उपयोगी होगा ही साथ ही बच्चन के मधुकदी काव्य के स्वतन्त्र मूल्य और महत्व को जानने मे भी सुविधा होगी।

फ़िट्ज़रेल्ड ने खैयाम की जिन रुबाइयो का अनुवाद अंग्रेजी मे किया है उन्हे और उनके हिन्दी काव्यानुवादो को पढकर सक्षेप मे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि खैयाम के पास तरण प्यास नही है, वृद्ध प्यास है। खैयाम कल के या भविष्य के जीवन पर अधिक आस्था नही रखता। उसकी मान्यता है कि इस क्षण मे ही जो सुख मिले उसे भोगा जाये। खैयाम का सुख क्षण के कॉपते हुए कण पर ठहरा हुआ है।

> Ah, fill the Cup'—what boots it to repeat
> How Time is Slipping underneath our feet
> Unborn To morrow and dead yesterday,
> Why fret about them if to day be sweet
>
> (Edward Fitz Gerald)

खैयाम के क्षीण स्वरो मे वृद्ध, प्रभावग्रस्त, मृत्युग्रस्त, भयातुर, और थकित पिपासा कुल जीव का दुर्दमनीय आवेश प्रतिध्वनित होता है। वहा जीवन के प्रति आस्था कम है, भ्रांतिपूर्ण सुख भोग की लालसा तीव्र है। खैयाम का काव्य तीव्रतम् पिपासा का काव्य तो है पर निसन्देह वह पौरुष का काव्य नही है। खैयाम की प्रकृति और नियति, उस का जगत, मानव और जीव क्रूर-काल के प्रहार से पीड़ित है। खैयाम जीवन-मदिरा के इस तन रूपी प्याले को तलछट तक से चाट जाना चाहता है। उसे जीवन के सौन्दय की अमर पिपासा है। पर दुख तो यही है कि उसका अस्तित्व क्षण-भगुर है। उसका प्रेम अमर है लेकिन वह मर जायेगा। कुल मिलाकर खैयाम के काव्य-दर्शन मे क्षणिक सुख को ही शाश्वत महत्व दे दिया गया है और भोग की भावना को तूल दिया गया है। वहा सुरा और सुन्दरी सुखोपलब्धि के क्षणिक साधन मात्र होकर भी शाश्वत से लगते हैं। खैयाम का यह दृष्टिकोण भारतीय चिता की दृष्टि से स्वस्थ्य नही है। हमारे यहाँ जीवन के आनद को अनत क्षणिक नही माना गया है। खैयाम का सुख वैयक्तिक है। उसे उदात्त नही कहा जा सकता। फिर खैयाम की सुखवादी धारणा में एक निष्क्रियता है जो जीवन को पगु बनाने वाली कही जायगी। सम्भवत इसीलिये भारत मे खैयाम के काव्य-दर्शन की लहर आई और चली गई। फिर भी उसके काव्य का कुछ ऐतिहासिक महत्व तो है ही।

खैयाम के काव्य को पढकर सूक्ष्म प्रतिक्रिया यह होती है—

१ इस काव्य मे जीवन का अभावात्मक दृष्टिकोण प्रधान है।

२ इस काव्य मे क्षणिक सुख भोग की लालसा की तीव्र अभिव्यजना है।

३ इस काव्य म किसी दीन, दुर्बल और वृद्ध प्रेमी-कवि का दुर्दमनीय आत्म-चीत्कार है। इसे फस्टेशन या कामप्लेक्स या कुंठा की अभिव्यजना कह सकते हैं।

४ इस काव्य मे मुक्त रूप, सौन्दय और प्रेम रसपान की कभी न बुझने वाली पिपासा है। इसलिये उसमे सपनो का एक कवि कल्पित सरस ससार उद्भासित होता है।

५ इस काव्य म काल और नियति का भय और आतक गहरा छाया हुआ है। यहां हर आने वाला क्षण जैसे क्षण का प्रतीक है। जैसे हर भागता हुआ क्षण

मुख का साक्षी है। जैसे एक सांस ही, एक घूंट ही, एक चितवन ही जीवन की चरम उपलब्धि है।

६ इस काव्य मे सुरा, साक़ीबाला, मधुशाला, प्याला, आदि पात्र आत्मा, देह, जग, रति, लालसा आदि के जीवत प्रतीक हैं। वे इस कटु जगत को भुलाने और अभाव ग्रस्त कुंठित मन को बहलाने के प्रयोजन को सिद्ध करने वाले मात्र साधक हैं। यहाँ जीवन का साध्य बस एक अर्थ हीन शून्य है, रिक्तत्व है।

७ इस काव्य मे व्यक्त एक मिथ्या मादकता है जो मूलत आयु की उदासीनता को व्यक्त करती है। क्षणिक-सुख का स्वर भी सूक्ष्मत वहाँ दमित विलाप या प्रलाप ही-सा लगता है।

...और यह निसदेह कहा जा सकता है कि बच्चन के मधु-काव्य-सृजन का उत्स खैयाम काव्य का आकर्षण है। बच्चन की 'प्रारम्भिक रचनाएं' (दूसरा भाग) मे जहाँ अनेक विषयो पर कविताएँ है और जिनका मुख्य स्वर छायावादी भाव शिल्प के बीच से उभरता प्रतीत होता है वही मधु का सहज, मन्द्र स्वर भी प्राय सुनाई पडता है। सग्रह के अन्त मे कवि की तीन रुबाइया रखी हैं जिनसे उसके आगामी मधुवादी काव्य क्षितिज का पूर्वाभास मिलता है। बच्चन के आगामी मधुवादी काव्य-सृजन की यह रुबाइया जैसे तीन कुंजिया है। यह पक्तिया जरा ध्यानपूर्वक पढिये—

मैं एक जगत को भूला
मैं भूला एक जमाना
मैं भूल न पाया साकी—
जीवन के बाहर जाकर
जीवन मे तेरा आना

× × ×

हर कलिका की किस्मत मे
जग जाहिर, व्यर्थ बताना,
खिलना न लिखा हो लेकिन
है लिखा हुआ मुर्झाना।

यहाँ यह भी ध्यान रहे कि बच्चन कवि से पहले एक कहानीकार के रूप मे प्रकट हुए थे और इसके आगे बच्चन ने खैयाम की मधुशाला का अग्रेजी से खडी बोली मे अनुवाद प्रस्तुत किया जहाँ छायावादी शैली कुछ ढलती हुई-सी प्रतीत होती है। इसके उपरात, सन् १९३३-३४ मे कवि ने अपनी मौलिक 'मधुशाला' प्रस्तुत की।

इससे पूर्व कि मधुशाला पर स्वतन्त्र पाठकीय प्रतिक्रिया प्रकट की जाये यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि बच्चन की मधु से सम्बन्धित काव्याभिव्यक्ति मे खैयाम की चिंता का प्रभाव प्रकट नही है वरन मौलिक रचना करने की प्रेरणा प्रबल प्रतीत होती है। मधुशाला के "सबोधन" मे इस प्रेरणा की स्वीकृति कवि के शब्दो मे साफ प्रकट होती है—

"उस दिन दूसरे के प्रसून (अर्थात् उमर खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद) जो मैंने तेरे चरणों मे अर्पित कर दिये उससे मेरे हृदय का भार तो हल्का न हुआ, मेरे हृदय का बोझ तो न उतरा, मेरे हृदय को सन्तुष्टि तो न मिली।"

बच्चन के मधुकाव्य मे खैयाम के काव्य के कुछ तत्वों का समाहार अवश्य हुआ है। खैयाम 'मधु' को जीवन के सुखवादी दृष्टिकोण का प्रतीक मानकर चले हैं और फिर यह भी मानते है कि सुख क्षणिक है जीवन भी क्षणिक है। उसका भोग अपनी क्षणसीमा मे भी स्वर्ग प्राप्ति से बढ़कर है। बच्चन भी सीधे या प्रकारांतर से कुछ ऐसी ही बात स्वीकार कर जाते हैं। मधु-सुख-क्षण को खैयाम की तरह बच्चन भी व्यक्त करते हैं—

सुख की एक सास पर होता
है अमरत्व निछावर।

बच्चन के काव्य मे, खैयाम जैसा, जीवन के प्रति सक्ति या आसक्ति का स्वर भी मुखरित हुआ है। पर खैयाम की सक्ति या आसक्ति मे वैयक्तिक कुंठा, पिपासा, वासना, खीज और काल के प्रति भय, शका, निराशा और वीतराग की ध्वनि व्यापक है। यह बच्चन के मधुकाव्य मे भी है लेकिन व्यापक नही है।

खैयाम अपनी प्यास खाली प्याले से अधिक व्यक्त करता हुआ प्रतीत होता है। लेकिन बच्चन का कवि जीवन की भरी गागर से अपनी ललक-लपट व्यक्त करता दीखता है—

है आज भरा जीवन मुझ मे
है आज भरी मेरी गागर।

खैयाम के काव्य म जग जीवन के सघर्ष के प्रति सूक्ष्मत थकान और पलायन व्यक्त होता है। पर बच्चन के काव्य मे ऐसा स्वर प्रधान नही है। वहाँ जग-जीवन के सघर्ष मे से ही मधु की धारा फूटती है—'राग के पीछे छिपा चीत्कार कह देगा किसी दिन, हैं लिखे मधु गीत मैंने हो खडे जीवन समर में' कहीं-कहीं बच्चन के काव्य मे खैयाम की भाँति व्यक्ति विषाद की व्यजना गहरी हो जाती है। लेकिन उसका प्रभाव स्थाई नही रहता। खैयाम के काव्य मे जिस प्रकार हाला, प्याला, साकीबाला और मधुशाला जीवन के प्रतीक बनकर उतरे हैं, बच्चन के काव्य मे भी प्राय उसी तरह से उनकी अभिव्यजना हुई है।

खैयाम के काव्य मे दार्शनिक आग्रह अधिक है। बच्चन के मधुकाव्य म अल्हड़ता है। फिर भी खैयाम के काव्य की प्रेरणा बच्चन के मधुवादी काव्य सृजन की मूल शक्ति है। वास्तविकता यह है कि मधुशाला ने आलोच्य सृजन को लोकप्रियता दी। उनकी अन्य मधु सम्बन्धी रचनाओं ने उन्हें काव्य-सृजन करते रहने का अर्थ आधार-बल प्रदान किया। और मधु-काव्य ने उन्हें प्यार जवानी जीवन के जादू को मानने-मनवाने और गाने झुमाने का सौभाग्यशाली अवसर प्रदान किया। यों बच्चन लोक-प्रिय कवि हो गए।

बच्चन की मधु विषयक कविताओ मे मिथ्या धर्मादर्शो के प्रति कटाक्ष एवं सुरा-सुन्दरी के प्रति भोगवादी पिपासा का खुलकर प्रकाशन हुआ है। उनकी 'मधुशाला' और 'मधुबाला' की मूलध्वनि यही है। इन कृतियो की इस मूलध्वनि की सूक्ष्मता हाफ़िज की इस अभिव्यक्ति के इर्द गिर्द मँडराती है—

मावोस जुज लबे माशूक ओ जामे मैं हाफ़िज
अर्थात्— कि दस्ते जुहद फरोशा खतास्त वोसीदन

'ए हाफिज, तू शराब के प्याले और माशूक के अधरो के अलावा और किसी का चुम्बन न ले क्योंकि धर्म बेचने वालो के हाथ का चुम्बन लेना एक बड़ा पाप है।' इस परिप्रेक्ष्य मे बच्चन का मधुवादी काव्य पढ़ते हुए यह कहना ठीक होगा कि उसमे खैयाम के काव्य की जैसी क्षणभगुर जीवन की कुंठित दार्शनिकता न होकर जीवन के सुखभोग के प्रति सहज अल्हड़ता और मस्ती मुखरित हुई है। किन्तु इसका यह अर्थ लेना असगत है कि बच्चन की मधुवादी काव्य की अभिव्यजना का आधार पर्शियन काव्य है। यह तो मात्र तुलना है। सृजन की दृष्टि से बच्चन का मधुकाव्य अपने मे मौलिक अधिक है—प्रेरणा कहीं से भी प्राप्त करने का कवि को अधिकार है।

तत्वत बच्चन की मधुवादी अभिव्यजना मे रहस्य या दर्शन सम्बन्धी कोई दृष्टिकोण न होकर जीव की सहज पिपासा का मुक्त-मस्त (और त्रस्त भी) मुखरण हुआ है। खैयाम के अतिरिक्त विश्व प्रसिद्ध पर्शियन कवि हाफिज (एडी० १३२०—९१) ने भी प्रणय-हालावादी रचनाओ का सृजन किया था। इनका काव्य किसी धर्म-दर्शन अथवा वैराग्य भाव से ग्रस्त न होकर एकदम इहलौकिक अल्हाद को ध्वनित करता है। अत सम्भवत यह सोचना असगत न होगा कि बच्चन की मधु-प्रणय विषयक अभिव्यक्ति हाफिज की इस प्रकार की मूल अभिव्यजना के स्तर की है—

"I am no lover of hypocricy
Of All the treasures that the earth can boast A briming cup
of Wine I prigze the most This is enough for me.
(A Treasury of Asian literature Page 345)

X X X

बच्चन को हालावादी कवि (चीप अर्थ मे) होने का फतवा बहुत पहले दिया गया था। इसमे कोई शक नही है कि बच्चन ने एक साथ शुद्धमधु सम्बन्धी ये दो कृतियां दीं—

१. मधुशाला
२. मधुबाला

इन मधु-कृतियो मे सन् १९३३ से लेकर १९३५-३६ तक की रचनायें सग्रहीत हैं। लेकिन बच्चन के मधुवादी काव्य-सृजन से पूर्व खड़ी बोली मे खैयाम की मधुशाला के कई अनुवाद हो चुके थे जिनका जिक्र पहले हो चुका है। इधर बच्चन जी के अग्रज स्वर्गीय श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और श्री भगवतीचरण वर्मा मधु से सम्बधित मस्ती और वेदना से पूर्ण कविताएँ रच चुके थे। इधर मैं आप का ध्यान छायावादी

काव्य के स्तम्भ स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद रचित 'आँसू' काव्य की ओर भी आकर्षित करना चाहूंगा। 'आसू' की रचना सन् १६२५ से भी पूर्व हुई, लेकिन इस वेदना और प्रेम के भावों से पूर्ण काव्य में अनेक पद्य पद्यांश मधु, मदिरा, प्याला और साकीबाला से सम्बन्धित हैं। इस काव्य में खैयाम की मदिरा का उन्माद विषाद स्थल स्थल पर उभरता है। बहुत से उदाहरण दे सकता हैं, लेकिन कुछ प्रस्तुत कर रहा हूँ—

"यह तीव्र हृदय की मदिरा
जीभर कर छक कर मेरी
अब लाल आंख दिखलाकर
मुझ को ही तुमने फेरी।
× × ×
परिरम्भ-कुम्भ की मदिरा
निश्वास मलय के झोके
× × ×
काली आखों में कितनी
यौवन के मद की लाली
मानिक मदिरा से भरदी
किसने नीलम की प्याली ?

प्रसाद जी के काव्य के अतिरिक्त निराला जी, पंतजी और महादेवी जी के काव्य में मधु की अभिव्यंजना बराबर होती रही। निराला जी की इन उक्तियों से मधु झर रहा है—

द्रुम दल-शोभी फुल्ल नयन ये
जीवन के मधु गन्ध चयन ये।
× × ×
जगा देता मधु गीत सरल
तुम्हारा ही निर्मम झंकार। (अपरा पृ० ६५)

× × ×

पंत जी ने तो सन १६२६ में 'मधुज्वाल' (जो बच्चन जी को समर्पित हुई है) पुस्तक में खैयाम की रुबाइयों का गीतान्तर ही किया है। इधर दीपशिखा (१६४२) से पूर्व महादेवी जी ने अपने काव्य में मधुस्नात अनेक गीत रचे हैं। सन १६३० से ३५-३६ तक के पांच छ वर्षों में रचा गया यदि खड़ी बोली काव्य का सूक्ष्म अवलोकन किया जाय तो छायावादी काव्य में मधुभाव धारा का अपना व्यापक महत्व है। महादेवी जी के अनेक पद्यांशों और कई गीतों की प्रथम पंक्तियों से मधु झरता है—

तब क्षण क्षण मधु प्याले होंगे।

× × ×

विरह की घड़ियाँ हुई अलि मधुर मधु की यामिनी-सी।

× × ×

जाने किस जीवन की सुधि ले, लहराती आती मधु बयार।

× × ×

तेरा अधर विचुम्बित प्याला
तेरी ही स्मित मिश्रित हाला
तेरा ही मानस मधुशाला
फिर पूछूँ क्यों मेरे साकी
देते हो मधुमय-विषमय क्या ?

महादेवी जी की दीप शिखा (सन १९४२) के कई गीतों तक मे मैंने मधु-भावों की पदचाप सुनी है; जैसे, गीत सख्या ४३ मे 'मधु का ज्वार' आया है। गीत संख्या ४७ मे मे 'ये मधु-पतझर सांझ सवेरे' का मनोरम सकेत है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस समय बच्चन अपने मधुवादी काव्य की रचना कर रहे थे उस समय और उससे कुछ पूर्व और उससे काफी आगे तक भी खडी बोली के प्रसिद्ध कवि अपने काव्य मे मधु का अभिव्यजन सीधे या प्रकारांतर से कर रहे थे। मैंने पहले कहा कि खैयाम के काव्य से बच्चन आकर्षित थे और वे अपने युग वातावरण तथा समकालीन कवियो के भी साथ थे। प्रतिभाशाली नवयुवक थे। अंग्रेजी के छात्र, रसिक, प्रेमी और फिर कायस्थ कुलोद्भव, पचहत्तर प्रतिशत रक्त मे हाला ! इस प्रकार बच्चन के मधुवादी काव्य सृजन शुरू हुआ। सौभाग्य यह रहा कि समय और शोहरत ने उन्हें सुखद सपनों को पकडने की ललक प्रदान की। मधु की उपेक्षा करने वाले भी मधुशाला सुनकर उनकी सराहना करने लगे, झूमने लगे, गाने लगे और उसके कवि को 'पिट्टू' के यहाँ के रसगुल्ले' खिलाने लगे। निराश नव-युवक पीढी को झूमकर जीने की उमंग मिली। कठमुल्ले कहते-सुनते रहे, बच्चन प्रसिद्ध होते रहे। तीखी आलोचनाओं और कठमुल्लो के कटाक्षों ने उनके यौवन और जीवन मे संघर्ष की ज्वाला जगा दी। यह उनके मधुवादी काव्य का दिया हुआ भाव-उपहार था, सौभाग्य था। लेकिन अभिशाप रूप एक दुर्भाग्य भी जुड़ गया कि उन्हें हालावादी, मदिरा प्रचारक, पियक्कड, धर्म पथ भ्रष्ट और छिछोरा कवि कहा-सुना जाने लगा। यह दुर्भाग्य बच्चन के काव्य-विकास के आड़े तो न आ सका पर इससे एक अहित जरूर हुआ कि हमारे हिन्दी के सुधी आलोचक वर्ग ने जीवन के एक अत्यन्त मर्मस्पर्शी कवि के महत्वपूर्ण काव्य का समय से उचित मूल्यांकन नहीं किया। और तो और बच्चन के मधु काव्य मे जो शक्ति निहित है अभी तो उसे भी नहीं छुआ गया है। इधर दो दशकों से ऊपर जो कुछ उन्होंने लिखा है, उसका तो कहना ही क्या है ?

मधुशाला

मधुशाला बीसवीं सदी की, सम्भवतः, देश की भिन्न-भिन्न भाषाओं मे रची

गई सर्वाधिक प्रसिद्ध कृतियो मे से एक कृति है। यह सभी जानते हैं कि खडी बोली की यह पहली काव्य पुस्तक है जिसका पहली बार अनुवाद अंग्रेजी में अंग्रेजी की ही कवियित्री Marjorie boulton ने किया और स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू ने इस पर अपनी महत्वपूर्ण भूमिका लिखी। मधुशाला सन १९३३ मे लिखी गई और १९३५ मे उसका पहला प्रकाशन हुआ। इस कृति के अब तक अनेक सस्करण निकल चुके हैं जिससे उसकी पठन-पाठन की बढती हुई रुचि का आसानी से अन्दाज लगाया जा सकता है। टैक्सट मे लगी हुई कुछ काव्य-पुस्तको की मैं बात नही करूँगा कि उनके कितने सस्करण निकल चुके हैं लेकिन सम्पूर्ण खडी बोली काव्य को ध्यान से पढकर मैं बडे विश्वास से कह सकता हूँ कि मधुशाला को इस देश की जनता ने जितना पढा है, जितना उससे रस लिया है उतना शायद दूसरी किसी काव्य कृति के बारे मे सच नही है। मुझे कई परिचितो से पता चला है कि मधुशाला के पजाबी, मराठी, बगला, पर्शियन और अन्य कई भाषाओ मे अनुवाद किए जा चुके हैं। खडी बोली की सम्भवत किसी अन्य काव्य कृति को इतनी रुचि से बच्चो, नवयुवको और उनसे भी बडी उम्र के लोगो ने इतना नही पढा जितना मधुशाला को पढा है। बी० ए० एम० ए० आदि की परीक्षाओ को पास करने के लिए *खडी बोली के अन्य श्रेष्ठ कवियो, गुप्त जी, प्रसाद जी, पत जी, निराला जी,* महादेवी जी आदि को पढना तो जरूरी हो जाता है। बच्चन यहाँ ज़रूरी नही हैं। पर मुझे तो उनकी कविताए पढकर ऐसा महसूस होता है कि जो ज़िन्दगी के इम्तहान मे शामिल होता रहता है वही उन्हें पढता है। उनकी मधुशाला जनता अब तक अपनी स्वतन्त्र रुचि से ही पढती आई है। और उसके प्रति यह कामना करना भी शुभ है कि वह कभी कोर्स मे न लगे।

'मधुशाला' के सम्बन्ध मे स्वय उसके कवि द्वारा लिखे-कहे गए मैंने कई किस्से जाने है। इधर उनके समवयस्क कवि बधु या उनके प्रशसक प्राय लेखो या कवि सम्मेलनो मे 'मधुशाला' के प्रथम सस्वर-पाठ की याद दिलाते हैं जो दिसम्बर १९३३ मे काशी विश्वविद्यालय मे हुआ था। प्राय दोहराया जाता है कि तबसे अब तक मधुशाला का नशा वैसा ही है, कि वह गहरा होता गया है, कि मधुशाला मध्यवर्ग की नवयुवक पीढी की चीज है। इसके साथ ही सन् १९३४ और ३६ और इसके उपरान्त भी समय-समय पर बच्चन की मधुशाला का जो उपहास, उसकी जो उपेक्षा भर्त्सना और प्राध्यापकीय पडिताऊ-आलोचना पत्र पत्रिकाओ मे होती रही है उसे भी *मैंने थोडा-बहुत पढा सुना है। लेकिन मुझे यहा आग्रह-दुराग्रह की बात अधिक* लगी है। 'मधुशाला' की लोकप्रियता के प्रति इस प्रकार की धारणाओं का पनपना मुझे अधिक अस्वभाविक भी नही लगता। लेकिन पिछले १०-१२ वर्षो मे मधुशाला *को कई बार पढकर और कवि मुख से सुनकर मेरे मन में कुछ प्रतिक्रियाएं उठी* हैं। मधुशाला की लोकप्रियता के सम्बन्ध मे जब जब मैंने सोचा है तब-तब एक प्रश्न उभरा है कि 'मधुशाला' की लोकप्रियता का रहस्य कवि के कठ मे है या उसके

कवित्व मे ? और इसका उत्तर मुझे अपने मन से यह मिला है कि कविता महज कान की करामात पर नही ठहर सकती। कवि का कठ कुछ देर धोखा तो दे सकता है और कुछ लोगों को दे सकता है। पर कविता की लोकप्रियता तो उसकी ही शक्ति से उत्पन्न होती है और वह शक्ति है विदग्धता !

कविता की लोकप्रियता के साथ ही, जिसका मूल सम्बन्ध मेरे विचार से उसकी विदग्धता से है, उसकी नित्यता अर्थात् स्थिर बनी रहने की बात भी उठती है। कोई राग, कोई गीत या कोई ललित सृजन कई बार के रसास्वादन के उपरांत अपनी रोचकता-रसमयता खोने लगता है। मन की 'मोनोटोनी' एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। लेकिन जो कविता और पुरानी होकर भी और नशीली होती जाये उसकी नित्यता पर हमे कुछ सोचने के लिए सजग होना पडेगा। अब 'मधुशाला' की रचना हुए काफी समय बीत गया है। लेकिन कभी वे जो आज की नवयुवक पीढ़ी के पिता थे, और जिनमे लेखक के पिता भी एक थे, मधुशाला की प्रशसा के पुल बाँधा करते थे उनकी नवयुवक पीढी भी मधुशाला मजे से पढती-सुनती हैं। और मजा यह है कि आज की नई उगती, खिलती, खेलती सन्तान भी मधुशाला पढती-गाती है जिसमे लेखक के घर की एक बाल-पीढी भी शामिली है—यामिनी, पूनम, आलोक, अश्विनी-अमिम आदि। ये बच्चे मधुशाला मास्टर जी के आग्रह पर नही पढते गाते। स्कूल मे तो वे मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, पत, निराला और महादेवी आदि की रचनाएँ ही पढते-समझते हैं। जब कभी इन बच्चो को मौज मे मधुशाला पढते-गाते देखता हूँ तो फिर मेरे दिमाग मे वही प्रश्न उठता है कि मधु-शाला की लोकप्रियता का रहस्य कवि के कठ मे है या उसके कवित्व मे ? और मैं अभी इस बच्ची से पूछ कर चुका हू—'मधु-शाला तुम क्यो गाती हो ?' बच्ची हँसकर मौन हो गई है। जैसे उसका मौन ही एक अटपटा उत्तर है कि 'बस अच्छी लगती है ! पर बता नही सकती।' यानी मधुशाला में मन को खीचने वाली कोई अद्भुत शक्ति है। जैसा मैंने पहले कहा, मधुशाला मे 'विदग्धता' है, उसमे कल्पना और भावना का सहज अभिव्यजन है, उसमे मन को मुखरित करने वाली सरल ध्वनि है। मधुशाला की नित्यता के पीछे कोई प्रचार या विज्ञापन का बल नही है बल्कि यह उसका कवित्व-बल ही है जो उसे सरस बनाये है। उसे इस दृष्टि से पढने पर हम उसकी लोकप्रियता के रहस्य को सरलता से जान सकते हैं।

मधुशाला का मूल स्वर मस्ती का है। मस्ती और मधुशाला, इन दोनो को प्रस्तुत सदर्भ मे एक दूसरे का पर्याय भी कह सकते हैं। यह मस्ती, प्यार-जवानी-जीवन की मस्ती है। यह उस दीवाने की मस्ती है जिसकी कामना, वासना, भावना, कल्पना और सभी प्रकार की लालसाओ को वृद्ध समाज ने कुचल दिया है। मधुशाला की मस्ती उस एबसर्ड कवि (हीरो !) की मस्ती है जिसने खैयाम के मदिर-मधुर ससार में विचरण किया है। जो स्वय एक वैसा ही मनोरम ससार रचने को उत्सुक है। लेकिन सपनों का ससार बसाने वाला यह कवि जग-जीवन के सत्य-सघर्ष के अगारों

से झुलसता ही चला गया। और एक दिन मधुशाला से मदिरा लाकर अपनी पिपासा से उसने कहा—

"आज मदिरा लाया हूं—मदिरा, जिसे पीकर भविष्यत् के भय भाग जाते हैं और भूतकाल के दारुण दुख दूर हो जाते हैं। जिसका पानकर मान अपमानो का ध्यान नही रह जाता और गौरव का गर्व लुप्त हो जाता है, जिसे ढालकर मानव अपने जीवन की व्यथा, पीडा और कठिनता को कुछ नही समझता और चखकर मनुष्य श्रम, सकट, सताप सभी को भूल जाता है। आह, जीवन की मदिरा जो हमे विवश होकर पीनी पडती है, कितनी कडवी है, कितनी! यह मदिरा उस मदिरा के नशे को उतार देगी, जीवन की दुखदायिनी चेतना को विस्मृति के गर्त मे गिराएगी तथा प्रबल दैव, दुर्दम काल, निर्मम कर्म और निर्दय नियति के क्रूर, कठोर, कुटिल आघातो से रक्षा करेगी। क्षीण, क्षुद्र, क्षणभगुर, दुर्बल मानव के पास जग-जीवन की समस्त आधिव्याधियो की यही एक महौषधि है। मेरा हृदय कहता है कि आज इसकी तुमको आवश्यकता है। ले, इसे पान कर, और इस मद के उन्माद मे अपने को, अपने दुखद समय को और समय के कठिन चक्र को भूल जा। ले, इसे पी, और इस मधु से अपना जीवन नवोल्लास, नूतन स्फूर्ति और नवल उमगो से भर। उफ, किसे ज्ञात है कि यह दूसरो को मदोन्मत्त कर देने वाला स्वय कितने अवसादो का पुंज है। किसे मालूम है कि दूसरो को शीतलता प्रदान करने वाला स्वय कितनी भीषण ज्वाला मे दग्ध हुआ करता है।"

कवि के इस वक्तव्य का एक एक शब्द 'मधुशाला' के सृजन की प्रेरणा के आधारभूत तथ्यो सत्यो की ओर इगित कर रहा है। इस वक्तव्य के पीछे जीवन की जो बाह्य आतरिक घुटन है, स्वच्छदता के लिये मन की जो छटपटाहट है, जो मदिरा जनित क्षणिक-सुख को ही प्राप्त करते जाने की तीव्र लालसा है, धार्मिक सामाजिक रूढ़ आचार विचारो के प्रति जो बलवता हुआ बागी विद्रोह है, उसी मे निहित मधुशाला की कवित्व शक्ति का रहस्य हाथ आता है। मधुशाला पढते समय या उसके प्रति कोई निर्णय देते समय हम जब यह भूलते हैं तभी अनर्थ या अन्याय कर जाते हैं।

× × ×

'मधुशाला' को हिन्दी काव्य की कोई महान उपलब्धि कहना समझना भूल होगी। 'मधुशाला' मे न 'कामायनी' जैसा कवित्वमय मनस्तत्व है, न 'साकेत' जैसा विविध छदो कवित्व कौशल, न निराला-काव्य जैसा निरालापन, न 'पल्लव' जैसा प्रकृति-वैभव, न 'दीपशिखा' जैसा कल्पना पीडा-रहस्यमय रागत्व और न 'ऊर्वशी' जैसा प्रचण्ड वेग। इतना सोचकर भी मैं यह सोचने को मजबूर होता हूँ कि 'मधुशाला' में ऐसा क्या है जो जनमन को इतना अच्छा लगता है कि आए दिन मधुशाला के नये सस्करण छपते रहते हैं? इसी धुन मे मैंने मधुशाला को अनेक बार पढा है। मैंने अपने कई जागरुक मित्रो से मधुशाला के प्रति व्यक्तिगत प्रतिक्रियाए भी प्रकट करने का अनुरोध किया है। मधुशाला के अच्छी लगने के बारे मे कुछ मिलते जुलते से मत भी मुझे मिलें हैं और बहुत से ऊल जलूल भी! मधुशाला अच्छी लगने के बारे मे

कुछ मिलते-जुलते-से मत इस प्रकार हैं—

१ मधुशाला में सरल शब्दावली (यानी पदावली) है।

२ मधुशाला के भावों को समझने मे कोई कठिनाई नही होती।

३ मधुशाला मे मस्ती और अल्हडता खूब है।

४ मधुशाला की शब्द-योजना मे एक स्वाभाविक सगीत ध्वनि का आकर्षण है।

५ 'मधुशाला' की रुबाइयो की अतिम पक्तियो म कुछ ऐसा जादू होता है जो मुग्ध कर लेता है।

इन साधारण मतो से यह स्पष्ट होता है कि जनता इस कृति के सहज गुणो को समझती है और यह भी कि उसमे सरल शब्दो और भावो का समन्वय है तथा सहज संवेद्यता है और मस्ती अल्हडता तथा मनोरजन का आलाप मिलाप तो वहाँ है ही। अगर काव्य को हम गम्भीर दर्शन का सहोदर ही मानकर न चलें तो 'मधुशाला' के प्रति काव्य रसिको की यह प्रतिक्रिया भले ही विश्वविद्यालयो के अध्यापक आलोचको को मान्य न हो लेकिन उसकी महत्ता को यो ही तो नही झुठलाया जा सकता।

'मधुशाला' के कवित्व के प्रति मेरी अपनी एक विशेष प्रतिक्रिया है। और मुझे आश्चर्य न होगा यदि वह बहुतो की भी हो। 'मधुशाला' की मूल शक्ति समाज, धर्म और राजनीति की रूढि-सीमा को तोडने वाली अभिव्यजना मे समाई है। और ऐसा क्यो नही हुआ कि बच्चन 'मधुशाला' के स्थान पर 'साकेत' जैसी कोई कृति लिखते? बच्चन नामक मध्यवित्त परिवार का एक भावुक नवयुवक अनायास वाणी का प्रसन चुनता है। वह कवि बन जाता है। इस नौजवान कवि के घर मे मध्यकालीन अनेक मर्यादाएँ हैं। वहाँ नारी के लिये परपुरुष का साया पडना भी महापाप माना जाता था। इधर घर से बाहर, इस बीच, स्वतत्रता-सघर्ष का जोर था। तब देश म मुसलमानो के बीच मदिर मस्जिद सम्बधी साम्प्रदायिक दगे हो रहे थे। अँग्रेजी भाषा, साहित्य और धर्म का भी प्रचार प्रसार हो रहा था। लेकिन इन सबके विरुद्ध नवयुवक पीढी जो कुछ जोश-खरोश दिखलाती थी वह सब घर, परिवार, समाज और सरकार के कठोर प्रतिबधो के कारण ठडा पड जाता था। उसके स्थान पर भावुक हृदयों मे एक कुण्ठा और बलबलाहट मचलती रह जाती थी। बच्चन का तरुण कवि, सक्षेप मे, इस दमघोटू वातावरण मे मुखरित हुआ। छायावादी अन्य कवि भी इस विषम वातावरण मे अपनी वाणी व्यक्त कर रहे थे, भले ही वे इस पार के सघर्ष से डर कर उस पार, और वहाँ के अज्ञात प्रियतम तथा प्रकृति की कल्पना द्वारा युग अकुलाहट से मन को मुक्त कर रहे थे। लेकिन बच्चन का स्वर इस पार का ही स्वर था। 'उस पार' उसे 'क्या होगा' का भ्रम सताता था। उसका तारुण्य चाहता था कुछ नया-नया दरस-परस! लेकिन मध्य युगीन मर्यादाएँ उसकी जैविक आकाक्षा पर गहरी चोट करती थी। वह चाहता था अपने मन की मुक्ति और तृप्ति! तब रूढि तथा आदर्शों को कुचल कर यथार्थ मे यह सम्भव भी नही लगता था। बच्चन के कवि

ने अँग्रेजी साहित्य-दर्शन का अध्ययन किया था। बूढे खैयाम की हस्ती मस्ती से उसका मन-मस्तिष्क लबालब भरा हुआ था। फलस्वरूप, उसने वाणी का विद्रोह जगाया। यह विद्रोह उस व्यक्ति-कवि का विद्रोह था जो तत्कालीन समाज की रूढियों और मर्यादाओं को तोडकर प्रेयसि के साथ बेफिक्री से गाना चाहता था—

"ग्रस्त हुआ दिन मस्त समीरण
मुक्त गगन के नीचे हम तुम !

(मिलनयामिनी)

लेकिन उस समय यह सम्भव नही हो पाया। उसकी एक प्रतीकात्मक प्रतिक्रिया वाणी के व्याज से व्यक्त हुई हैं, यही मधुशाला है। ऐसी दशा मे 'साकेत' जैसी कृति मधुशाला का कवि लिख ही नही सकता था। जो मधुशाला मे मदिरा नामधारी द्रव देखते हैं उनमे और एक मदिरापायी मे शायद कुछ ही फर्क रह जाता है। निश्चय है कि 'मधुशाला' मे भट्ठी की शराब नही है, भावना की हाला है।

'मधुशाला' की पूर्ण कवित्व शक्ति सिर्फ सरल भावो या चित्र विधायक शब्द-योजना में नहीं है। उसकी मूल शक्ति उस नई, नवयुवक और महत्वाकांक्षी पीढ़ी के मन मे समाई होती है जो परम्परा, पाखण्ड, थोथे आदर्श, कर्म-कांड, क्रूर राजनीति तथा खोखली नैतिकता के विरुद्ध विद्रोह करना अपना दायित्व समझती है।

संक्रांति कालीन युग-वातावरण तथा मध्यकालीन जर्जरित आदर्शों एव विघटित मूल्यों-मान्यताओ के ऐतिहासिक परिवेश तथा परिप्रेक्ष्य मे मधुशाला मे विकासवान व्यक्ति-मन की मुक्ति या स्वच्छदता की पिपासा की एक दुर्दमनीय रागात्मक चीत्कार 'रिकार्ड' है, जो धार्मिक तथा सामाजिक खोखली धारणाओ को चुनौती देकर नयी पीढ़ी को नई अदा से सदा अपनी ओर बरबस खीचती रहेगी। मधुशाला वस्तुत' मस्ती मादकता की प्रतीक पीठिका है। और मस्ती-मादकता के बिना भी कभी यौवन यौवन कहलाने की जुर्रत करेगा ? इसकी कल्पना कौन करेगा ! यौवन के प्रत्येक उल्लास, अवसाद तथा प्रणय-सघर्ष के पीछे मस्ती-मदिरा की ही प्रधान होती है।

'मधुशाला' की भाषा-शैली और उसके अन्तर मे निहित भावान्दोलन का प्रभाव 'पियक्कडो' पर पडा हो, इसके लिए पूरा सन्देह या इन्कार भी किया जा सकता है। पर उससे नि सन्देह देश भक्तो और स्वतन्त्रता सग्राम के सेनानियों और बलिदानियों ने अपने मानस-क्षेत्र मे एक नई क्रान्ति, प्रेरणा एव ऊर्जा का तीव्रता से अनुभव किया था। स्वतत्रता-सग्राम के अमर सेनानी-बलिदानी देशभक्त पडित रामप्रसाद 'बिस्मिल' रचित 'आजादी की मधुशाला' की ओर मैं आपका ध्यान खीचना चाहूँगा—

"हटा न मुल्ला और पुजारी
के दिल से पर्दा काला
कभी न मिलकर पीने देते
ये आजादी का प्याला
छुरी, कटारी चल पड़ती है

जरा-जरा-सी बातों पर
मन्दिर, मस्जिद आज बने हैं
माई, नाई की बधशाला।

× × ×

दूर फेंक दो तुलसी दल को
तोड़ो गंगाजल प्याला
दुआ, फातिहा, दान पुण्य का
मरे नाम लेने वाला
मेरे मुंह मे अरे डाल दो
एक उसी सतलज का घूंट
जिसके तट पर बनी हुई है
भगतसिंह की बधशाला।

(बधशाला)

उक्त उद्धरणों को ध्यान मे रखकर 'मधुशाला' की लोकप्रियता और उसकी 'गुह्य-शक्ति' पर विचार करके कुछ सहज परिणाम निकाले जा सकते हैं जिन्हें आज के जागरूक पाठक-वर्ग को बताने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

और मधुशाला अथवा मदिरा को समाज के खोखले आदर्श अथवा आडम्बर विधान के विरुद्ध युद्ध प्रतीक रूप मे यदि माना जाय तो उसके मूल मे एक व्यक्ति (कवि) की व्यक्त आसक्ति, उसकी अस्मिता की ही प्रतिध्वनि कही जानी चाहिये।

और मधुशाला की सर्जना पर जब जब मैं कुछ सोचने लगता हूँ तब तब इस पद पर केन्द्रित हो जाता हूँ—

कुचल हसरतें कितनी अपनी
हाय, बना पाया हाला
कितने अरमानो को करके
खाक, बना पाया प्याला
पी पीने वाले चल देंगे
हाय, न कोई जानेगा
कितने मन के महल ढहे तब
खड़ी हुई यह मधुशाला ?

मधुबाला

'मधुबाला' कृति यौवन की दबती-उभरती तृषा-तृप्ति की जैसे प्रबल पुकार है। 'मधुबाला' की प्यास-पुकार की ध्वनि तीखी है। उसमें यौवन की प्रणयासक्ति की ज्वाला प्रचण्ड है, उसमें निर्नियन्त्रित आवेग तथा आवेश जन्य स्वर (नारे!) हैं।—

हर एक तृप्ति का दास यहां, पर एक बात है खास यहां

पीने से बढ़ती प्यास यहाँ ·····(मधुबाला)

× × ×

कटु जीवन में मधुपान करो, जग के रोदन में गान करो,
मादकता का सम्मान करो·········(मालिक मधुशाला)

× × ×

हम बिना पिये भी पछताए, पीकर पछताने हम आए
(मधुपायी)

किंतु अभिव्यक्ति में जो पूर्णत होना चाहिये था और जो केवल मस्त की कुछ कविताओं में ही ध्वनित हुआ है, वह है वाणी पर सयम। 'मधुबाला' की प्रारम्भिक पाँच रचनाओं का काव्याभिव्यजन वाणी के असतुलन का द्योतक है और जिससे पाठक कतराता है। जो वस्तुत किसी कवि-मधुपाई का ही कवित्वसगत अनर्गलत्व प्रतीत होता है। सक्षेप मे, प्रत्येक रचना का पाठक पर अलग-अलग प्रतीकात्मक प्रभाव कुछ ऐसा पडता है—

'मधुबाला' भोगेच्छा रूपी नायिका के रूप में मुखरित होती है जो मधु-विक्रेता (रहस्यवादी के शब्दो मे उसे प्रियतम परमात्मा कह लीजिये) की प्यारी है। मधु के पात्र (जीव कह लीजिये) उस पर आसक्त हैं। प्यालो (सासारिक लागो) का उसके प्रति घोर आकर्षण है। यह यथार्थ ससार जिसे 'जला' देता है 'मधुबाला' उसका स्नेहपूर्वक उपचार भी कर देती है। वह गान-नृत्य निरत है। मानव-जीवन को क्षण-क्षण सुखी बनाने की उसमे अद्भुत क्षमता है। जब वह नहीं थी तब ससार तिमिर ग्रस्त था। सर्वत्र जडता व्याप्त थी। 'मधुबाला ने जीवन का जादू डाला। अत सभी ने उसका जय जयकार किया। जीवन की प्यास की महत्ता-सत्ता बढती गई और तब से अब तक मधुबाला ने ऐसी पिपासा और आसक्ति जगाई है कि स्वप्न का ससार सत्य जगत से कहीं अधिक सम्मोहक हो गया है। यह सब करिश्मा 'मधुबाला' का ही तो है!

यो स्पष्ट है कि इस कविता मे कवि का रूमानी (चाहे तो 'रहस्यवादी' कह लीजिये) दृष्टिकोण मुखरित हुआ है। यहा भाषा मे छायावादीपन है, लेकिन वैसा उक्ति उलझाव नही है। शब्द-योजना ह्रासोन्मुखी है—'बाँका', 'भाँका', 'हर ओर मचा है शोर' आदि प्रयोगो से यह स्पष्ट है।

'मालिक मधुशाला' मे एक ऐसा व्यक्ति (कवि बच्चन) अपनी आवाज उठा रहा है जो जग-जीवन और समाज सम्बन्धी सभी प्रतिबधो को अँगूठा दिखाते हुए मदिरा-मस्ती का सन्देश सुना रहा है। एक अभाव ग्रस्त, कुंठित, दमित, परम्परानुगत, लालसा पीडित पीढ़ी है, जिसके अधिकाश सदस्यो को 'मालिक मधुशाला' ताड़ गया है कि वे मदिरा मस्ती की उत्कट कामना रखते हैं। लेकिन वे विवश हैं। उन्हें

लेकिन भाव-गाम्भीर्य की दृष्टि से यह कविता बहुत छिछली है। मात्र पद ६ और ५ मार्मिक उतरे हैं। कविता मे वाक् सयम सर्वथा दुर्बल है। किन्तु ऐसा कुछ कभी-कभी काव्य-कला का अपरिहार्य तत्व बनकर भी व्यक्त होता है, तब, जब कि व्यक्ति कलाकार थोपी गई मिथ्या-मर्यादाओ के प्रति अपना आक्रोश विद्रोह व्यक्त करने के लिए विवश हो जाता है। मधुबाला की कविताओ मे, प्रतीक रूप मे, मधु-सम्बन्धी उपकरण इसी आवेश विद्रोह को ध्वनित करने जान पडते हैं। इस दृष्टि से अगली 'मधुपाई' कविता धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, दार्शनिक व आध्यात्मिक दुर्बल पक्षो पर कडा प्रहार करती है। 'मधुपाई' स्पष्ट रूप से यहाँ वे लोग लगते है जो अपने वर्तमान समाज मे सब तरफ पाखडो और आडम्बरो का जाल फैला हुआ देखते हैं। उन्हे केवल एक 'मधुमार्ग' ही ऐसा जान पडता है जो आक्षेप या आपत्तिजनक ही सही पर वास्तविक तो है। जहाँ पुण्य के पीछे पाप नही लगा। जहा सत्य के पीछे धोखा नही लगा है। जहाँ आदर्श के नाम पर अनीति या अति की कथा-व्यथा नही है। जहा केवल व्यक्ति (मधुपाई) की हस्ती-मस्ती है। वही वास्तविकता है। फिर चाहे वह आध्यात्मिक मुक्ति हो या राजनीतिक मुक्ति। इस वास्तविकता को महसूस करके कोई भी मुक्ति सस्ती मिल सकती है। 'मधुपाई' कविता की शब्द-योजना मे छायावादी भाषा-भगिमा के ह्रास का मात्र आभास ही नही मिलता अपितु यहाँ भाषा एक नवीन लोक प्रचलित साँचे मे ढलती हुई प्रतीत होती है। लोक-प्रचलित साँचे-जैसे, 'बस हम दीवानो की टोली, 'दरवाजो पर आवाज लगाने हम गाए' 'खुले खजाने' 'जीवन का सौदा खत्म करें' और 'मिल मुक्ति हमे जाए सस्ती।' आदि .....

कविता के अन्त का पद कवि के इस जागरूक दृष्टिकोण का साक्षी है कि वह मधु-मादकता के अस्तित्व को जीवन मे व्यापक नही मानता। वह तो उसे सपने सा क्षणिक मानता है—"यह सपना भी बस दो पल है, उर की भावुकता का फल है।'

प्रसगवश कहूँ कि 'मधुबाला' की प्रत्येक कविता का अन्तिम पद प्राय प्रभाव-पूर्ण लगता है। वैसे तो बच्चन की अधिकांश कविताओ के अन्तिम पद केन्द्रीय भाव-प्रभाव की दृष्टि से मार्के के उतरे हैं।

'पथ का गीत' मधुमार्ग पर चलने वाले पथिको का गीत है। इसका कवि वह है जो 'जीवन-पथ की श्राति मिटाता' है। जीवन की मधुशाला मे यदि हलाहल भी होगा तो पीने वालो को अपने अस्तित्व पर इतना विश्वास है कि वे उसे भी पी लेंगे। अस्तित्व का यह बीज व्यक्तित्व का वृक्ष है जिसे मधुबाला के कवि ने जान लिया था और जो आगे परिपक्व रूप मे 'मधुकलश तथा 'हलाहल' मे अभिव्यक्ति पा सका है। इसकी विवेचना हम अलग से निबध मे करेंगे।

'सुराही, ऐन्द्रिक सुखेषणा की प्रेरणा ही है। यह एषणा अनादि काल से आध्यात्मिकता के साथ छलना-सी बनकर छलती आ रही है। तमोगुण इसका दास है। रजोगुण इसका स्वामी है। सतोगुण इसका शिकार है। दूसरे शब्दो मे मिट्टी की यह 'सुराही' आदमी की काया ही है। जिसमे जीवन की आकांक्षा व अतृप्ति की

विविध रंगी झलक झलकाने वाली, झिलमिल झिलमिल सी जलती है। किन्तु कवि जानता है कि संसार इसकी क्षणभंगुरता की सूक्ष्म वेदना को नहीं समझता। वह केवल कविता में मधुपान' को प्रचार मात्र ही मानता है। लेकिन कवि जीवन की वास्तविकता तो ये है—

तुमने समझा मधुपान किया
मैंने निज रक्त प्रदान किया
उर क्रंदन करता था मेरा
पर मुख से मैंने गान किया
मैंने पीड़ा को रूप दिया
जग समझा मैंने कविता की [1]

आलोच्य कविता में भाषा बोलचाल की है। प्रतीक रूप में सुराही का कथन जर्जर आदर्शों व आडम्बरों के प्रति विद्रोही व्यक्ति का तीखा स्वर है जिसे 'प्रलाप' कहना शायद अधिक संगत होगा।

इस प्रकार 'मधुबाला' की इन पहली पाँच कविताओं को पढ़कर लगता है कि कवि की इन्हें रचने की प्रेरणा के पीछे व्यक्ति का स्वच्छंदतावादी आवेश प्रधान है। यहाँ मध्यकालीन मिथ्या धर्माडम्बरों, नयी राजनीतिक विषम अवस्थाओं स्थितियों-परिस्थितियों तथा जर्जर सामाजिक प्रतिबद्धताओं, रूढ़ियों, रीतियों नीतियों के प्रति कवि विद्रोह भड़कना चाहता है। यहाँ आकुल, अधीर मन वचन कर्म का असंयम असंतुलन मुखरित हो पड़ा है। और कुल मिलाकर यहाँ कवित्व के व्याज से राग-बुभुक्षित युवक पीढ़ी का अप्रबुद्ध मानसिक असंतोष और एक मुश्त गुबार कवि बच्चन ने व्यक्त किया है। कहना होगा कि मधुबाला की पहली पाँच कविताएँ भाषा और भावना के प्रभावाभिव्यंजन की दृष्टि से साधना जन्य नहीं लगतीं। कवि की अन्य मधु सम्बंधी कविताओं की अपेक्षा ये कविताएँ निसंदेह सस्ती हैं।

मधुबाला की छठी कविता का शीर्षक "प्याला" है। इस कविता से कवि का कवित्व अपेक्षाकृत बल पकड़ता है। इधर की दस कविताओं में कविता संख्या ११ 'पाटल माल' और कविता संख्या १३ 'पाँव पुकार' जहाँ मधुसृजन क्रम में सबसे दुर्बल कविताएँ लगती हैं वहाँ कविता संख्या आठ 'जीवन तरुवर', कविता संख्या बारह 'इस पार—उस पार' और कविता संख्या पन्द्रह 'आत्मपरिचय'—ये चार कविताएँ हिन्दी काव्य जगत की जगमगाती हुई मणियाँ हैं।

'प्याला' क्षणभंगुर जीवन का प्रतीक है। लेकिन यह तो मिट्टी का धर्म है कि जो भी उससे निर्मित है उसे अन्त में अपने में ही समस्मान कर ले। इधर क्रूर काल का कठोर कर्म है विनाश करना। धर्म, अधर्म, पाप, पुण्य और मन्दिर-मस्जिद के झमेले से क्या बनता बिगड़ता है?—

मैं देख चुका जा मस्जिद में, झुक झुक मोमिन पढ़ते नमाज।
पर अपनी इस मधुशाला में, पीता दीवानों का समाज।

यह पुण्य कृत्य, यह पाप कर्म,
कह भी दूं, तो दूं क्या सबूत !
कब कचन मस्जिद पर बरसा ?
कब मदिरालय पर गिरी गाज ?
यह चिर अनादि से प्रश्न उठा,
मैं आज करूंगा क्या निर्णय ?
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन मेरा परिचय । (प्याला)

क्षण भगुर जीवन मे इन सब झमेलो मे पडने की क्या आवश्यकता है ? जीवन जितना भी है, जैसा भी है सुख भोगने के लिए है—

आनन्द करो यह व्यग मरो,
है किसी दग्ध उर की पुकार ! (प्याला)

इस प्रकार इस कविता का मूल स्वर निराशामय होते हुए भी जीवन के सुख-भोग के प्रति सीधा रागात्मक अभिव्यजन लगता है। यहां कोई गम्भीर चिन्ता या सुकुमार कल्पना या उदात्त ध्वनि नही है। यहा तन की क्षणभगुरता और मस्ती भरे मन की पारस्परिकता का सम्बन्ध हेतु 'प्याला' बहुत उपयुक्त और समर्थ प्रतीक लगता है। इस प्याले के सहज स्वरो मे जीवन का उन्माद विषाद लुकता छिपता प्रतीत होता है। और इस क्रम मे पाठक कविता पढते पढते विभोर रहता है।

'हाला' शीर्षक कविता मे 'हाला' जीवन म सुख की उद्दाम लालसा की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति कही जायगी। उद्दाम लालसा बाढ आई हुई नदी से कम भयकर नही होती। उसकी शक्तिशाली ध्वनि इन पक्तियो से स्पष्ट है—

उद्दाम तरगों से अपनी,
मस्जिद गिरिजाघर-देवालय ।
मैं तोड़ गिरा दूंगी पल में,
मानव के बदीगृह निश्चय ।
जो कूल, किनारे, तट करते,
संकुचित मनुज के जीवन को ।
मैं काट सबों को डालूंगी,
किसका डर मुझको ? मैं निर्भय !
मैं ढहा बहा दूंगी क्षण मे,
पाखडों के गुरु गढ़ दुर्जय !
उल्लास-चपल, उन्माद-तरल,
प्रतिपल पागल—मेरा परिचय ।

वस्तुत जीवनानुराग के पक्ष मे धार्मिक, नैतिक और सामाजिक पाखडो के प्रति इतना अधिक विद्रोही स्वर मैं इस कविता मे पहली बार पाता हूँ। अस्तित्ववाद

का बीज जैसे यहाँ प्रस्फुटित होता प्रतीत होता है—

लघुतम गुल्लम से सयोजित,
यह जान मुझे जीवन प्यारा।
परमाणु कँपा जब करता है,
हिल उठता नभ मडल सारा।

इसी कविता मे मुझे पहली बार, प्राकृतिक सौन्दर्य की हल्की-सी झलक मिलती है—देखें, पद सख्या ४, ५, ६ । और किसी बूढे आलोचक की खबर इन पक्तियो के द्वारा क्या खूबी से ली गई है—

यह अपनी कागज की नावें
तट पर बाँधो, आगे न बढ़ो
ये तुम्हें डुबा देंगी गल कर
हे श्वेत केशधर कर्णधार !

'जीवन-तरुवर' शीर्षक कविता अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से अत्यत सशक्त और सुन्दर कविता है। यह जीवन का तरुवर स्वय कवि के रचनारत जीवन का प्रतीक है। पहले पद मे जीवन के सुन्दर अस्तित्व को बनाये रखने की स्पृहणीय व्यजना है। दूसरे पद मे 'शिव' अर्थात् कल्याणकारी कर्त्तव्य साधने की व्यजना है। और अतिम पद मे हर प्रकार के सकट-सघर्ष मे जीवन के अस्तित्व को अटल बनाये रखने और आत्म-विश्वास के आनन्द मे लीन रहने की अनूठी व्यजना है। कवि और व्यक्ति बच्चन के जीवन के रचनात्मक पहलू का सहज आभास इस कविता मे सरयत हुआ मिलता है। जीवन और व्यक्ति के अस्तित्व की रागात्मक ध्वनि इस पद मे कभी क्षीण पडने वाली नहीं लगती—

विपदाओं की अधवायु मे
तने रहो, जीवन के तरुवर !
अपने सौरभ की मस्ती मे
सने रहो, जीवन के तरुवर !

"प्यास" शीर्षक कविता मे प्यास मानव की 'तृष्णा' का प्रतीक है। इस कविता मे 'जीवन-तृष्णा' की व्यापक व्यजना के लिये बादल, बिजली, सूरज, सर, निर्झर, सरिता, सागर आदि प्रकृति रूपो का सहारा लिया गया है। प्रकृति चित्रण की दृष्टि से पद सख्या ४, ५, ७, ८, अच्छे लगते हैं। किंतु इनमे पंत, महादेवी, निराला और प्रसाद के प्रकृति वर्णन जैसा सजीव सौन्दर्य देखने को नही मिलता। यहाँ वह सामान्य कोटि का ही कहा जायेगा। किंतु तृष्णा की व्यापकता सिद्ध करने के लिये उसमे और कुछ जोडने की गुजाइश भी नहीं है। 'प्यास' शीर्षक कविता की मूल शक्ति लघुमानव की असीम तृष्णा और उसके अनन्त सघर्ष प्रणय के भावो अभावो मे है—

जिस जिस उर मे दी प्यास गई
दी तृप्ति गई उस उस उर मे

मानव को ही अभिशाप मिला
'पीकर भी दग्ध रहे छाती।'

× × ×

मेरी तृष्णा तो मूर्तिमती
परिपूर्ण विश्व की आकांक्षा
मानव अशांति, मानव स्वप्नों
के गायन ही तो हूं गाता
गाऊंगा जब तक एक नहीं
होकर मिलते अपूर्ण प्रणय।

'बुलबुल' शीर्षक कविता में 'बुलबुल' व्यक्ति की अल्हड़ या स्वच्छंदतावादी रागात्मक अभिव्यक्ति का प्रतीक है। इस कविता में प्रकृति वर्णन (देखें, पद दो और छः) और युग का यथार्थ वर्णन (देखें, पद चार और पांच) बड़ा अनुकूल और प्रभावपूर्ण है। इस कविता में कवि की रागात्मक अभिव्यंजना के प्रति बहुत ऊंची आस्था व्यक्त हुई है—"सुरीले कंठों का अपमान, जगत में कर सकता है कौन ?"

इस बुलबुल के कंठ में क्रांति का राग भी है। इस राग से हमें प्यार भी होना स्वाभाविक है। क्योंकि—

हमें जग-जीवन से अनुराग
हमें जग-जीवन से विद्रोह
इसे क्या समझेंगे वे लोग
जिन्हें सीमा बंधन का मोह।'

इस जीवन के रागवाली बुलबुल की तन्मयता अखंड है। न वह निंदा से छीजती है, न प्रशंसा से फूलती है। बस, लीन होकर मुक्त गाते ही जाना उसका लक्ष्य है—

"करे कोई निंदा दिन रात
सुयश का पीटे कोई ढोल
किए कानों को अपने बंद
रही बुलबुल डालों पर बोल।"

पूरी कविता में भाव-तन्मयता है और शब्द-योजना चपल तथा सरस है।

'पाटलनार' कविता इस क्रम की एक दुर्बल रचना है। इस कविता का छठा पद वस्तुतः जीवन का एक मार्मिक एवं भाव संकुल सत्य व्यक्त करता है—

'नयन में था आंसू की बूंद
अधर के ऊपर था मुस्कान
कहीं मत इसको है संसार
दुखों का अभिनय लेना मान

नयन में मोती जल की धार
उर्वलित [illegible] प्राय उपहार

हँसी से ही होता है व्यक्त
कभी पीड़ित उर का उद्गार !

'इस पार—उस पार' शीर्षक कविता कवि की लोक प्रसिद्ध कविता है। 'मधुशाला' के उपरांत इस रचना ने प्रसिद्धि पाई। कितने जानते हैं कि इस लोकप्रिय कविता मे इसके कवि जीवन का कितना आत्मपीड़न चीत्कारता है। पूरी कविता मे इस पार के प्रति सिसकती हुई कितनी आसक्ति है और उस पार के लिये कितना गहरा सताप है। इस कविता मे क्षय ग्रस्त जीवन का विषाद, अपूर्ण सुख भोग के प्रति छटपटाहट, पूर्णभोग के लिये अदम्य लालसा, निर्मम काल, कठोर कर्म और कटु जगत के प्रति घोर चिंता व भय आदि सचारी भावो का ऐसा रेला है कि कविता हृदय को तीव्रता से मथती चली जाती है। छायावादी काव्य ने उस पार के आकर्षण के काल्पनिक उपकरणो से अपने आप को इतना उदात्त बना दिया था कि जग-जीवन के दुख-सुख का सहज स्वर यहाँ नही सुनाई पडता था। सम्भवत यह इसकी प्रतिक्रिया ही हो कि बच्चन ने 'इस पार-उस पार' शीर्षक इतनी लम्बी कविता रची जिसमे रूमानियत भी है, यथार्थ भी, किंतु दोनों एक दूसरे से पोषित। इस कविता मे कवि के जीवन की व्यथा कथा है। कवि ने अपनी मृत्यु का दश सहते-सहते सहसा उससे भी भयकर जीवन का एक दश पा लिया कि वह जी गया और जीवन सगिनी चल बसी, जिसके जीते रहने मे ही कवि के जीवन की सार्थकता थी। किंतु इस रचना मे स्थूल कथा गौण है व्यथा अत्यत मुखर और मार्मिक है। विशिष्टता यह है कि कविता का सम्पूर्ण विषाद भी इतना मधुर लगता है कि पक्तियाँ आपसे आप मुखरित होती है। इस कविता को पढकर पहलीबार यह लगता है कि कवि बच्चन के हृदय मे काव्य-सृजन की आनुभूतिक क्षमता कम नही है।

'पाँच पुकार' रचना इस क्रम मे अधिक समर्थ रचना नही है। उसके अतिम पद मे "यमदूत द्वार पर आया ले चलने का परवाना" पक्ति ध्यान खीचती है। लगता है कहीं कुछ एकदम टूट गया है, छूट गया है। क्या यही पर मधु की मादकता समाप्त हुआ चाहती है? क्या यही सुख-सपनो का आशियाना जड जग-सत्य के क्रूर करो से उजड जाने को है? तभी 'पगध्वनि' शीर्षक कविता पढने को मिलती है। 'मधु' का पिछला अभिव्यजन इस कविता मे गायब होता लगता है। यह 'पगध्वनि' बावरी मीरा के घुँघरू बधे पैरो से प्रसूत ज्ञात होती है। कवि इसे सुनना चाहता है। उसमे कुछ शातिदायक हैं, कुछ तापहारी हैं, और कुछ जीवन का नया सन्देश भी है—

> "हो शांत जगत के कोलाहल !
> रुक जा रो जीवन की हलचल !
> मैं दूर पड़ा सुन लूं दो पल
> यह चाल किसी की मस्तानी।

अतत कवि समझ गया कि उसका रहस्य तो उसके अपने अतर मे ही है, बाहर तो कुछ भी नही है। यह तो एक मनोवैज्ञानिक, अभाव जनित प्रतिक्रिया ही थी जो

उसे पगध्वनि का महसास बाहर हो रहा था—

उर के हो मधुर अभाव चरण
बन करते स्मृति-पट पर नर्तन
मैं हो इन चरणों मे नूपुर
नूपुर ध्वनि मेरी ही वाणी !

यह कविता भावो की त्वरा, सुसम्बद्धता, कल्पना, कोमलकात पदावली और गेयता के गुणो के शुद्ध समन्वय के सौन्दर्य से मंडित है। इसमें कहीं गाँठ नही लगती। इसमे प्रसन्न वाग्धारा का वह मनोरम भाव प्रवाह है जो उच्च कोटि की कुछ ही गेय-प्रधान कविताओ मे पाया जाता है। देखिये —

उन मृदु चरणो का चुम्बन कर
ऊसर भी हो उठता उर्वर
तृण-कलि-कुसुमों से जाता भर
× × ×
उन चरणों की मजुल उँगली
पर नख-नक्षत्रो की अवली
जीवन के पथ की ज्योति भली
जिसका अवलम्बन कर जग ने
सुख-सुखमा की नगरी जानी
× × ×
उन पद-पद्मों के भ्रम रजकण
का अजित कर मत्रित अजन
खुलते कवि के चिर अध नयन
× × ×
उन सुन्दर चरणों का अर्चन
करते आँसू से सिधु नयन
पद रेखा मे उच्छ्वास पवन !

इतनी मुक्त-मनोरम कल्पना और जीवन के राग रस से युक्त कविता मुझे खडी-बोली काव्य मे दूसरी पढने को नही मिली। मध्यकालीन कवियो (विशेषत जायसी) मे इस तरह की इमेजरी खूब पाई जाती है।

'मधुबाला' की अन्तिम १५वी कविता 'आत्म परिचय' शीर्षक से है। इसमे कवि ने अपने काव्य-सृजन के सूक्ष्म हेतुओ का सकेत दिया है। जीवन के अभाव ही जैसे उसके काव्य के माध्यम से मूर्त हुए हैं। अपूर्ण ससार से मुक्ति पाने के लिये वह सपनो का स्वरचित ससार लिये फिरता है। लेकिन उसे फिर भी शाति नही। क्योकि सत्य कठोर होता है। सपने बहुत कोमल होते हैं। कठोर सत्य से टकरा कर जब वे काँच-से टूट जाते हैं तो वह रोता है, फूट पडता है। इसी को लोग गाना या छद बनाना

कहते हैं—

"मैं रोया, इसको तुम कहते हो गाना
मैं फूट पड़ा तुम कहते छंद बनाना
क्यों कवि कहकर संसार मुझे अपनाए
मैं दुनिया का हू एक नया दीवाना।"

स्पष्ट है कि अपने 'आत्म परिचय' मे कवि ने अपने वास्तविक जीवन को महत्ता दी है जिसका अभिव्यजन उसके काव्य का प्राण है।

यह विचार मुझे महत्वपूर्ण लगता है कि मनुष्य अपनी रचनात्मक और विघटक आवश्यकताओं के अनुसार ही जीवन जी पाता है। 'व्यक्ति के मनोविज्ञान' ग्रंथ मे व्यक्त 'इग्नोनोवायला' के इस विचाराप्रकाश मे यदि 'मधुशाला' के कवित्व की प्रतिक्रिया को समझा जाये तो सूक्ष्मत बच्चन के रचनात्मक और विघटक जीवन का—कवि जीवन का—उसके साथ अन्योन्याश्रित सम्बन्ध ध्वनित हुआ लगता है। 'मधुबाला', काव्य-वैशिष्ट्य की दृष्टि से मुझे कोई विशिष्ट कृति तो नही लगी लेकिन उसके प्रतीक दबे घुटे, विद्रोही स्वच्छदतावादी व्यक्तियो के स्वरो का मुखरण करते जान पडते हैं। मधुशाला' जिस समय प्रकट हुई उस समय देश की आजादी के लिये अहिंसात्मक आदर्शोन्मुख सघर्ष के स्फुट परिणामो से कोई आशा नही झलक रही थी। अत भावुक जनमन मे विषाद और विद्रोह के साँप कुडली मारे फन फैलाए बैठे थे। 'अज्ञेय' का 'शेखर' इसी अवधि का है जिसकी विद्रोही व्यक्ति निष्ठा-भावना और लालसा इस प्रसग मे मुझे रह रह कर याद आती है। बच्चन के कवि ने तब मानसिक मुक्ति पाने के लिये 'मधु' के स्वरो का का सहारा लिया। पारिवारिक और व्यक्तिगत विषम परिस्थितियो ने उसे कुछ और तीव्रता प्रदान की। 'मधुशाला' मे यह अभिव्यजन जहाँ अधिक रचनात्मक है, 'मधुबाला' मे ऐसा नही है। 'कलकल छलछल' करती मधु-सरिता का मन्थर-मन्थर प्रवाह जैसा कि मधुशाला मे लगता है वैसा यहाँ नही है, बल्कि यह अभिव्यजन कर्दमयुक्त, भीषण बहाव जैसा है।

'मधुबाला' के भावो का क्षेत्र व्यापक नही है। वहाँ की सारी फसल जैविक तत्वों की है और वह भी अधिक स्वस्थ्य नहीं कही जा सकती।

'मधुशाला' की भाषा बहुत अल्हड है। अत वहाँ जो भी स्वर है वह साफ है, सुलझा हुआ है। उसकी लपेट मे जहाँ भी जीवन का कोई मार्मिक सत्य आ गया है वह मर्मस्पर्शी हो गया है। उत्तरार्ध की कविताओ मे प्रकृति-चित्रण भी भावानुकूल बन पडा है। गीतो मे अानुभूतिक व्यजना शक्ति कितनी प्रभावपूर्ण बन पडी है इसके लिये 'इस पार उस पार' और 'पगध्वनि' रचनाएँ अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं रखती। मुझे तो ये दोनो कविताएँ, रागात्मक दृष्टि से, बच्चन की कुछ श्रेष्ठतम रचनाओ की कोटि मे रखी जाने वाली ही नही वरन खडी बोली की कुछ ही श्रेष्ठतम रचनाओ की कोटि मे रखी जाने वाली लगती हैं।

और कुल मिलाकर मैं 'मधुबाला' को एक 'द्वद्वज काव्य-कृति' मानता हू।

मधुकलश

'मधुकलश' का मूल स्वर लघुमानव मुखरित अस्तित्ववादी अभिव्यजना का स्वर है। 'मधु' का इस कृति मे विशेष वर्णन केवल 'मधुकलश, नाम की पहली रचना मे ही हुआ है। स्वय मधुकलश के सातवें सस्करण मे बच्चन ने कहा है—'मधुकलश' नाम को सार्थक करने वाली तो शायद सिर्फ पहली कविता है—है आज भरा जीवन मुझ मे, है आज भरी मेरी गागर—इसका उचित स्थान सम्भवत मधुबाला के साथ होता......।'

मेरी राय मे यह बिल्कुल सच है। 'मधुकलश' बच्चन के मधुवादी काव्य सृजन-क्रम से एक तगडी छलाग लगाकर अलग हो गया है। उसका महत्व व्यक्ति के स्वच्छद अस्तित्व की अभिव्यजना मे निहित है। 'हलाहल' मे भी ऐसा है। अत मधुकलश और हलाहल कृतियो का साथ-साथ समीक्षण समीचीन हो सकता है।

'मधुकलश' कविता वस्तुत 'मधुबाला' की विशुद्ध मधु सम्बन्धी कविताओ की अपेक्षा अधिक कलात्मक, सगीतात्मक और नैसर्गिक तत्वो से निर्मित है। इस कविता मे, *जीवन मे मधु का भाव कवित्व का रस बनकर नि सृत होता हुआ प्रतीत होता है।* प्रत्येक पद शब्द मे जीवन के रस व उल्लास का रागमय मुखरण प्रकृति के सुकुमार वातावरण मे उसी से अभिप्रेरित होकर हुआ लगता है—

'सर में जीवन है उससे ही
यह लहराता रहता प्रतिपल
सरिता में जीवन इससे ही
वह गाती जाती है कलकल
निर्झर मे जीवन इससे ही
वह झर झर झरता रहता है
जीवन ही देता रहता है
नद को द्रुत गति, नद को हलचल
लहरें उठतीं, लहरें गिरतीं
लहरें बढ़तीं, लहरें हटतीं
जीवन से चचल हैं लहरें
जीवन से अस्थिर है सागर।

इस कविता मे भरा हुआ जीवन-मधु चेतना के मधुमय और रागमय उल्लास का ही प्रतीक है। प्रकृति, जीवन और उल्लास के वातावरण मे हिरनी-सी कुदकती अनुभूति इस कविता को एक अभिनव आकर्षण प्रदान करती है। कवि समझ चुका है कि *जीवन मे हर कर्म का सूत्र काल क्षण के हाथ मे आकर बदल जाता है।* अत —

जीवन में दोनो आते हैं
मिट्टी के पल, सोने के क्षण,

जीवन से दोनों जाते हैं
पाने के पल खोने से क्षण,
हम जिस क्षण मे जो करते हैं
हम बाध्य वही हैं करने को
हँसने के क्षण पाकर हँसते
रोते हैं पा रोने के क्षण।
विस्मृति की आई है वेला
कर पाय, न इसकी अवहेला
आ, भूलें हास रुदन दोनों
मधुमय होकर दो चार पहर।

कल्पना, सुरा और सपनो के ससार के वास्तविक अर्थ को समझकर कवि जीवन की विवशता और कटुता को भूलने के लिये आज (तब का) जो कुछ कह रहा है उसके कटु सत्य से कौन इन्कार करने का साहस करेगा ? अनुभूति प्रवण सहृदय पाठक के लिये आलोच्य कविता के उल्लास के पीछे लगे जीवन के अवसाद को पहचानना कठिन न होगा। इस कवि की सरस सहज तथा राग सकुल पदावली पूर्व-सृजन की अपेक्षा कुछ विशेष और विकासवान लगती है।

अतत सक्षेप और सार रूप मे कहें कि 'मधुशाला' मे गीत नहीं हैं, रूबाइयाँ हैं। पर इन रुबाइयो मे ध्वनियो तथा प्रतिध्वनियो का आकर्षण विशेष है। शिल्प विधान की दृष्टि से यद्यपि यहाँ ध्रुव अतरादि अर्थात सगीत तत्वो का निर्वाह नहीं है तदपि इनमे गेयत्व प्रधान है। प्रत्येक रुबाई मे एक अनूठी स्वर-लय सगति तथा झकृति है। यहा गीत की आत्मपरकता तथा अनुभूति का रागात्मक उन्मेष है। अत टेक्नीक की दृष्टि से यहाँ शुद्ध गीत विधान न होकर भी उन्मुक्त राग प्रधान है। और इस दृष्टि से मधुशाला को श्रेष्ठ गीतात्मक काव्य की कोटि में रखा जाना ही उचित होगा।

'मधुबाला' मे मादकता के गीत हैं। मधु-मादकता को यहा जिस ध्वनि-वैशिष्ट्य द्वारा (पढ़ें 'पाटल माल' गीत) झकृत किया गया है वह अद्वितीय है। सम्भवत बच्चन को इस नवीन गुण के कारण ही हालावाद' का प्रवर्त्तक कवि कह दिया गया। 'मधुबाला' के गीतो मे कवि ने हाला, प्याला, मधुबाला, सुराही आदि का प्रतीकात्मक प्रयोग कर यौवन की मस्ती हस्ती को पूरी शक्ति से मुखरित किया है। इन कुछ प्रतीकों मे ही जीवन की रगीनियो रगरेनियो का एक नया ही ससार गुजायमान हो उठा है। बच्चन के सम्पूर्ण काव्य मे ही क्या प्रत्युत खडी बोली के सम्पूर्ण गीत-काव्य में इस प्रकार के गीत पहले तथा बाद मे नही रचे जा सके। इन गीतों के प्रतीकों के व्याज से कवि ने जीवन की क्षणभगुरता तथा भोगेषणा का यथाथ मूल्य एव महत्व ध्वनित किया है। 'मधुबाला' के गीतो मे एक आडम्बरी दुनियाँ का तिरस्कार ध्वनित कर कवि ने ऐहिक जग-जीवन की स्वाभाविक सुखेषणा को तीव्रता से वाणी प्रदान

की है। प्रकारांतर से यह तत्कालीन खोखले आत्मदर्शन तथा पोपले सामाजिक-राजनीतिक विधान का वैयक्तिक स्वर में कटु विरोध तथा विद्रोह था। छायावादी चेतना-चिन्ता की काट में इस स्वर ने पैनी-पतली आरी का काम किया—

दूर स्थित स्वर्गों की छाया से विश्व गया है बहलाया।
हम क्यों उस पर विश्वास करें जब देख नहीं कोई आया।
अब तो इस पृथ्वी तल पर ही सुख स्वर्ग बसाने हम आए। (मधुबाला)

निःसन्देह इस प्रकार के स्वर कवि की खामख्याली के कारण नहीं फूटे। इनके पीछे युग-जीवन की भयंकर हलचल की आंधी है—

मेरे पथ में आ आकर के तू पूछ रहा है बार-बार,
क्यों तू दुनिया के लोगों में करता है मदिरा का प्रचार?
मैं वाद विवाद करूँ तुझसे अवकाश कहाँ इतना मुझको।
'आनन्द करो' यह व्यंग भरी है किसी दग्ध-उर की पुकार।
कुछ आग बुझाने को पीते ये भी, कर मत इस पर सशय।
मैं देख चुका जा मस्जिद में झुक झुक मोमिन पढते नमाज।
पर अपनी इस मधुशाला में पीता दीवानों का समाज।
वह पुण्य कृत्य यह पाप कर्म कह भी दूँ, तो दूँ क्या सबूत।
कब कंचन मस्जिद पर बरसा, कब मंदिरालय पर गिरी गाज। (मधुशाला)

एक आदर्शवादी आलोचक कुछ भी कहे पर युग की भीतरी-बाहरी विषमताओं को कवित्वमय वाणी देने में बच्चन के 'मधुकाव्य' ने कमाल किया है। तत्कालीन युग परिवेश में इन कविताओं का लोगों पर भयंकर प्रभाव पड़ा होगा, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। पर इन गीतों में कवित्व का राग खंडित नहीं है। यही इनका स्थिर पक्ष है। (इसके लिए 'इस पार...उस पार' 'प्याला' तथा 'पग ध्वनि' शीर्षक गीतों का भाव-शिल्प सौन्दर्य द्रष्टव्य है।)

'मधुबाला' के गीत लम्बे हैं। पर आश्चर्य तो यह है कि इन लम्बे गीतों में भी भावान्विति, ध्रुव अन्तरा-तुक ताल तथा लयादि का अद्भुत समन्वय है। कहीं पर भावत्वरा एवं तीव्रता ढीली नहीं पड़ी है। अन्य किसी गीतकार कवि के लम्बे गीतों में इस प्रकार की भाव शिल्प सगत एकसूत्रता व सुसम्बद्धता सृजन के उच्च धरातल पर टिकी प्रतीत नहीं होती (इसके लिये मधुबाला के 'पगध्वनि' तथा 'इस पार—उस पार' गीत विशेष रूप से पठनीय हैं।)

'मधुबाला' के गीतों में जीवन-यौवन का उद्दाम स्वर है तथा युग विषमताओं, सामाजिक मिथ्याडम्बरों तथा अत्याचारों के प्रति व्यंग-बाण चलाए गए हैं—

मरवालों ने कब काम किए जग में रहकर जग के मन के
वह मादकता ही क्या जिसमें बाकी रह जाये जग का भय (प्यास)
कहीं दुर्जय देवों का कोप कहीं तूफान कहीं भूचाल
कहीं पर प्रलयकारिणी बाढ़ कहीं पर सर्व भक्षिणी ज्वाल

कहीं नव के अत्याचार कहीं दीनों की दैन्य पुकार
कहीं दुश्चिन्ताओं के भार दबा क्रन्दन करता संसार
परे आओ मिल हम दो चार जगत कोलाहल में कल्लोल
दुखों से पागल होकर आज रहो बुलबुल डालों पर बोल (बुल
इस एक ही अंश में जैसे युग का सारा वैषम्य ध्वनित हो उठा है।
उद्दाम तरंगों से अपनी मस्जिद गिरिजाघर देवालय
मैं तोड गिरा दूंगी पल में मानव के बंदीगृह निश्चय
जो कूल किनारे तट करते संकुचित मनुज के जीवन को
मैं काट सबों को डालूंगी किसका डर मुझको ? मैं निर्भय
मैं उहा बहा दूंगी क्षण में पाखंडों के गुरु गढ़ दुर्जय ! (हा
इन रचनाओं का सृजन वस्तुतः बच्चन ने मानसिक सामाजिक रिक्त उठ
किया होगा। मुख्य बात यह है कि यहाँ जग जीवन के प्रति निषेधात्मक दृष्टिकोण
ही है। मूलतः तो यहाँ सामाजिक जड नियमों उपनियमों एवं पाखण्डों के विरुद्ध वि
व्यक्त है। बच्चन के मधु काव्य में ध्वनित इस दृष्टिकोण को समझे बिना उ
शक्ति को समझना सम्भव नहीं है।

आदर्श और सिद्धान्तों के मायावी जाल से मुक्त होकर हिन्दी के आलोचक
जीवन के सम विषम स्वरों को जब स्वतंत्रता से सुनने समझने का अवकाश होग
शायद इस मधुकाव्य का सही मूल्यांकन हो सकेगा। पर जनता आलोचकीय अ
अखबारी मूल्यांकन से कम प्रभावित होती है। वह कृति पढ़ती है और अपनी
अरुचि बना लेती है। बच्चन के मधुकाव्य के प्रति जनता कभी उदासीन नहीं र
शायद आज भी नहीं है। इसका प्रमाण है इन कृतियों के नये नये संस्करणों का
तर निकलते जाना।

बच्चन के गीतों का सौन्दर्य मांसल बिम्बों एवं सहज ध्वनियों में है।
दृष्टि से उनके मधुकाव्य में एक सम्मोहन व्याप्त है।

मधुबाला के गीतों का विषय सीमित होते हुए भी यहाँ जीवन की पिपासा
राग प्रबल है तथा जीवन की क्षणभंगुरता को ध्वनित करते हुए भी वीत राग
पाव नहीं पसार सका है। मधुबाला के गीतों में मन की मादकता ही जैसे सामा
वर्जनाओं एवं विषमताओं का अंगूठा दिखती हुई गाती है रिझाती है—

जिन्हें जग-जीवन से संतोष उन्हें क्यों भाए इसका गान ?
जिन्हें जग जीवन से वैराग्य उन्हें क्यों भाए इसकी तान
हमें जग जीवन से अनुराग हमें जग जीवन से विद्रोह !
इसे क्या समझेंगे वे लोग जिन्हें सीमा बंधन से मोह
करे कोई निंदा दिन रात सुयश का पीटे कोई ढोल
किए कानों को अपने बंद रही बुलबुल डालों पर बोल (बुल

मादकता के इस राग के कारण ही मधुबाला के गीतों की तान नए का
भावपरक तथा अनूठा है। और इसकी दृष्टि में कोई भी गीत पढ़ा जा सकता है।

मधुबाला की भांति मधुकलश मे भी लम्बे गीत हैं। ये केवल १२ हैं। मधुबाला के गीतो का जैसा शिल्पविधान इन गीतो का भी है। किन्तु विषय की दृष्टि से मधुकलश के गीतो मे मुख्यतः तन्मयता की ताल तथा स्वर लहरी का तार झंकृत होना प्रतीत होता है। मधुकलश के गीत पढते हुए लगता है कि सहसा एक सपनिल समा बदला गया है, कि समाज ने एक सुखी दिल का झंकृत तार एक झटके से खंडित कर दिया है, कि अब उस साज से चिंगारियां फूट निकली हैं। यो 'मधुकलश' सामाजिक परिवेश मे व्यक्ति के अस्तित्व का तीखा भाव-बोध कराता है। 'मधुकलश' के गीतो मे व्यक्ति की मस्ती का नही प्रत्युत उसकी कभी न मिटने वाली हस्ती तथा उसके हौसले का नाद है। मधुकलश अस्तित्व वादी दर्शन का गीतमय रूपान्तर है। उसके गीतो मे गजब की गति है। कहीं कही पर भी भाव राग की गांठ नही पडी है। कवि प्रत्येक मानसिक घात प्रतिघात को द्रुतता, एकतानता एव तन्मयता के साथ ध्वनित करता जाता है। व्यक्ति के निषेधात्मक भाव-बोध को जितनी शक्ति के साथ मधुकलश मे व्यक्त किया गया है उसका अन्यत्र जवाब नही है।

मधुकलश के गीतो मे प्रतीक रूपकादि का भावसगत विशिष्ट प्रयोग हुआ है। सभी गीतो मे सजीव चित्रो की सृष्टि मानसिक पटल पर सहज ही अंकित होती जाती है। मधुकलश मे उस पार वाली दूर की कल्पना के पास जाकर, उसे देखकर उसका पर्दाफ़ाश करने का इरादा ध्वनित किया गया है तथा मानसिक घात प्रतिघातो को रूपायित किया गया है—

संक्षेप मे, विषय की दृष्टि से आदर्शवादी आलोचक इन गीतो पर कई प्रकार के आरोप लगाता है। पर मधुबाला मे ध्वनित मधु अथवा मादकता का सस्ता अर्थ न लगाया जाकर, प्रतीकार्थ लेने से जीवन की तत्वगत सुखोन्मुखी चिन्ता का प्रभावपूर्ण अभिव्यंजन प्रतीत होता है। ऐन्द्रिक सुखभोग जीवन का प्रबल यथार्थ है, उसी तरह जिस तरह दुख भोग। निश्चय ही मधुशाला मे 'सुख' की कोई महान चिन्तापरक अभिव्यक्ति नही हुई है। किन्तु यहाँ वह जिस प्रकार से ध्वनित हुआ है, कवित्व तथा जीवन के दृष्टिकोण से सुन्दर है।

और मधुकलश का 'व्यक्तिवाद' निश्चय ही व्यक्ति के अस्तित्ववादी दर्शन का शक्तिशाली राग बनकर मुखरित हुआ है। सामाजिक मर्यादा के आतंक से आतंकित हो *उसे तुच्छ बतलाकर वस्तुत हम अपनी आत्महीनता की ग्रंथि के आप ही शिकार होने का अपराध करते हैं।*

सारत मधुबाला एवं मधुकलश के गीत व्यक्ति जीवन की साहसिकता, महत्वाकांक्षा तथा दुर्दमनीय सुखैषणा का उन्मुक्त राग मुखरित करते हैं। इस राग के पीछे आधुनिक अभावग्रस्त व्यक्ति की मानसिक हलचलें ध्वनित होती हैं। कवि ने उसका संकेत दे दिया है—

राग के पीछे छिपा चीत्कार कह देगा किसी दिन।
हैं लिखे मधुगीत मैंने हो खडे जीवन समर मे।

(मधुकलश 'पथभ्रष्ट' कविता)

यो बच्चन के सम्पूर्ण काव्य मे रागमय अभिव्यक्ति होती रही है। सूक्ष्मत बच्चन का काव्य जग जीवन के अभाव, तथा उन्माद अवसाद के भावो का ही द्योतक रहा है जिसके कारण वह रूमानी न रहकर जीता-जागता (हाड मास का—पंत जी ने कहा है) प्रतीत होता है। कवि के मधुवादी काव्य के प्रति मध्यवर्गीय पीढी का इसलिये सहज आकर्षण बना रहा है क्योकि उसके हृदय मे वर्जनाओ से विद्रोह करने की छटपटाहट रही और उसे वैसा न करने देने के लिये विवशता की अनेक कठोर शृखलाएँ भी जकडे रही हैं। यह पीढी भ्राति की लीक पर चलने और अंध विश्वासो पर जीने के विरुद्ध विद्रोह करती है। उत्तर-अस्तित्ववादी युग मे समाजी जीवन के नैतिक पहलू की दृष्टि से रूढ निषेध बद्धमूल था। बच्चन का मधुकाव्य उस निषेध पर मुंह चिरा चिरा कर व्यंग कसता जान पडता है। विशुद्ध अधुनातन रूप मे वह तो बच्चन का मधु काव्य आहत पीढी (बीट जैनरैशन) का काव्य है। भले ही आंशिक रूप मे यह सत्य हो। मैं आहत पीढी के विचार-दर्शन *की व्याख्या यहाँ जरूरी नही समझता। सुधी पाठक उसे समझते हैं।*

मेरे विचार से 'मधुकलश' मे आकर वही नाराज युवकों (एंग्री यंगमैन) का काव्य हो जाता है—वही, आंशिक सत्य रूप मे। लेकिन आश्चर्य जनक बात यह है कि आज से तीन दशक पहले ही बच्चन के कवि ने इस प्रकार का काव्य रच डाला था।

और एक वाक्य मे कहूँ तो बच्चन का मधुकाव्य व्यक्ति की बुभुक्षा का काव्य है, *तितिक्षा का कतई नहीं।*

प्रतीक रूप में हाला का प्रयोग

प्रतीक रूप मे हाला का प्रयोग

हाला अर्थात् मदिरा का वर्णन हर देश और काल के काव्य मे किसी न किसी रूप तथा मात्रा मे होता आया है। हाँ भारतीय प्राचीन काव्य मे विशेषत धर्म प्रधान काव्य मे, वह एक सीमा तक ही हुआ है। इस प्रकार विश्वकाव्य म हालावादी काव्य का अपना पृथक महत्व एव आनन्द है। इस सबम विशेष महत्वपूर्ण बात यह है कि काव्य म 'हाला' का प्रयोग प्रतीक रूप मे हुआ है। हाला नामधारी द्रव से मूलत. उसका सम्बन्ध नही है। निश्चय ही काव्य मे हाला का प्रयोग किसी प्रचारात्मक दृष्टि से किया गया सोचना-समझना गलत है। प्रतीक रूप मे हाला के प्रयोग का प्रयोजन काव्यानन्द का द्योतक है। जग-जीवन की आध्यात्मिक और भौतिक भावनाओ को जीवत रूप मे प्रकट करने के लिये काव्य म हाला का प्रतीक अत्यत सशक्त तथा जनमन को प्रभावित करन वाला सिद्ध हुआ, इसम दो मत नही हो सकते।

× × ×

प्राचीन हिन्दी गीत-काव्य म हाला अर्थात् मदिरा का प्रतीक रूप मे प्रथम प्राणवत प्रयोग कबीर ने आध्यात्मिक व रहस्यात्मक रूप म किया है। अन्य सत कवियो ने भी 'हाला' का प्रयोग किया है। मीरा के गीत काव्य मे हाला का प्रयोग 'प्रेम' की मुग्धावस्था के प्रकाशन की दृष्टि से हुआ है। मध्यकालीन वैष्णव कवियो ने हाला का प्रतीक गृहण नही किया। आगे रीतिकालीन कवियो के काव्य मे इतस्तत. 'हाला' का जिक्र आया है, किन्तु वह साधारण कोटि का है।

खडी बोली काव्य मे 'हाला' का प्रतीक एकदम उभर कर आता है। द्विवेदी काव्य के उत्तरचरण मे हाला विषयक अनेक कविताए कवियो ने उत्साह के साथ रची है। इस काल के सर्वाधिक सशक्त महाकवि मैथिलीशरण गुप्त ने खैयाम की रुबाइयो का अनुवाद प्रस्तुत किया। छायावादी कवि श्री सुमित्रानन्दन पत ने भी 'मधुज्वाल' लिखी जिसमे खैयाम की रुबाईया का गीत रूपान्तर किया गया है। गीत-सृजन की दृष्टि से इससे भी महत्वपूर्ण मौलिक सृजन छायावादी कवियो, जयशकर प्रसाद, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन और आगे भगवतीचरण वर्मा का है। प्रसाद जी ने 'हाला' विषयक गीतमय उद्‌गार व्यक्त किए है। माखनलाल चतुर्वेदी ने भी अनेक स्थलो पर 'हाला' को प्रतीक रूप मे ग्रहण किया है। नवीन जी तथा भगवती-चरण वर्मा तो हालावादी प्रतीकात्मक अभिव्यजना के उन्मुक्त गायक हैं। इधर महादेवी वर्मा ने छायावादी काव्य के अन्तिम चरण और उत्तर छायावादी काव्य के आरम्भिक चरण के सधिस्थल पर ठहरकर 'हाला' के प्रतीक को उदात्त शृगारिकता-रहस्यात्मकता

प्रदान की। उसमें सूफियानापन एवं श्रृंगारिक भावना का अनूठा समन्वय प्रतीत होता है। निराला ने भी हाला प्रतीक का प्रयोग उन्मुक्त श्रृंगार भावना को व्यक्त करने के लिए किया है। इस प्रकार पूर्व छायावादी और छायावादी कवियों ने प्रतीक रूप में हाला का प्रयोग किया है। सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो पता चलता है कि यहां तक हाला का प्रतीक प्रयोग अधिकतर कवि की शृंगारिक रुचि रस की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति करने के प्रयोजन से हुआ है। उसकी दो भंगिमाएं हैं—१ रहस्यात्मक २ भौतिक। इन दोनों भंगिमाओं की प्रधान प्रतिक्रिया प्रतीत होती है जग-जीवन के परिवेश और परिग्रह में मन की उन्मुक्त शृंगारिक प्रवृत्ति के प्रकाशन में सामाजिक वर्जनाओं विवशताओं और अभावों से टकरा कर व्यक्ति के एकान्त विलास व्यापार की भोगवादी भावनाओं की ध्वनि में जीवन की क्षण भंगुरता के ऊपर क्षणिक आनन्द की पुकार चीत्कार की अभिव्यक्ति में। हाला के प्रतीक ने मनुष्य की रागात्मक अनुभूति की विविध रूपों ध्वनियों तथा बिम्बों में व्यक्त होने का विशेष अवकाश प्रदान किया। पर छायावादी काव्य प्रकृति के वायवी व्यापार का रंगीन बहुनी प्रतीक मात्र बनकर रह गया अतः उसमें 'हाला' की ध्वनि को पर पसारने का पर्याप्त अवकाश न। मिल रहा था। पर जैसा कि हमने ऊपर लिखा है एक भूमिका तैयार हो चुकी थी। मेरी मान्यता है कि हाला का प्रतीक प्रयोग खड़ी बोली काव्य में प्रारम्भ से ही जम पा चुका था। उत्तरछायावादी कवियों ने इसको जी भर कर पोषण किया उसे पुष्ट बना दिया। उनके यौवन का मादक स्वर छायावाद के उत्तरार्ध के कवियों में सर्वाधिक समय गानेवाले कवि बच्चन ने मुखरित किया। उनके प्रतिनिधित्व में इस स्वर की संगति उनके समकालीन अन्य कई समर्थ कवियों ने की है। पर बच्चन के साथ ही पद्मकान्त मालवीय ने भी हालावादी महत्वपूर्ण गीतों की सर्जना की। उनके गीत सर्जना में छायावादी गीत शिल्प से किनारा कसने की प्रवृत्ति तो लक्षित होती ही है साथ ही प्रकृति के स्थान पर हाला का ध्वन्यात्मक प्रयोग करके उन्होंने प्रेम तथा शृंगार को सहज राग के अधिक अनुकूल बना दिया। मेरा मत है कि बच्चन के हालावादी गीत स्वरों के साथ मालवीय जी के स्वरों की क्षमता को भी परखा जाना चाहिए।

× × ×

अदम्य पिपासाओं की क्षण भर कण भर की जैवी तृप्ति की इन गीतों में तीखी ध्वनि सुनाई पड़ती है। इस हालावादी अभिव्यंजना में खैयाम की रुबाइयों में ध्वनित वेदना का स्वर भी गूंजता प्रतीत होता है। पर मूल बात यह है कि यहाँ व्यक्ति के भोगवादी भाव की पूर्ति के लिए सघर्ष का उन्मुक्त स्वर भी ध्वनित होता गया है। खैयाम की बूढ़ी मधु पिपासा यहाँ जवान प्रतीत होती है। अभिव्यक्ति का यही मौलिक अन्तर इस गीतकाव्य को एक नई रूमानियत प्रदान करता है और उसे दार्शनिक चिंता से मुक्त कर काव्य रस के नवीन उल्लास से अनुप्राणित करता जान पड़ता है। यह तो ठीक है कि आलोच्य गीत काव्य में प्रयुक्त हाला का प्रतीक जग जीवन की किसी उदात्त चिन्ता का प्रकाशन नहीं करता किन्तु उसमें यौवनोचित एक मुक्त मुग्ध ध्वनि का विस्फोट है जिसकी लपट से यौवन का स्वर रिक्त भी नहीं रह सकता। इस परिप्रेक्ष्य में हाला का प्रतीक आलोच्य गीत-काव्य को एक विशेष वर्ग के लिए सदा प्रिय बने रहने की अपूर्व क्षमता और अमोघ आकर्षण प्रदान कर गया है।

× × ×

मोटे तौर पर सामयिकता तथा मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया के परिवेश में हाला का प्रतीक रूप में प्रयोग इस गीतकाव्य में निम्नलिखित रूपों में प्रतीत होता है—

१ जग-जीवन की क्षणभंगुरता के प्रतीक रूप में।

२ यौवन की मस्ती व हस्ती के प्रतीक रूप में।

३ सामाजिक धार्मिक व राजनैतिक वर्जनाओं पाखण्डों एवं हलचलों का अतिक्रमण कर एकान्त तन्मयता तथा मानसिक प्रताड़ना के प्रतीक रूप में।

उक्त रूपों में हालावादी गीत काव्य का सृजन हुआ है। आध्यात्मिकता अथवा उस पार की उपेक्षा का संकेत उसका प्रधान लक्षण है। हाला का प्रतीक अपने तात्विक अर्थ में भौतिकवादी है। पर यहाँ उर्दू फारसी काव्य की नियतिवादी चिंता का समावेश बना रहा है। जग-जीवन की क्षणभंगुरता के प्रतीक रूप में जिस 'हाला' की यहाँ अभिव्यक्ति की गई वह भले ही 'ब्रह्म सत्य' की ओर इंगित न करे किन्तु अपने दार्शनिक अर्थ में वह प्रायः 'जगन्मिथ्या' के सत्य की ओर इशारा करती है। जीवन के प्याले में मस्ती की मदिरा पीने पिलाने के घिसे पिटे दर्शनाभास के साथ ही यहाँ जीव की भौतिक पिपासा का राग अत्यन्त तीव्रता से मुखरित हो उठा है।

इस काव्य में हाला जीवन की क्षणभंगुरता के प्रतीक के रूप में जिस ढंग से ध्वनित की गई है वह किसी नवीनता की उपलब्धि तो नहीं मानी जा सकती किन्तु उसकी ध्वनि में यौवन के प्रणय भोग और सघर्ष की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। हाला प्याला मधुशाला मधुबाला साकी तथा सिद्ध (पात्र कात्र) इन प्रतीक-पदों द्वारा खड़ी वाला का आलोच्य गीत काव्य जग जीवन की क्षणभंगुरता के प्रति यद्यपि कोई नूतन स्वर न खोज सका किन्तु इसके साथ ही उसके पीछे तत्कालीन यौवन मन की निराशा का और उस निराशा की कटुता में जीने का उसे भुलाने का तथा क्षण भर मस्त रखने वाला उन्मुक्त भाव स्वर मुखरित होता गया है। नियतिवाद तथा निविड़

निराशा के वातावरण और जग जीवन की क्षणभंगुरता के भावों से ग्रस्त होते हुए भी हालावादी यह नवयुवक कवि वर्ग अपने स्वरों में रूप रंग रस के स्वरों को भंकार देता है। यहाँ हम हाला प्याला मधुशाला व साकीबाला के प्रतीकों की एक ऐसी स्वप्निल गीत सृष्टि में प्रवेश करते हैं जहाँ जग जीवन के मिथ्यात्व का और जड सत्य का अहसास भी होता है और प्रयुक्त प्रतीकों के व्याज से एक भुलावे द्वारा जीव की अदम्य पिपासा का व प्रणय भावना का राग फिर फिर गूँजता है जिसमें रस में फिर फिर डूबने को मन करता है। अत जग जीवन की क्षणभंगुरता के प्रतीक रूप में भी हाला और उससे सम्बंधित अन्य उपकरण जीवन के नकारात्मक अथवा वायवी पक्ष के समर्थन से दूर ही रहे हैं। अत क्षणभंगुरता के प्रतीक रूप में हाला का प्रयोग जीवन के क्षणिक आनन्दवादी भाव रस की भूमिका बना देता है।

× × ×

यौवन की मस्ती हस्ती और पस्ती के प्रतीक रूपों में हाला के प्रयोग अत्यन्त मनोरम और सशक्त बन पडे हैं। मधुप्यास यहा यौवन के रूप शृङ्गार की भगोवादी भावना को ध्वनित करती है। इस मदिरा के नशे में जग जीवन की दुराशा निराशा कटुता असन्तोष और क्षोभ का अन्त होता प्रतीत होता है और उसके स्थान पर उल्लास का एक अनूठा ससार बसता हुआ प्रतीत होता है। यौवन की मस्ती का आयाम बढते बढते जीवन की मस्ती बन जाता है और हाला मधुशाला मधुबाला का राग रस विमुग्ध कर लेता है। यहा हाला जीवन की अजीब पिपासा अजीब उत्सुकता वासना तथा रति लिप्सा की प्रतीक सृष्टि बनकर रसिक को विमुग्ध कर लेती है। हाला से सम्बंधित प्रत्येक उपकरण जडता में जसे जीवन की अदम्य वासना की अभिव्यक्ति करने लगता है। इस नशे में भी हाला की मस्ती और हस्ती सबके लिए न्योछावर होती है—

औरो के हित मेरी हस्ती औरों के हित मेरी मस्ती
मैं पीती सिंचित करने को इन प्यासे प्यालों की बस्ती
आन द उठाते ये अयत्न की भागी बनती मैं साकी।[1]

और प्रतीक रूप में हाला और उससे सम्बंधित उपकरण (मधुशाला मधुशाला प्याला सुराही और पीने वाले) सामाजिक धार्मिक राजनैतिक विषम स्थितियों के सामयिक परिवेश के प्रति तीखी अभिव्यक्ति करते हैं। निश्चय ही हालावादी गीत-काव्य का यह स्वर सामयिक और मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया के परिवेश में अत्यन्त सशक्त सिद्ध होता है जो आलोचकों ने उसकी उपेक्षा की उतना हेय भी नहीं। यहा हाला प्याला मधुबाला और मधुशाला के प्रतीक उपकरण धार्मिक पाखंडों सामाजिक वर्जनाओं तथा साम्प्रदायिक भेदभावों पर आधारित तनावों पर तीखी चोट

१ मधुबाला सुराही कविता बच्चन।

करत जान पडते है। यहाँ व्यग का सौन्दर्य निखर उठा है। यह ठीक है कि यहाँ प्राय अनगलता है और असगत व अपरिपक्व उद्गारो तथा भावावेशो का आतक भी है, बचकानी बातें भी हैं पर जहाँ पूरी शक्ति और ईमानदारी से अभिव्यक्ति उतरी है वहाँ प्रभाव और प्रहार भी अचूक है। हाला विषयक प्रतीको द्वारा प्रकृति के तत्व भी एकदम मासल होकर भावना की ताल पर नाच उठते हैं। अस्तु

× × ×

और कुल मिलाकर आलोच्य गीतकाव्य की हाला अपने प्रतीक रूप मे सामान्य जनमन का एक बार तो अपने उल्लास विषाद और मादकता की सृष्टि म बरबस खीचती है। पर यह भी सच है कि उसमे अधिक विरमे रहना सम्भव नही होता। कारण यह है कि वह जीवन की पूर्णता की ओर इगित न कर केवल क्षणभगुरता की फुलझरी-सी छुटाकर रह जाती है। कुछ इसी कारण हालावादी काव्य का सृजन व्यापक रूप मे न हो सका। बच्चन ने इस दिशा म कुछ श्रेष्ठ रचनाएँ की हैं जो उनकी मधुशाला मधुबाला, और मधुकलश मे सग्रहीत हैं। हाला और हाला से सम्बन्धित प्रतीको की अभिव्यजना की तात्विक विशेषता यह है कि यहाँ कुछ ऐसा है जो धर्मदर्शन अथवा वैराग्य भाव से ग्रस्त न होकर एकदम स्वस्थ्य है तथा जीवन के ऐन्द्रिक आह्लाद को ध्वनित करता है। मेरे विचार से हालावादी काव्य का पूर्ण विकास बच्चन के काव्य द्वारा होकर तदुपरान्त ह्रास की अवस्था को प्राप्त हो गया। यो फुटकल रूप म 'हाला' विषयक भाव-गीत उनके समकालीन अन्य कवियो ने भी लिखे है और अब भी लिखे जा रहे हैं। पर वे अधिकाश खोखले है।

प्रश्न-प्रत्रोत्तर

प्रश्न—१ आपकी जाति-कुल परम्परा का स्रोत क्या है ?

उत्तर—मेरा जन्म प्रयाग के एक कायस्थ परिवार मे हुआ था। हम लोग वैसे अमोढा के पाडे कहलाते हैं। अमोढा बस्ती जिले मे एक गाँव है। वही से हमारे पूर्वज जीविका की खोज करते हुए प्रयाग आए थे। कुछ और परिवार भी आए थे जो प्रतापगढ मे बस गए। हमारे सम्बन्ध उनसे अब तक बने हैं।

प्रश्न—२ आपका शुभ जन्म स्थान तथा तिथि सन् ?

उत्तर – मेरा जन्म प्रयाग मे मुहल्ला चवक मे हुआ था। मेरे जन्म स्थान पर होकर जीरो रोड अब निकल गई है। जहाँ मेरी पढने की बैठक थी वही पर बिजली का खम्भा है। मेरे पिता जी कहते थे—देखो जहाँ तुमने स्वाध्याय साधना की थी उस पर प्रतिरात्रि प्रकाश होता है। उनके उस कथन मे उस घर के प्रति मोह ही अधिक निहित है क्योंकि घर सडक मे आ जाने से वे बहुत दुःखी थे और सडक बन जाने पर भी वे बता सकते थे कि मेरे घर के विभिन्न कोने रसोई पूजा के स्थान आदि कहाँ-कहाँ थे।

प्रश्न—३ आपके पिता जी और माता जी का शुभ नाम ? उनके स्वर्गवास का समय ? उस समय आपके परिवार मे कौन-कौन लोग थे ?

उत्तर—मेरे पिता जी का नाम प्रताप नारायण था, शायद पहले नारायण ही नाम रखा गया था। स्कूल मे नाम लिखाने गए थे तो मास्टर ने इस नाम को आधा बताया और पूरा नाम प्रतापनारायण धर दिया गया। पिताजी के बडे-बूढे उन्हे नारायण ही कहते। मेरी माता का नाम 'सुरसती' था। यह है तो 'सरस्वती' का अपभ्रंश, पर मैं उन्हे 'सुरसती' ही मानता रहा हूँ। 'सुर' और 'सती' से मैंने कुछ मनोनुकूल अर्थ ले लिया है। 'आरती और अगारे' की कविता मे इसका सकेत है। मेरे पिता जी का देहावसान १९४१ मे माता जी का १९४८ मे हुआ।

शेष बातें फिर कभी।

बच्चन १५-२-६१।

प्रश्न—४ आपका स्व० श्यामा जी के साथ पाणिग्रहण सस्कार कब और किस अवस्था म हुआ ? अवस्था से मेरा आशय परिस्थितियों से है।

उत्तर—श्यामा जी से मेरा विवाह मई १९२६ म हुआ था। विवाह के समय मेरी अवस्था १८ वर्ष की और उसकी १४ वर्ष की थी। विवाह तो हमारे माता-पिता ने तै किया था, मैंने एक मित्र के कहने पर स्वीकृति दी थी। श्यामा के पिता बाई के बाग मे रहते थे—वे हाई कोर्ट मे अनुवादक के पद पर काम करते थे।

रहने वाले वे अनूपपुर के थे जो सिरायू तहसील मे एक गाँव है। मैं एक बार अपनी सुसराल के गाँव भी गया था। पति के नाम लेने की तो शायद सारे हिन्दू समाज मे प्रथा नही। मेरे परिवार मे पत्नी का नाम लेने की भी प्रथा नही थी। मुझे अब तो याद नही कि कब कैसे हमने यह निर्णय किया कि मैं उसे Joy कहूँ और वह मुझे Suffering कहे। हम जब अकेले होते तो इसी नाम से एक दूसरे को सम्बोधित करते। मत्यु शैया पर वह मुझे उसी नाम से याद करती गई—शायद ही कोई और समझा हो कि वह क्या कह रही है। उसकी मत्यु १६ नवम्बर १९३६ को हुई। वह कभी माँ नहीं बनी।

प्रश्न—५ आपकी सबसे पहली लिखी कविता कौन सी और किस समय की है? क्या उस कविता के सृजन का कारण कविता जगत की बाहरी स्थिति थी या आपने अपनी ही अन्त प्रेरणा से उसे लिखा था?

उत्तर—मैंने पहली कविता जिसे किसी अर्थ मे कविता कह सकते हैं १९२० मे लिखी। एक अध्यापक के विदा भिनन्दन मे। उसकी चर्चा मैंने कवियो मे सौम्य सत' में किसी निबन्ध मे की है। वह कभी प्रकाशित नही की गई, केवल एक बार सुनाई गई थी, मुझे आश्चर्य हुआ कि बहुत वर्षो बाद मेरे सहपाठी को जो उस समय वकालत करता था, उसकी कुछ पंक्तियाँ याद थी। उसकी पहली पंक्ति—

'दीन जनो के पास नही हैं,
मणि मुक्ता के सुन्दर हार।"

अंतिम पंक्ति थी—

"इसीलिए हम इनमे अपना,
हृदय बाँध कर देते हैं—
इनमे—यानी फूल मालाओ मे।
समाप्त करता हूँ।

बच्चन १७-२-६१।

प्रश्न ६—मेरे प्रथम प्रश्न के समाधान मे आपने जो "वैसे अमोढा के पाँडे" कहा है, इससे क्या यह समझना ठीक होगा कि आपका कायस्थ घराना होकर भी उसमे ब्राह्मण कुल की भाँति पूजा-पाठ आदि की परम्परा का अधिक परिपालन होता होगा-यानी कुल से कायस्थ पर कर्म से ब्राह्मण? क्यो, क्या मेरा अनुमान कुछ ठीक है या नही?

उत्तर—'अमोढा के पाँडे' लोगो के सम्बन्ध मे एक जनश्रुति है लम्बी चौडी। कभी मिलने पर बताऊँगा। तुम्हे जानकर कुछ कौतूहल होगा कि राष्ट्रपति (स्वर्गीय राजेन्द्रप्रसाद जी) भी अमोढा के पाँडे हैं—इसकी चर्चा उन्होंने अपनी आत्मकथा में की है। मधुशाला के ११वें संस्करण का परिशिष्ट भी देखना।

प्रश्न ७—मेरे दूसरे प्रश्न के अनुसार, क्या आपकी पुस्तकों मे दिये 'लेखक परिचय' मे दी गई आपके जन्म की तिथि व सन् सही है—२७ नवम्बर १९०७?

उत्तर—जन्म तिथि जो मेरे लेखक परिचय मे जाती है ठीक है।

प्रश्न ८—मेरे प्रश्न तीन के अनुसार कृपया बताएँ कि आपके माताजी और पिताजी के स्वर्गवास के समय कौन कौन परिवार मे मौजूद थे ? मतलब है भाई बहिन या अन्य। आरती और अगारे मे जसा आपने संकेत किया है—'चार बहनो भाइयो के बीच केवल एक मैं बाकी बचा हू। काल का उद्देश्य कोई पूर्ण करने को गया शायद रचा हूँ।

उत्तर—पिताजी की मृत्यु के समय माँ एक बहन एक भाई मौजूद थे। बाद को मा फिर बहन और अन्त म भाई का देहावसान हुआ। मुझसे बडी केवल एक बहन थी जिसका देहावसान पिताजी के सामने हो गया था। बाकी सब मुझसे छोटे थे। उन सब बातो को लिखते-याद करते मन को बहुत दुख होता है।

प्रश्न ९—सचमुच नारायण और सुरसती के सयोग से आप जसे वाणी सुत का जन्म सार्थक होना ही था। ऐसा आरती और अगारे की 'ललितपुर को नमस्कार और जीभ को तुमने सिखाया रचनाओ से ध्वनित भी है। इन दोनो कविताओ तथा याद आते हो मुझे तुम कविता को पढकर यह लगता है कि आपके सस्कारो को मधुशाला मधुकलश व मधुबाला के रग रस मे न डूबकर भक्ति रस म डूबना चाहिए था। पर आपकी पूर्वकालीन रचनाओ म उसके प्रति उदासीनता ही नही विद्रोह भी है—

> मेरे अधरो पर हो अन्तिम
> वस्तु न तुलसी दल प्याला
> मेरी जिह्वा पर हो अंतिम
> वस्तु न गगा जल हाला
> मेरे शव के पीछे चलने
> वालो याद इसे रखना—
> 'राम-नाम है सत्य न कहना
> कहना सच्ची मधुशाला।'
> ऐसा क्यों ?

उत्तर—मधुशाला के प्रतीको के पीछे बहुत कुछ है। उसके स्थूल रूप को ग्रहण करके कोई भी मेरी मानसिक स्थिति से दूर ही जा पडेगा।

अभी सा० हि० म पंडित राजनाथ पांडे का एक लेख छपा है—कृति म परिवर्तन पर। उसम मधुशाला के विषय मे काफी निकटता से लिखा गया है। उन्होने मधुशाला के एक तत्व को तो शायद पहली बार पकडा है। उसे देखना। कम से कम तुम्हे लेख रोचक लगेगा। हाँ एक तिथि उसमे गलत है। १९३० की जगह १९३३ चाहिए। उससे पूर्व मधुशाला की कोई रुबाई लिखने की स्मृति मुझे नही है। १९३२ का उत्तरार्ध हो सकता है।

प्रश्न-१०—निशा निमंत्रण की रचना—

'था तुम्हें मैंने रुलाया !
हाय ! मृदु इच्छा तुम्हारी !
हा ! उपेक्षा कटु हमारी !
था बहुत माँगा न तुमने किंतु वह भी दे न पाया !"—

को सारी पढ़कर ऐसा लगता है कि आपने श्यामाजी के साथ कुछ विपन्नता और कुछ अपनी उपेक्षा के कारण अपना व्यवहार अवांछित रखा—"एक क्षण को भी सम्हलते क्यों समझ तुमको न पाया ?"

क्या आपके इस व्यवहार के पीछे श्यामाजी में आपकी मनोरुचि के अनुकूल कोई अभाव था—अभाव, जो आपकी रूप रसमई भावना को न भाया हो ! क्योंकि 'निशा निमंत्रण' में ही ६६ वीं० रचना में आपने कहा है—

"दूर न कर पाया मैं साथी सपनों का उन्माद नयन से ! —
मैंने खेल किया जीवन से !"

उत्तर—श्यामा की मृत्यु के बाद ऐसे बहुत से अवसर मुझे याद आये जब मैंने उसके मन के अनुकूल बहुत-सी बातें न की थी। वह जीवित रहती तो शायद वे साधारण होती। पति पत्नी में ऐसे बहुत से मतभेद होते हैं। उसकी मृत्यु के बाद वे छोटी-छोटी घटनायें भी बहुत दुःख दायिनी मालूम होने लगी। उन पंक्तियों के पीछे शायद कोई विशेष घटना मेरे मन में है—पर उसे जानना कविता समझने के लिए आवश्यक नहीं।

प्रश्न ११—पिछले दिनों, ११ जनवरी १९६१ को जब श्री शिवदत्त जी तिवारी के यहाँ आप भोजन पर आये थे तब बातों ही बातों में आपने अपनी आर्थिक विपन्नता के बारे में कहा था '—मैंने जीवन के आर्थिक अभावों से संघर्ष किया है। जब पढ़ता था तब जेबों में चने भरकर ले जाया करता था।'

क्या आप बताएँगे कि आर्थिक संकट का ऐसा कठिन समय आप पर कब से कब तक रहा ?

उत्तर—इस सम्बन्ध में टण्डन जी सम्बन्धी संस्मरण में मैंने लिखा है। उनका अभिनन्दन ग्रन्थ देखना। उसमें मेरा एक लेख है।

प्रश्न १२—मेरे प्रश्न ५ के उत्तर के अनुसार, आपने इस बात का समाधान नहीं दिया कि आपने प्रारम्भ में कविता का सृजन अपनी आन्तरिक प्रेरणा के आग्रह से किया या कविता जगत की बाहरी सृजनात्मकता से प्रभावित होकर—क्योंकि मेरा ऐसा अनुभव है कि प्रायः नवोदित कवि कविता करने की शुरुआत अन्य सिद्ध कवियों के काव्य अध्ययन से प्रभावित होकर करते हैं। पर वाल्मीकि ने जिस तरह 'मा निषाद' क्रौंच वध की आन्तरिक वेदना से उमड़कर छन्द लिखा, शायद उसी प्रकार कई कवियों के अन्तर से रचना फूट पड़ सकती है। आपका इसके बारे में क्या विचार है, और इस सन्दर्भ में अपनी बात मुझे बताएँ।

उत्तर—मैंने जिस पहली कविता की चर्चा अपने पिछले पत्र मे की थी वह तो मैंने अपने अध्यापकों और सहपाठियों के कहने से लिखी थी। मेरे लेखन आदि मे मेरा शब्दाधिकार देखकर ही उन्होंने ऐसा अनुरोध किया होगा। अपने अभ्यास काल की कविताएँ भी मैंने अपनी अन्त प्रेरणा से लिखी थी, किसी कारण उन्हे नष्ट कर देना पडा। कविता पढने और कविता सुनने का अनुराग मुझे प्राय शुरू से था—सस्कार रूप मे ही मुझे यह मिला होगा—और उसने अभिव्यक्ति को अवश्य सहायता दी होगी। ऐसा मुझे याद नही पडता कि कभी मैंने कविता इसलिए लिखी कि और लोग लिख रहे हैं या कविता इसलिए लिखें कि उससे किसी वाद को बल देना है, या हिन्दी की सेवा करनी है या किसी ऐसे ही कारण से। मैं इस तरह कहना चाहूँगा कि शब्दों मे कवि होने के पूर्व मैं जीवन से कवि बन गया था मेरा जीवन कुछ ऐसी अनुभूतियो से टकरा चुका था, कुछ ऐसी भावनाओ से मथित हो चुका था कि किसी प्रकार की अभिव्यक्ति उसके लिए अनिवार्य थी। मेरी प्रारम्भिक नष्ट हुई कविताएँ होती तो कुछ और कहानी कहती। छपी प्रारम्भिक रचनाओ मे भी शब्दो के पीछे जीवन की अनुभूतियो की कुछ ऐसी प्रतिध्वनियाँ है जो अभिव्यक्ति की अपरिपक्वता, अनगढपन मे भी दब नही सकती। उस समय तो मुझे झुँझलाहट होती थी कि मेरी भावनाएँ शब्द क्यो नही बन जाती। मैं स्वभाव से भाव प्रवण था—Too Sensitive। *उन्हे तो अभिव्यक्ति का कोई न कोई रूप देना ही था। शायद काव्य* सस्कार से मैं उन्हे शब्दो मे रूपायित करने लगा। ऐसी अभिव्यक्ति कला मे ही नही जीवन-व्यापारो मे भी हो सकती थी। प्रारम्भिक रचनाएँ पढ लो, फिर मैं बात करूँगा।

'नई कविता' का अक मैं पढ चुका हूँ। साही का लेख उसमे पढना। पत जी ने भी उसकी तारीफ लिखी है। कम से कम 'मधुकलश' के सम्बन्ध मे उन्होंने कुछ नया कहा है।

२५२६१

प्रश्न १३—आपकी भूमिकाओ मे कई जगह पढकर ऐसा लगता है कि स्व० श्यामा जी आपकी काव्य साधना पर अत्यन्त आस्थावान और विश्वस्त रही। जैसा 'मधुकलश' की भूमिका मे 'थुरे जाव" शब्द से लक्षित है और 'मधुशाला' के ११वें सस्करण मे बेनीपुरी जी के "गोली मार देह हैं" वाक्य से। और आपने श्यामाजी की *आस्था तथा विश्वास की भावना को 'आरती और अगारे' की कविता म ध्वनित भी* किया है—

"बोली मुझ पर कोई ऐसी रचना करना,
जिससे दुनियाँ के अन्दर मेरी याद रह।"

तो क्या आप स्व० श्यामा जी के भाव स्वभाव के विषय मे कुछ बताएँगे? इसके साथ ही आपने मेरे प्रश्न १० का पूरी तरह समाधान न देकर सिर्फ यह कह कर टाल दिया कि—निशा निमन्त्रण की कविताओ के पीछे जो श्यामा जी के

प्रति उपेक्षा और अपनी भूल का भाव अभिव्यक्ति है—"उन पक्तियो के पीछे शायद कोई विशेष घटना मेरे मन मे है—पर उसे जानना कविता समझने के लिए आवश्यक नही।"

पर एक जीवन के कवि की जीवन-दर्शी कविता को समझने के लिए उसके मन की विशेष घटना को मेरे विचार से जानना सर्वथा जरूरी है, तभी न्याय हो सकेगा। कृपया सक्षेप मे ही समाधान दें।

उत्तर—श्यामा का जन्म-पालन मध्यवित्त परिवार मे हुआ था। उसकी शिक्षा-दीक्षा सब घर पर ही हुई थी—कुछ ग्राम मे और कुछ नगर मे। सस्कार सुरुचिपूर्ण सुसस्कृत परिवार के थे। विवाह के समय वह बच्ची ही थी। पर उसने मेरे कवि को शायद सबसे पहले पहचाना। शायद वह उस सघर्ष को भी समझ गई थी जो कवि को करना पडता है—अपने अन्दर भी और बाहरी ससार मे भी। इस कारण उसने मुझे हर प्रकार से निश्चिन्त बनाने का प्रयत्न किया। मुझ पर न कभी उसने कोई नियत्रण रखा और न मुझसे किसी प्रकार की माँग की। अपनी बीमारी से वह लाचार थी—पैसा मैं उस पर न खर्च कर सकता था। पर मैंने उसकी जो सेवा-सश्रूषा की उससे मुझे असन्तोष नही था। उसकी प्रत्याशा तो मुझसे कुछ भी नहीं थी। लगभग ९ वर्ष के विवाहित जीवन मे मैंने उसके लिए केवल एक साडी खादी की खरीद कर दी थी जिसे वह बडे गर्व से पहनती थी। जब वह साडी पुरानी हो गई और पहनने काबिल न रह गयी तो उसने बडी हिफाजत से तह कर उसे बन्द कर दिया। यह मैंने उसके मरने के बाद देखा आभूषण के नाम पर एक दिन मैंने मजाक-मजाक मे एक हरे नीम के तिनके से एक छल्ला बनाकर उसे दे दिया था, कहा था—यह लो अँगूठी! उसके मरने के बाद वह अँगूठी मुझे एक लकडी की डिबिया मे बडे जतन से रखी मिली। वह हमेशा इस बात का ध्यान रखती थी कि मेरे कवि के विकास मे वह किसी प्रकार बाधा न बने। पर सच्चाई तो यह है कि मेरे कवि शिशु को बडे जतन से पाला-पोसा। जैसे बहुत लाड प्यार से लडके बिगड जाते हैं शायद उसने अपने वात्सल्य की अतिशयता से उसे निरकुश भी कर दिया—मैं तो कवि ही हू, इसका अवश्य विश्वास लेकर मे जीवन मे बढा, और यह मुझे श्यामा ने दिया।

"था तुम्हें मैंने रुलाया" के पीछे बहुत लम्बी कथा है—मुझे अभी उसे बताने का अवकाश भी नही और उसकी आवश्यकता भी नही। कविता स्वय बोलती है, फिर पढें।

बच्चन
४-३-६१

आपका पत्र मिल गया था। कृपया श्री 'साही' वाले लेख की पत्रिका याद करके मुझे अवश्य दे दें। पढने को बेताब हूँ। अब छोटे छोटे दो प्रश्न। इससे पहले एक बात स्पष्ट कर दूँ कि मैं जिन बातो का समाधान चाह रहा हूँ उनका उपयोग आपके रचना-कर्म के ऐतिहासिक और जीवन व्यापार के सदर्भ मे सही-सही घटाने मे करना

चाहूँगा। क्योंकि आपकी रचना मे केवल व्यक्तित्व है जो घटना चक्र की अनुभूतियों से निखरा बिखरा है। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना भी करूँगा और स्नेहाधिकार से ज़िद भी कि आप मेरे हर प्रश्न का (वह आपको कभी-कभी अजीब भी लग सकता है) साफ समाधान अवश्य दें। इससे आपके विषय मे मेरा Vision निश्चित होगा।

प्रश्न १४—आपकी अपनी बडी बहन जी, उनसे छोटी बहन जी और छोटे भाई साहब (शायद शालिग्राम जी) का निधन समय याद हो तो बताएँ। साथ ही बहन जी का नाम भी।

प्रश्न १५—आपने किस किस सन् मे हाई स्कूल, इण्टर, बी० ए० और एम० ए० किया। आप तो सदा बडे शार्यानिंग रहे होंगे?

उत्तर—मुझे आश्चर्य है मेरा पिछला पत्र नही मिला। उसमे मैंने कुछ विस्तार से अपनी बहनो के बारे मे लिखा था। दोहराना असम्भव।

मेरी बडी बहन का नाम भगवानदेई था। वे मुझसे आठ वर्ष बडी थी। उनका देहावसान २५ वर्ष की अवस्था मे हुआ। विवाहिता थी, एक लडका है।

श्री शालिग्राम जी मुझसे ३॥ वर्ष छोटे थे। उनका देहावसान १९५० मे हुआ। शा० का पुकारने का नाम "रज्जन" था। 'टी शाला' मे यही नाम प्रयुक्त।

उनसे छोटी बहन का नाम शैलकुमारी था। वे मुझसे ५-६ वर्ष छोटी थी। उनका देहावसान सन १९४६ मे हुआ। विवाहिता थी—कोई सतान नही।

मैंने हाई स्कूल १९२५ मे, इण्टर १९२७ मे, बी० ए० १९२९ मे, १९३० मे प्रि० एम० ए० करके छोड दिया था। नमक सत्याग्रह आदोलन के समय। श्यामा के देहावसान के बाद (१९३६) मे, १९३७ जुलाई मे फिर से मैंने पढाई शुरू की थी। १९३८ मे मैंने एम० ए० किया। १९३९ मे बीटी बनारस से। दो वर्ष शोध ११ वर्ष अध्यापकी। ५२ मे कैंब्रिज गया। ५४ मे पी० एच० डी० की।

१९२४ मे हाई स्कूल मे फेल हो गया था। जीवन के एक निजी दुखद प्रसग के कारण। पत जी कविता-मोह के कारण १९१८ मे हाई स्कूल मे फेल हो गये थे। तभी अल्मोडे से बनारस पढने आये थे।

भास्कर जी का फोन आया था। उन्हें दफ्तर से चेतावनी मिली है।

पतजी अस्वस्थ होने के कारण अब २५ की रात को आ रहे हैं।

बच्चन

२३-३-६१

प्रश्न १६—आपका कृपा पत्र मिला। पिछला पत्र डाकखाने वालो ने ही शायद हडप लिया, मेरा दुर्भाग्य!

वस्तुत आपके परिवार वालो की एक के बाद दूसरी मृत्यु ने आपके कवि मानस पर काफी चोट दी होगी। इस प्रकार की अनुभूतियो से आपका

काव्य पूर्ण है। पर मुझे आश्चर्य है कि श्यामा जी की मृत्यु का जितना आपने अनुभूति पूर्ण अभिव्यजन किया है (निशा निमत्रण, एकांत सगीत और आकुल अन्तर मे) उतना भारती और अगारे की उत्तर भाग की कुछ कविताओ मे कही केवल श्रद्धामय शोक प्रकटीकरण को छोडकर—अन्य किसी परिवार के व्यक्ति के प्रति नही किया। श्यामा जी के मृत्यु-शोक का कोहरा आपकी निशा निमत्रण, एकांत सगील और आकुल अतर की रचनाओ मे सीमा पर है—वेदना दुखती आँख की जलधारा के समान मूर्त होती गई है।

ऐसा क्यो ?

प्रश्न १७—पत जी तो कवि मोह के कारण हाई स्कूल मे फेल हुए, ठीक है। पर आप हाई स्कूल मे क्यो फेल हुए ? एक दिन की मुझे याद है कि आपने कहा था "' मुझे तब किसी लडकी से प्रेम हो गया था। नौबत आत्म हत्या तक आ गई थी। पर किसी (शायद हेडमास्टर) महोदय ने साहस दिया। तो आप जैसे रूप- रसमय भाव प्रवण कवि से तब कच्ची उमर मे ऐसा होना कोई आश्चर्य की बात नही—

"कुछ अवगुन कर ही जाती है
चढती वार जवानी।
यहाँ दूध का धोया कोई
हो तो आगे आए।"

प्रणय पत्रिका की इन पक्तियो के अलावा त्रिभगिमा मे 'अमरबेली' कविता मे—

"यह शुरू की ' अल्हड और दीवानी जवानी
जान तुम पर मैं निछावर कर चुका होना कभी का।"
और 'बुद्ध और नाच घर'' की 'शैल विहगिनी''

कविता मे भी—

भूल मुझको याद आयी
यौवन के प्रथम पागल दिनो की
एक तुमसी थी विहगिन
मैं जिसे फुसला फँसाकर
ले गया था पीजरे मे।"—

तो वह कौन थी और क्या बात रही ? जरा सक्षेप मे ही सही।
इससे मैं आपके पहले रोमास के भाव-बोध को जानना चाहता हूँ।

आपका जीवन

प्रिय जीवन प्रकाश जी,

आपका पत्र समय से मिला। मुझे खेद है कि मेरे पिछले दिनो पत्र आपको नही मिले। उत्तर मैं तुरत देता हूँ। डाक की दुर्व्यवस्था सभी जगह बढती जा रही है।

इसका उत्तर मैं क्या दूँ कि श्यामा की मृत्यु की जितनी अनुभूतिपूर्ण व्यजना

मेरे गीतो मे है उतनी ग्रन्य किसी की मृत्यु की क्यो नहीं। श्यामा मेरे जीवन में बडे विचित्र समय म आई थी, उसके पूर्व मैं प्रेम के एक बडे कटु अनुभव से गुजर चुका था। इसकी प्रतिध्वनियाँ मेरी प्रारम्भिक रचनाओ मे भी मिलेंगी। श्यामा का व्यक्तित्व दैवी था, इसमे मुझे सदेह नही। ईर्ष्या उसे छू नही गई थी। उदारता उसके हृदय मे सबके लिए थी और मेरे लिए दोष की सीमा तक थी। उसने मेरा विश्वास पूर्णतया जीत लिया था। पत्नी से अधिक वह मेरी मित्र थी। स्वय ग्रस्वस्थ थी, इस कारण वह जानती थी कि वह मेरी एक बडी भारी चिंता बनी हुई है और फिर मेरे जीवन-सघर्ष के दिनों मे जब मुझे कोई सतोषजनक जीविका भी नही उपलब्ध थी। इसके लिए जैसे वह अपने आपको अपराधिनी समझती थी। इसका प्रतिकार करने को ही जैसे उसने न मुझसे किसी चीज की माँग की, न किसी चीज की प्रत्याशा की, न मेरी किसी बात से कभी असन्तुष्ट हुई, न उसने मुझे किसी बात से रोका—शायद मुझ पर कुछ नियत्रण रखती तो मैं कई अप्रिय अनुभवो से बच जाता। मैंने भी उससे कुछ नही छिपाया था। उससे मैं एक ही हो गया था। वह मेरी सह अनुभवी थी—"आरती और अगारे' मे किसी कविता मे ये पक्तियाँ हैं—

मानव चाहे सब दुनिया से अपना रूप छिपाए,
वही चाहता नग्नतना और नग्नमना रह पाए।

मैं श्यामा के आगे एसा ही था। मुझे याद है कभी कभी मैं उसकी क्षमता, सहिष्णुता की सीमा के पार भी चला जाता था। उसकी वेदना की ये घडियाँ उसकी मृत्यु के बाद मुझे बहुत सालती रही।—'था तुम्हें मैंने रुलाया' गीत निशानिमन्त्रण म सम्भवत इसी की प्रतिक्रिया है। इन्ही कारणो से श्यामा की मृत्यु के बाद मैंने ऐसा अनुभव किया कि मेरा आधा अग कट कर गिर गया। मुझे यह कहने मे कुछ भी सकोच नही है कि मेरी मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश मेरे पूर्ण अग की रचनाएँ हैं—शेष सब मेरे आधे अग की। मुझे इनामा सा सगी फिर नहीं मिला। एक दर्पण था जिसमे मैं अपने को देखा रहा था। श्यामा की मृत्यु से उस दपण पर काला परदा पड गया—निशा का—मैं एकाकी रह गया और बहुत अकुलाया—यही है निशा निमत्रण, एकांत सगीत, आकुल अन्तर। मेरी शक्ति की चेतना! बाद को जैसे मैं अपनी शक्ति से अपरिचित हो गया। जीवन मे कोई जगह खाली नही रहती। हर चीज की अपनी विशेषता है। इस पर कल्पना करना बेकार है कि श्यामा आज भी बनी होती तो मैं किस प्रकार की कविता लिखता। पर इतना मैं कह सकता हूँ कि यदि श्यामा मेरे साथ न होती तो मधुशाला, मधुबाला और मधुकलश मेरी लेखनी से नही उतर सकते थे। मुझे लगता है कि श्यामा के बारे मे कुछ लिखकर मैं उसके प्रति न्याय नही कर सकता। उसका कद मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश के पीछे खडी छाया से ही थोडा-बहुत अनुमाना जा सकता है।

अपने पहले प्रेम प्रसग के विषय मे विस्तार से कुछ नही कह सकता। सकेत ऊपर भी आ गया है। उसम जो कुछ कटु अनुभव हुआ वह इतनी तीव्रता तक

पहुँचा कि किसी प्रकार की अभिव्यक्ति मेरे लिए स्वाभाविक हो गई—शायद इसी ने मुझे कवि बनाया। हाई स्कूल शायद उसी कारण से फेल भी हुआ था। फेल होने की निराशा के साथ पिछली सघर्ष और असफलता की कटुता भी जागी और जीवन कुछ क्षण के लिए अर्थहीन लगा। उस समय कुछ भी करना असम्भव नही था। मैं जमुना के तट पर नि सत्त्व घूम रहा था—यह तो मैं न कहूंगा कि आत्महत्या के विचार से—क्योकि मैं मृत-सा ही हो गया था। इस समय Christian college के एक अध्यापक Adams ने मुझे देखा और मुझे अपने पास बुलाया। एक अपरिचित की अनायास सहानुभूति ने मुझे जीवन के प्रति आशावान बना रहने और फिर से सघर्ष करने की प्रेरणा दी। उस समय जो मैंने लिखा था वह सब नष्ट कर दिया था। पर प्रारम्भिक रचनाओ मे उनकी बहुत-सी प्रतिध्वनियाँ हैं। उनमे प्रदर्शित दबे, झुके, आतंकित, असमर्थ, असन्तुष्ट, भयभीत व्यक्तित्व के प्रति मुझे दया आती है। मधु, मधु, मधु मे मेरा व्यक्तित्व कितना उद्दाम, उदड, उछृखल, उन्मुक्त, क्रांतिकारी, निर्भीक, निर्द्वंद हो गया है। उसकी प्रतिक्रिया तो होनी ही थी नि० ए० आ० म और फिर नया व्यक्तित्व बनना था।

आशा है इन पक्तियो से आपको जिज्ञासा कुछ शान्त होगी।

बच्चन

५-५-६१

आपका पत्र मिला। पत्र को पढकर मैंने आज ही आरम्भिक रचनाएँ फिर पढी। कई नये रहस्य स्वत बोलने लगे।

प्रश्न—१८ आपने कुछ ऐसा पहले भी लिखा और इस बार भी—

"शायद मुझपर कुछ नियन्त्रण रखती तो मैं कई अप्रिय अनुभवो से बच जाता।"—

क्या उन "अप्रिय अनुभवो" का सार-सकेत आप दे सकेंगे ?

प्रश्न—१९ आप १९३२ मे 'पायनियर" के सवाददाता रहे फिर १९३३ मे अभ्युदय के सम्पादकीय विभाग मे काम किया—ऐसा श्री चन्द्रगुप्त विद्यालकार ने आपके बारे मैं जो पुस्तक लिखी है उसमे उल्लेख किया है। उधर आपके पिता जी भी वही काम करते ही होंगे। (कृपया लिखें कहाँ) फिर भी आपके सामने तब आर्थिक सकट इतना बडा रहा, जैसा कि आपने कई जगह बताया है कारण ?

प्रश्न २०—आपने अध्यापकीय जीवन कब आरम्भ किया और कब तक अध्यापन कार्य किया ?

प्रश्न २१—अनायास आपने प्रयाग विश्वविद्यालय की नौकरी क्यों छोड दी ? मेरे विचार से विदेश मन्त्रालय के काम से वहाँ का कार्य आपके व्यक्ति के लिए अधिक सारगर्भित था।

पुनश्च—दो महीने के अवकाश का आपका कहीं जाने का कार्यक्रम है या

नहीं ? कृपया इस बारे मे पूरा निश्चय सूचित करें।

प्रिय जोशी जी ।

पत्र के लिए धन्यवाद। इन रहस्यो पर अभी पर्दा पडे रहना ही ठीक है।

१९३० मे मेरे पिता जी की पेंशन बद हो गई थी। मैंने कुछ दिन इलाहाबाद हाई स्कूल, कुछ दिन प्रयाग महिला विद्यापीठ और कुछ दिन पायनियर प्रेस म काम किया। ३३ मे अभ्युदय मे काम करता रहा। ३४ म अग्रवाल विद्यालय मे पहुँच गया। मेरा यह सारा काम अस्थाई था। केवल छोटे भाई नियमित रूप से इलाहाबाद बैंक मे काम करते थे और उन्ही पर घर भर का बोझ था। घर मे कई रोगी भी थे। इसके बारे म मैंने टडन जी वाले लेख मे कुछ लिखा है। मैंने ३० म पढाई छोडी—कुछ दिन चाँद कार्यालय मे काम किया था। अध्यापकी जीवन मेरा इलाहाबाद हाई स्कूल से आरम्भ हुआ—प्रयाग महिला विद्यापीठ म भी चला—फिर वह शुरू हुआ जब मैं अग्रवाल विद्यालय म आया। जुलाई ४१ से मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय म अध्यापक हुआ। ३६ म श्यामा की मृत्यु के बाद मैंने अग्रवाल विश्वविद्यालय छोड दिया था। ३७ ३८ एम० ए० करने म लगे, ३८ ३९ ट्रेनिंग करने मे। दो वर्ष रिसर्च स्कालर रहा। ४१ से ५२ तक इलाहाबाद यूनिवर्सिटी मे रहा। ५२ मे केम्ब्रिज चला गया। उसके बाद से आप जानते ही हैं।

इगलैंड से लौटने पर विश्वविद्यालय का वातावरण बहुत दूषित दिखा। फिर मैं देश की हिन्दी योजनाओ म कुछ सक्रिय सहयोग देना चाहता था। इसी समय विदेश मन्त्रालय मे हिन्दी सेवशन के लिए पडित जी (जवाहर लाल नेहरू) ने मुझे बुला दिया। उसी समय डा० केसकर ने मुझे रेडियो म लेना चाहा। विदेश मत्रालय के निश्चय मे कुछ देरी लगी तो मैं दो मास को रेडियो मे चला गया। विदेश मत्रालय मे मैंने कुछ सही परम्पराएँ डाली हैं इसका मुझे सतोष है। अग्रेजी तो बहुत लोग पढा रहे हैं। पर यहाँ का काम शायद दूसरा इस प्रकार न कर सकता।

बच्चन

१५ ५ ६१

आपके आशीर्वाद से मैं दिल्ली विश्वविद्यालय म अच्छी तरह प्रवेश पा गया। अब जी लगा कर बस पढते ही रहने की इच्छा बनी रहती है। गम्भीर पुस्तकों को न जाने क्या अपनी अयोग्यता की सीमा होते हुए भी पढने म रस आता है—अजाना रस।

कृपया निम्नलिखित जिज्ञासा का समाधान दें—

प्रश्न २२—आदरणीय तेजी जी स आपका विवाह कब किन हालात म और आपकी किन मानसिक हलचलो के परिणाम स्वरूप हुआ था ? श्यामा जी के अभाव बाद तेजी जी का स्वभाव अपनाया जा सका ? जानता हूँ जिज्ञासा अत्यन्त व्यक्तिगत है किन्तु आपका व्यक्तित्व ही एक मान्य है इस लिए मुझे इस प्रकार की जिज्ञासाओ का समाधान मिलना जरूरी है। भारती और अगारे की रचना मे एक

स्थल पर आपने लिखा है—

"उस तिमिर की श्यामता मे क्यो छिपा था तेज ..." और उस तेज की धात्री 'कटारी-सा चमकता नूतन चाँद . ...." जिसे आपने नियति का सकेत समझ कर बस कलेजे मे आँख मूद कर धँसा ही तो लिया। व्यग व्यजना मे जो पीर है उसकी अभिधा आपसे चाहता हू।

प्रिय जोशी जी,

पत्र के लिए ध०

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई और गर्व भी कि आपका नाम सबके ऊपर रहा। आपमे योग्यता है, लगन है। अवसर मिलने पर आप कुछ बडा काम करेंगे, इसका मुझे विश्वास है। मेरी शु० का० सदा अपने साथ समझें। अब आपके प्रश्न का उत्तर।

तेजी जी से मेरा विवाह २४ जनवरी सन् १९४२ को हुआ।

मैं उनको सर्व प्रथम बरेली मे एक मित्र के यहाँ ३१ दिसम्बर १९४१ को प्रात काल मिला। मित्र का नाम था श्री ज्ञान प्रकाश जौहरी जो उन दिनो बरेली कालेज मे अंग्रेजी के अध्यापक थे।

१ जनवरी १९४२ को उन्ही के घर पर मेरी Engagement या सगाई हुई। उन २४ घटो मे क्या हुआ कि हम दोनो एक दूसरे के लिए अनिवार्य लगने लगे। यह मेरे लिए भी और शायद तेजी जी के लिए भी एक रहस्य है। इसे भाग्य का दुर्लंघ्य विधान ही कहेगे।

बरेली से वे लाहौर चली गईं और मैं इलाहाबाद चला आया। शायद १० जनवरी को मैं उन्हे लिवाने के लिए लाहौर गया और १५ जनवरी को उन्हे लेकर इलाहाबाद आया।

वे उन दिनो श्री मती जौहरी के साथ लाहौर मे रहती थी। श्री मती जौहरी उसी कालेज (फतेहचद कालेज) मे प्रिंसिपल थी जिसमे तेजी जी भी पढाती थी—Psychlogy। श्री मती जौहरी बडे दिन की छुट्टियो मे जब अपने पति को मिलने आईं तो छुट्टी मनाने के लिए तेजी जी भी साथ आ गईं। मैं लौटते हुए अचानक बरेली मे रुक गया था। इसके बाद ही श्री मती जौहरी ने नौकरी छोड दी। सारे सयोग जैसे हम दोनो को मिलाने के लिए इकट्ठे हो गए थे। तेजी जी के पिता उन दिनो मीरपुर खास (सिंध) मे थे। शायद वे लाहौर मे होते तो उनकी ओर से कोई बाधा उपस्थित होती। यद्यपि जिस दिन मैं लाहौर से चलने वाला था उन्होंने अपनी स्वीकृति एक आदमी से भेज दी थी और इच्छा प्रकट की कि विवाह सिंध से औपचारिक रीति से हो—पर हम दोनो ने इलाहाबाद मे सिविल मैरिज कराने की ही तै की। लाहौर म भी और सिंध मे भी हमे विरोध की आशका थी—बस हम दोनो इलाहाबाद चले आए और २४ जनवरी को जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर डिक्सन ने हमारी शादी करा दी।

सतरगिनी के बहुत से गीतो मे मैंने उन क्षणो को पकडने का प्रयत्न किया है जो हम साथ लाए थे। जो मैंने लिखा है उसके प्रकाश मे सतरगिनी के गीता को फिर पढेंगे तो और आनन्द आएगा।

शु० का०

बच्चन

१७-७-६१

बहुत समय से इच्छा होते हुए भी पत्र नही लिख सका—आपकी आज्ञा अनुसार पढाई पर लगा हूँ।

कृपया निम्नलिखित जिज्ञासा का समाधान दें—

प्रश्न २३—आपने जब हिन्दी के काव्य रचना जगत म रुचि ली उस समय आपकी मानसिक प्रतिक्रियाएँ तत्कालीन काव्य सृजन के प्रति क्या थी? मेरा आशय यह है कि सन १६२०-३० तक हिन्दी काव्य-जगत मे द्विवेदी जी का काव्य—'इतिवृत्त' समाप्त होकर उसके स्थान पर छायावाद अवतरित हो रहा था—प्रसाद पत निराला और फिर महादेवी के काव्य के माध्यम से। आपने उनकी रचनाओ को काव्य प्रमी होने के कारण पढते रहने मे रुचि ली होगी। उसकी जो मानसिक प्रतिक्रिया आपमे हुई और जो रचनात्मक दिशा आपने ली या लेनी चाही उसके बारे मे कृपया कुछ बताएँ। इस जिज्ञासा का आधार आपकी त्रिभगिमा की दो रचनाएँ हैं—

१ अतर से या कि दिगतर से आई पुकार—
तम आसमान पर हावी होता जाता था
मैंने उसकी ऊषा किरणो को ललकारा
इसको तो खुद दिन का इतिहास बताएगा
थी जीत हुई किसकी और कौन हटा हारा

× × ×

२ इस तुम्हारी मौन यात्रा म मुखर मैं भी तुम्हारे साथ

प्रिय जीवन

पत्र के लिए धन्यवाद।

कविता मरे लिए साहित्य के रूप मे नही आई। वह मेरे पास जीवन की अनिवार्य आवश्यकता बनकर आई—आज भी इसी रूप म मरे पास रहती है। मेरी कविता समझने का यह मूलाधार है। मरे पाठक भी प्राय वही हैं जिनके लिए कविता जीवन की आवश्यकता है। मैं कक्षा म नही—घर म कमरे म, खाट पर हाट पर पढा जाता हूँ और मरी पक्तियाँ उत्तर कापियो म उद्धरत करने को नही रटी जाती—व जीवन के मार्मिक क्षणो को सजीव करने के लिए स्मृति म आपस आप चढती है। मुझे अपने ऊपर समालोचना या लेख देखकर इतनी प्रसन्नता नही होती जितनी कभी किसी ग्रामीण पाठक का पत्र पाकर जिसम वह मरी कविता से मिली किसी प्रकार की प्ररणा स्वीकार करता है। सच म मरी धारणा है कि

कविता को जीवन से निकलना चाहिए। जीवन म पैठना चाहिए। उसमे भीगनेवालो का महत्व है उस पर पत्त रगनवालो का नही। यह बात और है कि कोई दोना कर सक।

वच्चन
२५ ८ ६३

आपका भेजा गया २५ ८ ६१ का पोस्टकाड मिल गया है।

प्रश्न—२४ किसी भी कवि को पढने बैठो तो उसके समालोचक उसके काव्य की किसी न किसी वाद के अन्तगत ही समीक्षा प्राय करते हैं। क्या हर कवि की कविता का किसी वाद के लैंस से पढना ठीक है ?

तुलसी विशिष्टाद्वैतवादी हैं कबीर अद्वैतवादी ये छायावादी हैं तो वे रहस्यवादी काव्य के प्रणता ता य हालावादी तो वे प्रयोगवादी प्रगतिवादी काव्य के प्रणता। काव्य क वादा का एसा आरोपण आपके विचार से कैसा है—उचित या अनुचित ?

आपका
जीवन।

प्रिय जीवनप्रकाश जी,

२८ ८ ६१ के पत्र के लिए धन्यवाद।

न कवि को कविता वाद को ध्यान म रखकर लिखनी चाहिये, न पाठक को वाद को ध्यान म रखकर पढनी चाहिए।

समालोचक को देश-काल-समाज से किसी कवि की सगति बिठलाने के लिए उसे किसी वाद म बाँधने की आवश्यकता पड सकती है। पर यह हमेशा देखा गया है कि प्रतिभावान कवि और लेखक वाद मे सहज नहीं बँधते। मेरी ऐसी धारणा है कि वाद दूसरी-तीसरी चौथी श्रेणी के कविया के लिए उपयोगी होता है। प्रथम श्रेणी के कवि के लिए नहीं वहने का तात्पय है कि युग की कुछ धाराएँ होती हैं—कुछ लागा को उसक साथ वहने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहता, कुछ युग के साथ बहते हुए भी कुछ अपनापन रखते हैं—ये धारा के बाहर भी उतने ही रहते हैं जितने धारा के बीच।

सक्षेप म जीवन वाद से बडा है और कविता टेक्सट बुक मे रखने को नही लिखी जाती न समालोचको की समालोचना के लिए। कविता का व्यापक क्षत्र जीवन है—उस जीवन स ही लेना और जीवन को ही देना है।

शु० का०
बच्चन।
१२ ६ ६१

४ ६ ६५

पत्रोत्तर क्रम म आपका अतिम पत्र १२ ६ ६१ को मिला था और अब वर्षो

बाद फिर से वह सिलसिला जुड़ रहा है, सौभाग्य का फेरा होता रहता जीवन में।

प्रश्न—२५ अंग्रेजी-हिन्दी के किन कवियों लेखकों ने आपको प्रारम्भ से प्रभावित किया ? और अब आपको कौन कौन से कवि लेखक प्रिय, हैं ? केवल नाम और उनकी कृति का उल्लेख मात्र करें।

श्रीमती रमा सिन्हा फेल हो गई । लेकिन वे अक्तूबर में फिर परीक्षा देने के लिए तैयार हैं—निराश नहीं।

शुभा बड़ी हो रही है, ऊषा दुर्बल ! नेहरू जी पर आपकी इस बीच कोई लम्बी कविता या लेख वगैरा नहीं पढ़ा—क्या लिखा ही नहीं ? आप तो अधिकारी हैं उसके। दिनकर जी और शि० मं० सिंह सुमन ने तो लिखा है।

श्री नरेन्द्र शर्मा का 'प्यासा निर्झर' पढ़ा होगा ? कैसी कविताएँ लगी ?

आपके पत्र के साथ ही आदरणीय क० ला० मिश्र प्रभाकर जी का पत्र भी आया आया है, जिसमे उन्होंने मुझे लिखा है—

"बच्चन जी पर पुस्तक लिखना ठीक है। वे तो देवकोटि के मनुष्य हैं। मेरे मन मे उनका बडा आदर है।"

शेष शुभ !
आपका
जीवन।

प्रिय जोशी जी,

पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए। श्रीमती (रमा) सिन्हा की असफलता के समाचार से मैं बहुत दुखी हुआ। उनके श्रम-संघर्ष को मैं जानता हू। मैं चाहता हूँ वे हमेशा सफल हो। यह उनके साहस और लगन के अनुरूप ही है कि वे निराश हुए बिना फिर से परीक्षा की तैयारी कर रही हैं। वे सफल हो के रहेंगी, मैं जानता हू। मेरी तरफ से उन्हे कुछ न कहना। उन्हें सकोच होगा। ऐसे रखना जैसे मैं उनकी असफलता के विषय म भी नही जानता।

अब तुम्हारे प्रश्न का उत्तर—

प्रारभ मे तो मुझे अंग्रेजी के रूमानी कवि प्रिय थे। बाद को शेक्सपियर मेरा प्रिय कवि रहा। आधुनिकों मे मैंने ईट्स का विशेष अध्ययन किया। हिन्दी म तुलसी पारिवारिक सरकारों के कारण मेरे सर्वप्रिय कवि हो गये। छायावादियो में पत को मैंने बहुत पसद किया।

अंग्रेजी और हिन्दी मे मेरा अध्ययन पर्याप्त विस्तृत है और सभी के काव्य-रस का आनन्द किसी न किसी रूप मे मैंने लिया है। नई पीढ़ी के कवियो को भी जितना मैंने पढ़ा है, कम लोगो ने पढा होगा। उनकी कविता के शक्ति सौंदर्य को भी शायद मैं समझता हूँ। Favourite या प्रिय बनाने की उम्र जवानी होती है। अब मैं किसी को Favourite नहीं बना सकता। एक नये कवि की एक चीज मुझे अच्छी लगती है, दूसरी बुरी कभी किसी बिल्कुल नये कवि की चीजें बहुत अच्छी लगती है। आज भी

जो अच्छा लिखा जा रहा है उस सबसे मैं परिचित होना चाहता हूँ। ऐसे लेखक कम नही है जिनकी कोई चीज प्रकाशित हो तो मैं तुरन्त देखना चाहता हू नाम नही गिना सकता। प्राय वे प्रसिद्ध नाम हैं।

उधर मैं ने ईट्स पर एक लेख धर्मयुग के लिए लिखा है। कुछ अनुवाद भी भेजे हैं जो जुलाई मे किसी समय छपेंगे।

गर्मी खूब पड रही है। स्वास्थ्य भी विशेष अच्छा नही लिखूं क्या ?—ऊषा और शुभा को मेरा आशीष।

बच्चन
१४ ६ ६५

पतजी की "छायावाद पुर्नमूल्यांकन" पुस्तक पढ चुका हूँ। उसको पढकर मेरी कतिपय प्रतिक्रियाएं और जिज्ञासाएँ जागी हैं।

कृपया निम्न जिज्ञासाओ का उत्तर दें—

प्रश्न २६—नयी कविता मे क्या सचमुच महान कुछ भी नही है ? क्या उसके रचनातन्त्र मे इलियट तथा एजरापाउण्ड की अप्रत्यक्ष अनुगूंज है ?

प्रश्न २७—आप अपने काव्य की व्यक्तिनिष्ठता तथा एकांतिकता के बारे मे क्या सोचते हैं ? पत जी तो आप के काव्य को हाडमांस के यथार्थ से सीमित मानते हैं।

पुनश्च—आशा है स्वास्थ्य और सुधरा होगा। मैं तो हमेशा आपको मधुकलश का कवि व्यक्ति देखते रहना चाहता हूँ।

आपका
जीवन

प्रिय जोशी जी,

पत्र के लिए ध०

इन दोनो प्रश्नो का उत्तर मुझे याद है मैं भेज चुका हूँ। आपको पत्र आजकल ठीक नही मिलते-क्या बात है ?

नयी कविता म युग-सत्य है—वह केवल अनुकरण नही।

मैं अपनी सारी ही कविता को जग-जीवन—काल के प्रति व्यक्ति का सघर्ष मानता हू ' पत जी और भी जो हो उनके बारे मे अपनी राय रखने के लिए स्वतन्त्र हैं।

ईट्स की कविताओ का अनुवाद पिछले ध यु मे आया है इस अक म मेरा लेख आ गया होगा। इस सा हि मे भी ईट्स की कविताओ का मेरा अनुवाद आया है।

'मरकत द्वीप का स्वर' तो अभी प्रेस भी नही गया। सामग्री टाईप करा रहा हूँ। 'दो चट्टानें' छप रही है।

W B yeats and occultism छपकर तैयार है। कवर आदि छपने बाकी हैं अगस्त सितम्बर तक प्रकाशित हो सकेगी। चि० उषा, शुभा और श्रीमती सिन्हा को मेरी याद—

— पुनर्मूल्यांकन पढ चुके हो तो वापस कर दें—

बच्चन

२३ ७-६५

प्रश्न २८—यदि आप थोडे शब्दा मे हिन्दी भाषा साहित्य के भविष्य के बारे मे अपनी स्वतत्र विचारधारा व्यक्त करें तो बडी कृपा होगी।

२८ ५-६६

प्रिय जोशी जी,

हिन्दी इस देश मे अग्र जी से तभी होड ले सकेगी जब उसमे अग्रेजी के जोड का ज्ञान विज्ञान का साहित्य हो। हमारे ९५ प्रतिशत लेखको को इस ओर जुट जाना चाहिए।

जीवत साहित्य स्वाभाविक गति से बढेगा।

ज्ञान विज्ञान का साहित्य प्रयत्न प्रोत्साहन से बढाया जा सकता है।

बच्चन

सैक्टर पाच। ८६२,
रामकृष्ण पुरम, नई दिल्ली
दिनाक ६-८ ६७

प्रश्न २९—आपने पिछले दशक मे लोक-गीतो की धुनो पर आधारित गीतो की रचना भी की है। इस रचना प्रक्रिया को प्रेरित करने वाली (व्यापक परिप्रेक्ष्य म) कौन सी प्रतिक्रिया हो सकती है? क्या ऐस गीता का रसास्वादन करने के लिए आधुनिक जनमानस तत्पर है? फिर इन गीतो के तत्र मे (अभिव्यक्ति मे) आप किस नवीनता की कल्पना करते हैं?

प्रश्न ३०—आपको छोडकर खडी बोली मे इस प्रकार की रचना करने वाले ऐसे कौन कवि हैं जिनकी उपलब्धि पर दृष्टि डाली जा सकती है?

प्रश्न ३१—खडी बोली के कवि सम्मेलनो की परम्परा का सूत्रपात, कहते हैं 'सनेही' जी द्वारा हुआ। पर कवि सम्मेलनो की भारत म परम्परा का प्रथम छोर कहाँ से मान, यह मैंने कही नही पढा। क्या आप इस बारे म मुझे कुछ दिशा निर्देश देंगे?

प्रश्न ३२—कवि सम्मेलनी रचनाओ ने क्या खडी बोली काव्य के भावशिल्प को कुछ विशिष्ट दिया है, या व केवल मच और गले की करामात तक ही सीमित हैं?

प्रश्न ३३ महत्वपूर्ण कवि सम्मेलन अब घट रहे हैं। इनके भविष्य क विषय म आपका क्या विचार है?

उत्तर की आशा मे। आपके मत मे अपने शोध-प्रबध (छायावाद के उत्तरार्ध के गीतकार कवियो का विषय और शिल्प विधान) म उद्धृत करने की विनम्र अनुमति चाहता हूँ।

पुनश्च उत्तर के साथ इस पत्र को भी वापस भेज दें।

आपका,
ह०—(जी० प्र० जोशी)
६ ८-६७

प्रिय जोशी जी,

आपका पत्र। घ०

जो पुस्तकें आप उधर ले गए थे, उन्हें लौटा दें। फिर आपको जो पुस्तक चाहिए वह मैं दे दूंगा या मंगा दूंगा।

थीसिस के लिए आपको दिशा निर्देश की कोई आवश्यकता नही, आप स्वय स्वाध्याय चिन्तन-मनन के पश्चात अपने निर्णय लें।

अब आपके प्रश्नो का उत्तर

१ सबसे पहले मैं एक व्यक्तिगत बात कहना चाहूगा। कुछ लोक धुनें मेरे कानो मे गूंज रही थी। वे उसी समय क्यो गीतो मे रूपायित होने को उभरी उस पर दूसरे सोचें। गीतो का एक नया आयाम खोजने की बात भी हो सकती है। पिछले गीत-कला के ह्रास और गीतो के विरोध से भी ऐसी बात उठ सकती है। गावो की लय से नागरिक भाषा को और नागरिक भाषा को गावो की लय से बाधने की कामना भी स्वाभाविक है। विशेषकर ऐसे समय मे जब हम गावो को नगरो के निकट लाना चाहते हैं। शायद नगरो की शुष्कता गावो के रस से रसमय भी हो सके। गावो की लयें शास्त्रीय छदो मे विविधता तो निश्चय ला सकती हैं। नए छद से भावो के नए आयाम भी खुलते हैं। काव्य नीरस होने पर प्राय लोक गीतो की ओर गया है। जब मैं इग्लैंड मे था तब अक्सर लोक गीतो के समारोह होते थे। केम्ब्रिज मे आयोजित ऐसे समारोहो मे लोक गीत गाए जाते थे और आधुनिक काव्य की दुनिया के बीच राग रग रस की एक दूसरी दुनिया जन्म लेती थी। आधुनिक काव्य उससे विशेष प्रभावित तो नही हुआ क्योकि आधुनिकता, वैज्ञानिकता, बौद्धिकता, नीरसता की धारा आज बडे वेग से बह रही है। लोक गीतो का अपना तत्र है। उससे शास्त्रीय गीत कुछ ले सकते हैं। हिन्दी मे कुछ लिया भी गया है। उस तत्र को कुछ परिष्कृत भी किया जा सकता है। किया भी गया है। लोक धुनो पर लिखे गीतो को इन बातो के प्रकाश मे देखना चाहिए।

२ ऐसे लोक गीतो ने शास्त्रीय गीत, नव-गीत और कहीं-कहीं नई कविता को भी प्रभावित किया है। ध्यान से देखने पर बहुत से आधुनिक कवियो की कुछ रचनाओ मे यह प्रभाव दिखाई पडेगा। ठाकुरप्रसाद सिंह का वशी और मादल विशेष

रूप से देखा जा सकता है। उमाकांत मालवीय, रवीन्द्र भ्रमर, शम्भूनाथ सिंह, सर्वेश्वर यहाँ तक अज्ञेय के कुछ गीतों में यह प्रभाव मिलेगा (कांगड़ा की छोरियाँ)।

लोक गीतों में और शास्त्रीय गीतों में एक बड़ा भेद यह है कि लोक गीत प्राय अपने भीतर एक कहानी लिए रहता है। मैंने लोक गीतों की उस कथा का उपयोग अपने बहुत से गीतों में किया है। इससे वे वायवी भावना नहीं रह गए।

३ किसी एक आदमी को मैं यह श्रेय न देना चाहूँगा। पहले कवि सम्मेलनों में समस्या दी जाती थी—खड़ी बोली कविता के लिए भी स्वाभाविक है कि वे व्रज भाषा छंदों में लिखी जाती थीं—कवित्त या सवैया में। खड़ी बोली में ऐसी समस्यापूर्तियों को सबसे अधिक प्रेरणा सनेही जी से मिली हो तो कोई आश्चर्य नहीं। मध्ययुगीन राजदरबारों में कवि सम्मेलन अथवा काव्य प्रतियोगिताएं (समस्यापूर्ति के आधार पर) होती थीं, वहीं से हिन्दी कवि सम्मेलन का आरंभ मान लें। खड़ी बोली आन्दोलन के साथ मुशायरों की नकल पर कवि सम्मेलन चले। मैंने ऐसे प्रारंभिक कवि सम्मेलनों की चर्चा अपने किसी निबंध में की है। समस्यापूर्ति के युग के बाद छायावादी युग में कवि सम्मेलन बहुत 'डल' होते थे। निराला पंत को लोग सुन लेते थे। उल्लास 'मधुशाला' से आया। पर उस पर मेरा अधिक कहना ठीक नहीं।

४ पढ़ने (आँखों से) के लिए और सुनाने के लिए जो कविता लिखी जायेगी उसमें भाषा में विशेषत, परन्तु भावों में भी, अन्तर होना स्वाभाविक है। कवि सम्मेलनी कविताओं से भाषा सरल हुई होगी, जीवन के निकट आई होगी। पर एक खतरा भी खड़ा हो गया होगा। भावों में गहराई की कमी आई होगी। भाषा का लाभ उठाते हुए भावों की गहराई बनाए रखने वाले कम लोग हुए होंगे। सामूहिक स्तर पर अभी हम सतही भावों को ही पकड़ पाते हैं। उर्दू ने मुशायरों में भावों की गहराई की परवाह नहीं की, भाषा मांज ली। हिन्दी कवि सम्मेलनों में भाव ह्रास की भूमिका देखकर अच्छे कवि उससे विरक्त हो गए। छुटभैयों ने भाषा मांजने में भी अपने को असमर्थ पाया। भाषा को मांजना, उसका परिष्कार करना कोई साधारण काम नहीं है। वे कुलजन खाकर और चाय पीकर अपना गला साफ करते रहे। कहने को अथवा भाव विचार की सम्पदा के नाम उनके पास कुछ था नहीं, तब कैसे कहने या भाषा परिष्कार करने का प्रश्न नहीं उठता। केवल आलापने से ही काम चलाना था। पर यह माध्यम की बुराई नहीं है। माध्यम कविता के विकास में बहुत उपयोगी हो सकता है बशर्ते कि उच्च प्रतिभा के लोग उसका प्रयोग करें।

५ कवि सम्मेलन तो शायद नहीं घट रहे हैं पर उच्चकोटि की प्रतिभाओं ने उनसे प्राय पूरी तरह किनारा कस लिया है। जनता की रुचि के स्तर के उठने और उच्चकोटि के कवियों के कवि सम्मेलन में भाग लेने से यह माध्यम साहित्य के विकास में, विशेषकर काव्य के विकास में, बड़ा सशक्त सिद्ध होगा। जब तक यह स्थिति नहीं आती तब तक जनता के रुचि के स्तर को ऊपर उठाने के लिए कवि सम्मेलनों में उच्चकोटि की समय सिद्ध कविताओं के पाठ की प्रथा डालनी चाहिए। उससे छुटभैये उखड़

जाएंगे और उच्चकोटि के कवि-कवि सम्मेलनों के प्रति आकर्षित होंगे।

आशा है मेरे उत्तरो से आपको सन्तोष होगा। आपकी प्रश्नावली साथ भेज रहा हूं।

श्रीमती (रमा) सिन्हा को और उनके बच्चो को मेरी सद्भावनाए, शुभकामनाए। उषा और उनकी बेटी चि० शुभा को भी। किसी दिन आकर सबको मिलना है। सिन्हा सा० तो अच्छी तरह हैं ?

मैं एक दिन बाथरूम मे गिर पडा था जिससे पीठ मे कुछ चोट आ गई थी—आज ही कई दिन बाद उठ कर कुर्सी पर बैठा हू। शु० का०

आपका,
ह० (बच्चन)

६-३-६८

प्रश्न ३४—आपने लगभग तीस वर्ष अधिकाश गीत रचे। अत 'प्रणय पत्रिका' तक व्यापक गीत-सृजन के परिप्रेक्ष्य मे कृपया 'नवगीत' सृजन के विषय शिल्प पर बताए कि क्या वह गीत-काव्य की किसी नई उपलब्धि का प्रतीक बन सकेगा ? मुझे तो उसकी 'नवीनता' सदिग्ध लगती है। आपका क्या विचार है ?

७-३-६८

उत्तर—नवगीत को मैं नई कविता की कोरेलेरी ही समझता हू। नई कविता की उपलब्धियो से प्रेरित हो या लाभान्वित हो गीतो को एक नया रूप देने का प्रयास नवगीत है। गीत का यह नया रूप निश्चित है—गीत के विकास मे एक कडी। वैसे मेरी राय है कि प्रथम कोटि की प्रतिभा न नई कविता को मिली है और न नवगीत को।

बच्चन

★